અહો! શ્રુતજ્ઞાનમ્

ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર

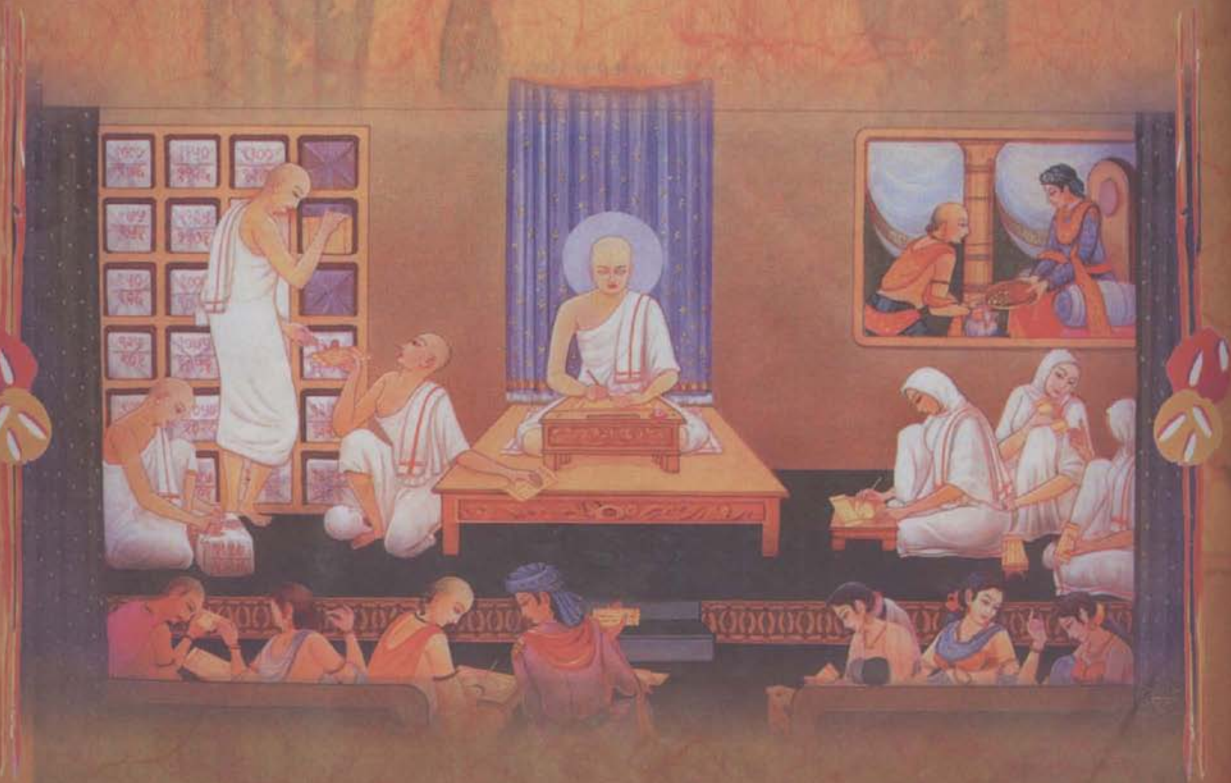

-: સંયોજક :-

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૩૮૦૦૦૫.
મો. ૯૪૨૬૫ ૮૫૯૦૪ (ઓ.) ૦૭૯-૨૨૧૩૨૫૪૩

"અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોધ્ધાર ૯૭

સમરાંગણ સૂત્રધાર-૧

: દ્રવ્ય સહાયક :

પૂજ્ય બાપજી મ.સા.ના સમુદાયના
પૂજ્ય આચાર્ય નરરત્નસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના આજ્ઞાવર્તિની
પૂ. સાધ્વીજી શ્રી જયવંતાશ્રીજી મ.સા. તથા
અન્ય ઠાણાની પ્રેરણાથી
સાબરમતી જૈન આરાધના ભવન ટ્રસ્ટ તથા
અભયસાગરજી આરાધનાભવનના
જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-380005
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૬૭ ઈ.સ. ૨૦૧૧

"Aho Shrut Gyanam"

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૫ (ઈ. ૨૦૦૯)– સેટ નં-૧

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजीम.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणिचूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणिम.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणिसारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामीम.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणिम.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजीम.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलालसोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारतीगोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલસોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बरकोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈનજ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામમહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी.ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-१	पू. मुनिचंद्रसूरिजीम.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराजदोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्यशास्त्री	214

028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192
030	शिल्परत्नाकर	श्री नर्मदाशंकरशास्त्री	824
031	प्रासाद मंडन	पं. भगवानदास जैन	288
032	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय१	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	520
033	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय२	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	578
034	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय३ (१)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	278
035	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय३ (२) (३)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	252
036	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय५	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	324
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦)– સેટ નં-૨

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્ત્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/गु.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/गु.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376
075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	374

076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રુમ ભાગ-૨	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	238
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	श्री विद्या साराभाई नवाब	194
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	192
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री मनसुखलाल भुदरमल	254
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	238
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-3	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	पू. कान्तिसागरजी	114
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री	910
085	विश्वलोचन कोश	सं./हिं	श्री नंदलाल शर्मा	436
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	336
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	230
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	सं.	पू. मेघविजयजीगणि	322
089	એન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	सं.	पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी	114
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	सं.	आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी	560

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.jainelibrary.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता/टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इस्टी. बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं.	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार - न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354

109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिसागरजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपार्टमेन्ट, भावनगर	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

Published under the Authority of the
Government of His Highness the
Maharaja Gaekwad of Baroda

GENERAL EDITOR
B. BHATTACHARYYA, M.

SAMARĀṄGAṆASŪTRADHÂRA

VOLUME I

Volume XXV.

"Aho Shrut Gyanam"

"Aho Shrut Gyanam"

समराङ्गणसूत्रधारः

महाराजाधिराजश्रीभोजदेवप्रणीतः

SAMARÂṄGAṆASÛTRADHÂRA

BY

KING BHOJADEVA

EDITED BY

MAHÂMAHOPADHYÂYA

T. GAṆAPATI SÂSTRÎ,

Honorary Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland;

Doctor of Philosophy, University of Tubingen,

Editor of the

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

IN TWO VOLUMES

Volume I

1924

BARODA

CENTRAL LIBRARY

"Aho Shrut Gyanam"

Printed by L. Ramaswamy Sastri at the Sridhara Power Press, Trivandrum, and
published by Newton Mohun Dutt, Curator of Libraries, Baroda State,
on behalf of the Government of His Highness the Maharaja
Gaekwad, at the Central Library, Baroda.

Price Rs. 5 Net.

"Aho Shrut Gyanam"

PREFACE.

Samarâṅgaṇasûtradhâra is a work on architecture. It means, literally, an architect of human dwellings and deals with the planning of towns and villages, building of houses, halls and palaces as well as machines of various kinds.

The edition is based on the following three manuscripts:-

(1) The manuscript marked क, belonging to the Central Library, Baroda, which runs up to a certain portion in the 82nd adhyaya but is wanting in 19 folios, and which was copied, as mentioned in the colophon, in Samvat 1594.

(2) The manuscript marked ख, belonging to the same library, which runs up to a portion in the 55th adhyaya.

(3) The manuscript marked ग, obtained on loan from the Bhandar at Pattan, which runs up to a portion of the 49th adhyaya but is wanting in 10 folios and which appears to be of the same age as the first.

These manuscripts are full of errors and not very legible. To examine them for the press was a very difficult task. The first 54 adhyayas are now issued as the first volume while the remaining adhyayas are in the press and will be published before long as the second volume.

An exhaustive table of contents is prefixed to this volume a perusal of which will give an idea of all the subjects imbedded in it.

The work treats of the construction of cities, palaces and mansions with greater clearness of expression and wealth of details than any other available work of Silpa Sastra. The 31st chapter contains descriptions of various kinds of machines that are not found in other Silpa works, such as the elephant machine (गजयन्त्र), wooden bird-machine travelling in the sky (व्योमचारिविहङ्गयन्त्र), wooden vimana machine flying in the air (आकाशगामिदारुमयविमानयन्त्र), door-keeper machine (द्वारपालयन्त्र), soldier machine (योधयन्त्र) etc.

"Aho Shrut Gyanam"

"यन्त्रेण कल्पितो हस्ती नदन् गच्छन् प्रतीयते ।
शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तास्तालस्यानुगमान्मुहुः ॥
जनस्य विस्मयकृतो नृत्यन्ति च पठन्ति च ।
पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा तुरगो मर्कटोऽपि वा ॥
वलनैर्वर्तनैर्नृत्यंस्तालेन हरते मनः ।"

"लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाग्निपूर्णम् ॥
तत्रारूढः पूरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चालप्रोज्झितेनानिलेन ।
सुप्तस्यान्तः पारतस्यास्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥
इत्थमेव सुरमन्दिरतुल्यं सञ्चलत्यलघु दारुविमानम ।
आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान्" ॥

Generally, the language of the extant Silpa works is ungrammatical, but the present work is free from grammatical solecisms and written mostly in a sweet and beautiful style. The work will prove to be of immense benefit to students of Indian architecture as well as to those who wish to follow it in practice.

The author of the work, as mentioned in it, is Maharajadhiraja Sri Bhojadeva who is probably the same Bhoja of Dhara who ruled over Malwa in the first part of the 11th century A. D. and to whom many important works are ascribed such as, Sringâraprakâsa (Alankara) and Saraswatîkanthâbharana (Vyakarana).

T. Ganapati Sastri.

"Aho Shrut Gyanam"

विषयानुक्रमणी ।

विषयः	पृष्ठम्.

१. महासमागमनाध्यायः प्रथमः —

मङ्गलाचरणम् १
शुभानामुपादानस्य, अशुभानामनुपादानस्य चावश्यकता ... ... ,,
देशपुरादीनां श्रेयःसाधनत्वकथनम् ... ... ,,
शास्त्रारम्भसमर्थनम् ... ... ,,
ग्रन्थोपक्रमोपक्षेपः २
पुरा ब्रह्मसन्निधौ पृथूपद्रुताया भूमेरभयप्रार्थनम् ... ... ,,
भूमिमनु प्रस्थितस्य पृथोस्तत्राविर्भावः ... ... ,,
आविर्भूतस्य तस्य ब्रह्माणं प्रति स्वोद्यमविज्ञापनम् ... ... ,,
श्रुतवृत्तान्तस्य ब्रह्मणः प्रतिवचनम् ... ... ,,
पृथ्व्यभिप्रेतस्य स्थानादिविनिवेशनस्य विधानाय विश्वकर्माणं प्रति ब्रह्मणो नियोगः ,,
समाहितयोः पृथुभूम्योर्विसर्जनम् ३
भूम्या सह पृथौ, ब्रह्मणि च स्वं स्वं स्थानमुपाश्रिते विश्वकर्मणो
हिमाचलमभि गमनम्. ... ... ,,

२. विश्वकर्मणः पुत्रसंवादाध्यायो द्वितीयः —

अथ ब्रह्मनियोगानुष्ठानाय हिमालयं गतस्य विश्वकर्मणः स्वपुत्रस्मरणम् ,,
स्मरणमात्रोपनतानां तेषां जयादीनां चतुर्णां मानसानां पितुः पादाभिवन्दनम् ,,
तेभ्यो ब्रह्मनियोगनिवेदनं, स्वसाह्यार्थे तत्तत्स्थानादिविनिवेशनाय
तेषां विश्वकर्मणा नियोजनं च. ४

३. प्रश्नाध्यायस्तृतीयः —

अथ जयस्य शास्त्रप्रमेयभूतान् वास्त्वाश्रयानन्यांश्च विविधान्
अर्थानधिकृत्य प्रश्नः ५–१०

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
४. महदादिसर्गाध्यायश्चतुर्थः —	
जयेन जिज्ञासितानामर्थानां यथासम्भवमनुक्रमेण विश्वकर्मणोपदेशः	१०
तत्र प्रथमं महाप्रलयावस्थावर्णनम्	,,
प्रलयावसाने ब्रह्मण आविर्भावः, सृष्ट्युपक्रमश्च	,,
महदहङ्कारादीनां सृष्टिः	,,
महदादिभ्यः पञ्चमहाभूतानां स्वस्वगुणयुक्तानामाविर्भावः	११
भौतिकसर्गे ब्रह्मणोंऽशैः सृष्टाः सुरासुरादयः	,,
कारणजलाद् भूम्युदधिमहीधरनिम्नगाद्वीपानामुत्पत्तिप्रकारः	१२
भूमेरधो रौरवादिनरकाणां सृष्टिः	,,
जरायुजादीनां चतुर्णां भूतानां सृष्टिः	,,
तत्र जरायुजानां विभागः	,,
ग्राम्यारण्यभेदेन पुनर्द्विधा भिन्नानां तेषां विवरणम्	,,
अण्डजस्वेदजोद्भिज्जानां विभागादिकम्	१३
५. भुवनकोशाध्यायः पञ्चमः —	
भूपरिमितिः	,,
सप्तसु द्वीपेषु जम्बूद्वीपवर्णनम्	१४–१८
शाकद्वीपवर्णनम्	१८
कुशक्रौञ्चशाल्मलिगोमेदपुष्करद्वीपानां वर्णनम्	१९
लोकालोकाचलस्थितिपरिमाणादिकम्	२०
सूर्यादीनां स्थितिर्गतिश्च	२०, २१
६. सहदेवाधिकाराध्यायः षष्ठः —	
कृतयुगे मनुष्याणामत्युत्कृष्टा स्थितिः	२२
कालान्तरे क्रमशस्तस्या अपकर्षे हेतुः	२३
च्युतप्रभावानां तेषां तादात्विकी वृत्तिः	,,
क्रमेण रागलोभादीनामुत्पत्त्या तेषां मिथुनीभावेनावस्थानम्	२४
तात्कालिकी लोकस्थितिः	,,
हिमानिलादिवारणार्थं तेषां गृहापेक्षा, गृहनिर्माणाय तैरुपात्तः प्रथमोपायश्च	२५

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्.

७. वर्णाश्रमप्रविभागाध्यायः सप्तमः —

अथैवं दुःखाभिभूतानां लोकानामनुग्रहायादिराजस्य पृथोरभिषेकः ...	२५
पृथुं प्रति नराणां दुःखापनोदनप्रार्थनम्	२६
पृथुना कृतो वर्णविभागस्तद्धर्माश्च	,,
आश्रमविभागस्तद्धर्माश्च	२७
शिष्यधर्माः स्त्रीधर्माश्च	,,
सर्वेषां वृत्त्यर्थं खेटग्रामादिकल्पनम्	,,

८. भूपरीक्षाध्यायोऽष्टमः —

भूमेः सामान्यतो जाङ्गलादिभेदेन त्रैविध्यं, तल्लक्षणं च	२८
त्रिविधाया अपि भूमेः पुनर्बालिशस्वामिन्यादिभेदेन षोडशधा विभागस्तल्लक्षणं च.	२९
जनपदादिनिवेशनोचिता भूमयः	३०
दुर्गनिवेशनोचिता भूमयः	३१
पुरनिवेशने प्रशस्ता भूमयः	,,
सर्ववर्णोचिता भूमिः	,,
तत्तद्वर्णोचिता भूमयः	३२
अपरा सर्वसाधारणी भूमिः	,,
पुरादिनिवेशनेषु वर्ज्यानां भुवां लक्षणम्	,,
कृष्यमाणायां भुवि काष्ठादिदर्शने फलम्	३३
अन्यानि भूपरीक्षणानि	,,

९. हस्तलक्षणाध्यायो नवमः —

हस्तलक्षणम्	३४
हस्तदण्डनिर्माणप्रकारः	३५
तद्देवतानां स्थानवेधे फलम्	३६
तासां स्थानविशेषेषु करधारणे फलम्	,,
प्राशयादीनां त्रयाणां हस्तविशेषाणां लक्षणम्	३७
पुरादीनां माने तेषां विनियोगप्रकारः	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्.
मात्राकलादिकानां सामान्यमानानां लक्षणम्	३७
एकादीनि सङ्ख्यास्थानानि	३८
निमेषादीनि कालमानानि	,,

१०. पुरनिवेशाध्यायो दशमः —

उत्तमाधममध्यमपुराणां मानम्	३९
सर्वपुराणां सामान्यविधिः	,,
उत्तमादिपुरेषु क्वचित् क्वचिद् योजनीया विशेषाः	,,
तेषु महारथ्यादिविधानम्	,,
वप्रविधानम्	४०
परिखाविधानम्	,,
वप्रोर्ध्वभागगतप्राकारविधानम्	४१
कपिशीर्षकस्य काण्डवारिण्याश्च प्रमाणम्	,,
अट्टालकादिविधानम्	,,
चरिकाविधिः	,,
पुरद्वारप्रमाणादिकम्	,,
प्रतोल्यादिकल्पनम्	४२
जलभ्रमविधानम्	४३
छिन्नकर्णादीनि गर्हितानि पुराणि, तन्निवासफलं च	,,
पुरनिवेशादिषु शान्तिकादिविधेरावश्यकता, तद्विधौ नियोज्याः स्थपत्यादयश्च	४४
खेटग्रामादीनां प्रमाणादिकम्	४५
उत्तमादिषु राष्ट्रेषु ग्रामसंख्या	,,
पुरेषु सुवर्णकारादीनां निवेशनस्थानम्	,,
प्रपादीनां निवेशनस्थानम्	४६
बलाध्यक्षादीनां निवेशनस्थानम्	,,
लक्ष्मीवैश्रवणयोर्निवेशनस्थानादिकम्	४७
नगररक्षकदेवतानां बाह्याभ्यन्तरभूमिषु स्थापनप्रकारादिकम्	४७–५०

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः पृष्ठम्.

११. वास्तुत्रयविभागाध्याय एकादशः—

एकाशीतिपदवास्तौ देवतानां निवेशः पदभोगश्च ... ५०, ५१
शतपदवास्तौ तासां पदभोगः ५२
चतुष्षष्टिपदवास्तौ तासां पदभोगः ... ... ,,
सिरानयनप्रकारः ... ... ,,

१२. नाड्यादिसिरादिविकल्पाध्यायो द्वादशः—

षोडशपदवास्तौ देवतानां पदभोगः ५३
सहस्रपदवास्तौ तासां पदभोगः ५४
चतुष्षष्टिपदवृत्तवास्तुविधानम् ... ... ,,
शतपदवृत्तवास्तुविधानम् ... ... ,,
त्र्यश्रादिवास्तुषु वृत्तवास्तुगतपदविभागातिदेशः ५५
वास्तुपुरुषाकृतौ मुखाद्यवयवकल्पनवचनम् ... ... ,,
वास्तुशरीरगतानां नाडीवंशादीनां परिगणनम् ... ... ,,
तत्र नाडीस्वरूपप्रदर्शनं, तत्प्रमाणं च ... ... ,,
वंशानुवंशमहावंशानां मर्मोपमर्मणोः सन्ध्यनुसन्ध्योश्च स्वरूपप्रदर्शनं प्रमाणं च ... ... ,,
तत्तद्गृहद्रव्यैर्महावंशादीनां पीडने फलम् ५६

१३. मर्मवेधाध्यायस्त्रयोदशः—

नगरादिषु मध्ये एकाशीतिपदेन शतपदेन च विभजनीयं वस्तु ... ,,
चतुष्षष्टिपदेन विभजनीयं वस्तु ५७
एकाशीतिपदादिषु वास्तुषु मर्मादीनां स्थानानि ... ... ,,
द्वारभित्त्यादिभिर्मर्मवेधे फलम् ... ... ,,
द्वारमध्यादिषु द्रव्यान्तरैर्विद्धेषु, तेष्वनुवंशादिनिहितेषु च फलम् ... ५८
वेधेऽपि केषाञ्चित् क्वचिद् दोषाभावकथनम् ... ... ,,

१४. पुरुषाङ्गदेवतानिघण्ट्वादिनिर्णयाध्यायश्चतुर्दशः—

पुमाकृतेर्वास्तोरङ्गदेवताविभागः ... ... ,,
वास्तुपुरुषस्य शिरःस्थानम् ५९

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्.
शतपदषोडशपदवास्त्वोः प्रकृतिः	५९
वास्तुदेवानां निघण्टुः	५९–६१
वास्त्ववयवविहिता वर्णाः	६१
१५. राजनिवेशाध्यायः पञ्चदशः —	
पुरे राजवेश्मनिवेशनस्थानम्	”
दुर्गेषु तन्निवेशनस्थानम्	६२
उत्तमादीनां राजवेश्मनां प्रमाणम्	”
तेषां ज्येष्ठादिषु पुरेषु विनियोगः	”
राजवेश्मसन्निवेशसम्बद्धा विशेषाः	”
तत्र द्वारादिनिवेशनस्थानम्	”
नृपवासप्रासादनिवेशनस्थानम्	”
नृपवसतियोग्याः प्रासादविशेषाः	”
धर्माधिकरणकोष्ठागारमहानसादीनां स्थानानि	६३
रथादीनां स्थानानि	”
अन्तःपुरक्रीडागृहकुमारीभवनादीनां स्थानानि	”
अशोकवनिकास्थानम्	”
स्नानगृहधारागृहलतागृहदारुशैलवापीपुष्पवीथ्यादीनां स्थानानि ...	”
आयुधागारभाण्डागारयोः स्थानानि	६४
उलूखलशिलायन्त्रदारुकर्मान्तभवनादीनां स्थानानि	”
पुरोधसः, अभिषेचनस्य, दानाध्ययनशान्तिकर्मणां, छत्रचामरयोश्च स्थानानि	”
मन्त्रगृहस्थानम्	”
अश्वशालास्थानम्	”
राजकुमाराणां राजमातुश्च गृहस्थानम्	”
कुमारविद्याधिगमशालानां स्थानम्	”
शिबिकाशय्यासनानां स्थानानि	”
नृपद्विपानां विषभिषजां च स्थानानि	”
सलिलाशयानां स्थानम्	”
राजबन्धूनां पितृव्यमातुलादीनां स्थानम्	”

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्.
सामन्तानां गृहस्थानम्	६५
देवकुलस्थानम्	,,
ज्योतिर्विदां सेनापतेश्च गृहस्थानम्	,,
शस्त्रकर्मान्तस्थानम्	,,
अस्त्रस्थानविनियोगः	,,
विषाणिनां स्थानान्तरप्रदर्शनादि	,,

१६. वनप्रवेशाध्यायः षोडशः —

द्रव्यानयनार्थं वनप्रस्थानाय विहितो नक्षत्रराश्यादिः	,,
द्रव्यच्छेदनभेदनवनप्रवेशनकार्यारम्भाणां राशयः	६६
वृक्षपरीक्षणम्	,,
श्मशानाद्युद्भूतानां, बालानां वृद्धानां च वृक्षाणां वर्जनीयत्वकथनम् ...	,,
सारद्रुमाणां वयः	,,
तत्र गृहकर्मार्हं वृक्षवयः	,,
अतदर्हे वयसि स्थितानां वृक्षाणां लक्षणम्	,,
तदर्हे वयसि स्थितेष्वपि तेषु वक्ररूक्षादीनां त्यजनीयत्वकथनम् ...	,,
कुटुम्बिनामर्हा वृक्षाः	६७
गृहकर्मण्युपादेयानामन्येषामपि वृक्षाणां सामान्यलक्षणम्	,,
गृहार्थे गर्हिता वृक्षाः	,,
वृक्षप्रमाणविज्ञानम्	,,
वृक्षनक्षत्रविज्ञानम्	,,
वृक्षच्छेदनशान्तिप्रयोजकं स्वस्तिवाचनबलिदानादि	,,
वृक्षच्छेदनविधिः	६८
छिद्यमानानां वृक्षाणां स्वनादिनापि तद्धेयोपादेयतानिर्णयप्रकारः ...	,,
वृक्षपातादिना तज्ज्ञानम्	,,
छेदारम्भे खरोष्ट्रादीनां दर्शने फलम्	,,
छेदादुत्क्षिप्तेष्ववक्षिप्तेषु च वृक्षेषु फलम्	,,
छित्त्वा पातितानां वृक्षाणां भागशश्छेदने विधिः	६९
गोधादिगर्भितानां तेषां लक्षणम्	,,
मण्डलगतेन तत्तद्वर्णविशेषेण गर्भस्थतत्तज्जन्त्वादीनां विज्ञानम् ...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्.
जन्त्वादिगर्भितानां वृक्षाणामुपयोजने फलम्	६९
वनान्तराच्छित्त्वानीतानां तेषां परिग्रहप्रकारः	,,

१७. इन्द्रध्वजनिरूपणाध्यायः सप्तदशः —

इन्द्रध्वजोत्थापनसम्बद्धा कथा	७०
इन्द्रध्वजस्यावश्यकता, तद्विधानप्रकारोपक्रमश्च	७१
इन्द्रध्वजस्योत्तमाधममध्यमानि मानानि	,,
तस्य मूलाग्रभागयोर्मानम्	,,
कुप्यस्य मानम्	,,
अग्रपीठमूलपादादीनां मानम्	७२
इन्द्रगृहनिर्माणविधिः	,,
मल्लस्य, शक्रमातुः, कुमारीणां, कन्यकोदयादीनां च मानम् ...	,,
लकटस्य सूच्याश्च मानादिकम्	,,
मृणालीकल्पनादिकम्	७३
ध्वजयष्टेर्यन्त्राणां चोत्क्षेपणसमयः	,,
तेषां जलाधिवासनप्रकारः	,,
ध्वजस्थाने तेषां निवेशनक्रमः	,,
इन्द्रप्रतिमाप्रतिष्ठा	७४
ध्वजप्रतिष्ठापनविधिः	७५
कुटन्यादियोजनम्	७६
ध्वजपट्टविधानम्	७७
शान्तिहोमविधिः	७८
यथावद्धुतस्याग्नेर्वर्णादिना शुभाशुभपरीक्षणम्	,,
होमद्रव्याणामाज्यसमित्कुशपुष्पपात्रादीनां दुष्टत्वे फलम्	७९
बलिदानप्रकारः	,,
शीलवृत्तविद्यावयस्सम्पन्नानां ब्राह्मणानां सन्तर्पणम्	,,
तैः स्वस्तिवाचनम्	८०
प्रतिष्ठाङ्गभूतोऽभिषेकः	,,
ध्वजदण्डसमुच्छ्रयविधिः	,,
सपरिकरे ध्वजदण्डे यथावदविलम्बितं स्वस्थानस्थिते फलम् ...	८१

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः पृष्ठम्

समुच्छ्रितस्य शक्रध्वजस्य प्राच्यादिदिगाश्रयणे फलम् ८१
अमं भित्त्वा भूमौ प्रतिष्ठमाने तस्मिन् फलम् ८२
तस्य स्थानान्तरभ्रंशादिषु फलम् ... ... ,,
रज्जुच्छेदे फलम् ... ... ,,
इन्द्रध्वजस्य भङ्गे फलम् ... . ,,
छत्रादीनामिन्द्रध्वजस्य वा पाते फलम् ... ... ,,
माल्यविभूषणादीनां च्युतौ फलम् ८३
शक्रवेश्मादीनां विशरणे फलम् ... ... ,,
मृगालीलकटादीनां भङ्गे फलम् ... ... ,,
ध्वजे निर्घातादीनां पाते फलम् ... ... ,,
शक्रोपरि मक्षिकाभिर्मधुच्छत्रकरणे फलम् ... ... ,,
शक्रपार्श्वे मक्षिकादीनां भ्रमणे फलं ... ... ,,
शक्रमूर्धनि श्येनादीनां सङ्गे फलम् ... ... ,,
केतौ वायसादीनां सङ्गे फलम् ... ... ,,
चित्रपटे सुराद्याकाराणां यथावन्निवेशने फलम्... ... ... ,,
एतेषां कुट्टनपातच्छेदप्लोषादिषु फलम् ८४
चित्रपटस्य पातादिषु फलम् ... ... ,,
ध्वजोच्छ्रयविधौ नरादीनां चेष्टादिभिर्निमित्तावलोकनम् ... ... ,,
तदानीं वृष्टिपाते फलम् ८५
उत्सवान्तिमदिवसकृत्यम् ... ... ,,
इन्द्रस्थानभूतस्य क्षेत्रस्य मानादिकम् ... ... ,,
क्षेत्रप्रमाणेन ध्वजायामादिकल्पनम् ... ... ,,
प्रतिवत्सरं केतुप्रमाणस्य वर्धनम् ... ... ,,
यन्त्रपादकुमारिकादीनां निवेशनस्थानानि ८६

१८. नगरादिसंज्ञाध्यायोऽष्टादशः—

नगरपर्यायाः ... ... ,,
नृपाध्युषितस्य नगरस्य संज्ञा ... ... ,,
शाखानगरकर्वटनिगमग्रामसंज्ञितानां स्वरूपकथनम् ... ... ,,
पत्तनपुटभेदनपल्लीजनपदराष्ट्रशब्दितानां तत्कथनम् ८७

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
गृहपर्यायाः	८७
हर्म्यस्य स्वरूपनिर्देशः	,,
सोपानस्य ,, ...	,,
अधिरोहणस्य ,, ...	,,
निःश्रेण्याः ,, ...	,,
काष्ठविटङ्कस्य ,, ...	,,
सौधस्य ,, ...	,,
अभिगुप्त्याख्यस्य	,,
वातायनस्य ,, ...	,,
अवलोकनस्य ,, ...	,,
उलोकस्य ,, ...	,,
हर्म्यप्राकारस्य ,, ...	,,
वितर्दिकायाः ,, ...	,,
ईहामृगस्य ,, ...	,,
निर्यूहस्य ,, ...	,,
वलीकस्य ,, ...	,,
चतुश्शालत्रिशालद्विशालैकशालानाम् ,, ...	८८
शालायाः ,, ...	,,
वापीसंज्ञस्य ,, ...	,,
गर्भगृहस्य ,, ...	,,
उपस्थानाभिधस्य	,,
प्रासादस्य ,, ...	,,
वलभ्याः ,, ...	,,
अलिन्दस्य ,, ...	,,
वलभायाः ,, ...	,,
अपवरकस्य ,, ...	,,
शुद्धान्तस्य ,, ...	,,
प्रतोल्याः ,, ...	,,
कक्षायाः ,, ...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
कोष्ठकस्य स्वरूपनिर्देशः	८८
भित्तेः ,, ...	,,
महानसस्य ,, ...	,,
द्वारकोष्ठकस्य ,, ...	,,
प्रवेशनस्य ,, ...	,,
उदकभ्रमस्य ,, ...	,,
भवनाजिरवनाजिरा-श्रमाजिराणाम् ,, ...	,,
देहल्याः ,, ...	,,
द्वारपक्षस्य ,, ...	८९
अर्गलार्गलसूच्योः ,, ...	,,
परिघफलिहगवाक्षाणाम् ,, ...	,,
तोरणस्य तद्विशेषाणां च ,, ...	,,
सिंहकर्णस्य ,, ...	,,
संयमनाख्यस्य ,, ...	,,
मरालपालीप्रणालीप्रद्वाराणां ,, ...	,,
प्राकारस्य ,, ...	,,
आस्थलकाख्यस्य ,, ...	९०
अमेध्यभूमेः ,, ...	,,
अवस्करस्य ,, ...	,,
परिसरस्य ,, ...	,,
अट्टाभिधस्य ,, ...	,,
अट्टालकस्य ,, ...	,,
अट्टाल्याः ,, ...	,,
अट्टालिकायाः ,, ...	,,
काष्ठप्रणाल्याः ,, ...	,,
धारागृहस्य ,, ...	,,
दर्पणगृहस्य ,, ...	,,
पक्षद्वारस्य ,, ...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
गोपुरद्वारस्य स्वरूपनिर्देशः	९०
उपकार्यायाः ,, ...	,,
क्षौमाढ्यस्य ,, ...	,,
पुरीसंवरणस्य ,, ...	,,
उपनिष्कलस्य ,, ...	,,
उद्यानस्य ,, ...	,,
जलोद्यानजलवेश्मनोः ,, ...	,,
क्रीडागारस्य ,, ...	९१
विहारभूमेः ,, ...	,,
चैत्यस्य ,, ...	,,
सभायाः ,, ...	,,
गोष्ठस्य ,, ...	,,

१९. चतुश्शालविधानाध्याय एकोनविंशः—

एकशालादिषट्शालान्तानां गृहभेदानां पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या	,,
अष्टाङ्गयुक्तानां तेषां दशशालान्तानां पृथक्पृथगेकीकृता सङ्ख्या	,,
गृहद्वितययोगेन निष्पन्नानां गृहविशेषाणां संख्या	९२
उत्तमवर्णिनां विहितानि गृहमालादीन्यन्यान्यष्ट वेश्मानि	,,
विप्रादिविषये चतुश्शालादीनां मानविकल्पाः	,,
तेषु शालालिन्दादीनां प्रमाणम्	९३
मूषावकोसिमयोः स्वरूपकथनादिकम्	,,
भद्रायाः संज्ञाभेदाः	,,
प्रवहणायाः स्वरूपं फलं च	९४
मूषासङ्ख्याज्ञानोपयोगी प्रस्तारः	,,
चतुश्शालगतानां मूषाभेदानां सङ्ख्या	,,
पृथगनेकधा निवेशितैः संवृतैर्विवृतैरप्यलिन्दादिभिर्गृहाणामानन्त्यकथनम्	,,
प्रस्तारे एकभद्राणां विवेचनम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
अष्टानामेकभद्रगृहभेदानां नामानि	९४
अष्टाविंशतिभेदानां द्विभद्रगृहाणां नामानि	९५
षट्पञ्चाशतस्त्रिभद्राणां नामानि	,,
सप्ततेश्चतुर्भद्राणां नामानि	,,
षट्पञ्चाशतः पञ्चभद्राणां नामानि	९६
अष्टाविंशतेः षड्भद्रभेदानां नामानि	,,
अष्टानां सप्तभद्राणां नामानि	९७
अष्टभद्रस्य नाम	,,
एषु मूषाविन्यासक्रमः	,,
उक्तानामेकभद्रादीनां सर्वेषां चतुश्शालभेदानां पिण्डीकृता सङ्ख्या	,,
क्वचित् क्वचिद् गृहविशेषेषु मूषाद्वयोर्निम-योर्न्यसनक्रमादिकम्	,,
अथ एकभद्रभेदेषु धामायतादिषु मूषास्थितिः	,,
तेषां प्रत्येकं फलप्रदर्शनम्	९८
द्विभद्रभेदेषु ईरादिषु मूषास्थितिः	,,
त्रिभद्रभेदेषु ऐन्द्रादिषु मूषास्थितिः	९८-१००
चतुर्भद्रभेदेषु कृतादिषु मूषास्थितिः	१०१-१०५
पञ्चभद्रभेदेषु कानलादिषु मूषास्थितिः	१०५-१०७
षड्भद्रभेदेषु किन्नरादिषु मूषास्थितिः	१०७,१०८
सप्तभद्रभेदेषु भाण्डीरादिषु मूषास्थितिः	१०८
अष्टभद्रे सर्वतोभद्राख्ये मूषास्थितिः	,,

२०. निम्नोच्चादिफलाध्यायो विंशः —

अग्रपृष्ठशब्दयोः परिभाषा	१०९
द्रव्यायामादिभिः शालाया आधिक्ये फलम्	,,
गृहभूमेर्वामदक्षिणादिभागेषु निम्नोन्नतत्वे फलम्	,,
सच्छत्रादिकं चतुर्विधं गृहं, तल्लक्षणं च	,,
गृहस्य मुखादिभागेष्वलिन्दकल्पना, तत्फलं च	,,
तत्रैव हलकालिन्दकल्पना, तत्फलं च	११०

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
सुसमापिते सति वास्तुनि फलम्	११०
बहुप्रकारेषु त्रिशालेषु निन्द्यौ प्रकारौ	,,
तत्रैव धन्यौ प्रकारौ	१११
तेषां चतुर्णां नामानि	,,
सिद्धार्थादीनां षण्णां द्विशालवेश्मनां स्वरूपं फलं च	,,
सप्तशालेषु मणिच्छन्दादीनां स्वरूपप्रकटनम्	,,
गृहसङ्घट्टस्य स्वरूपं फलं च	,,

२१. द्वासप्ततित्रिशाललक्षणाध्याय एकविंशः —

मुख्यानां चतुर्णां त्रिशालानां नामानि लक्षणं फलं च	११२
अष्टादशानां हिरण्यनाभभेदानां संज्ञाः	,,
तन्मुख्यानां सुक्षेत्रचुल्लीपक्षघ्नभेदानां पृथक्पृथङ् नामनिर्देशः	११३
हिरण्यनाभभेदेषु जाम्बूनदहिरण्यरुक्म हेमसंज्ञितानां लक्षणम्	,,
अवशिष्टानां कनकादीनां लक्षणम्	११४
सुक्षेत्रभेदानां नागादीनां लक्षणम्	,,
चुल्लीभेदानां भुजङ्गमादीनां लक्षणम्	११५
पक्षघ्नभेदानां राक्षसादीनां लक्षणम्	११६
पञ्चभद्रकस्वरूपम्	,,

२२. द्विशालगृहलक्षणाध्यायो द्वाविंशः —

द्विशालगृहेषु मुख्यानां षण्णां सिद्धार्थादीनां लक्षणम्	११७
तेषु प्रत्येकमेकादशधा भिन्नानां सिद्धार्थयम-सूर्यदण्डवाताख्यानां, चतुर्धा भिन्नयोश्चुल्लीकाचयोश्च संज्ञाः ...	११८
सिद्धार्थभेदानां वसुधारादीनां, यमसूर्यभेदानां संहारादीनां च लक्षणम्	११९
दण्डगृहभेदानां प्रचण्डादीनां, वातभेदानां मरुदादीनां, चुल्लीभेदस्य रोगाख्यस्य च लक्षणम्	१२०
अवशिष्टानां चुल्लीभेदानां, काचभेदान छलादीनां च लक्षणम्	१२१

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः पृष्ठम्

२३. एकशाललक्षणाध्यायस्त्रयोविंशः —

एकशालेष्वलिन्दप्रस्तारः १२१
षोडशानां ध्रुवाद्याख्यानामेकशालभेदानां निर्देशादि १२२
एष्वेव भेदेष्वलिन्दविन्यासवैचित्र्येण निष्पन्नानां रम्यनन्दश्रीधरमुदिताख्यानामन्येषामेकशालविशेषाणां लक्षणं फलं च ... ... ,,
तादृशानामेव वर्धमानाद्याख्यानां लक्षणं फलं च १२३
पूर्वमुक्तेषु ध्रुवादिषु षोडशवेश्मसु षड्दारुकल्पनया रूपान्तरं प्राप्तानामन्येषां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः ... ... ,,
एषामेव भेदानां शालापुरतो विन्यस्तैः षड्दारुभिरुत्पन्नानां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः ... ... ,,
शालामध्यविन्यस्तैः षड्दारुभिरेतेभ्य उत्पन्नानां षोडशगृहभेदानां संज्ञाः १२४
शालान्तविन्यस्तषड्दार्वादिभिः प्रकारान्तरमापन्नानामपरेषां षोडशवेश्मनां संज्ञाः ... ... ,,
अनन्तरोक्तेषु गृहेषु प्रत्येकं चतुर्दिक्षु अलिन्दपरिष्कारेण प्रसूतानां षोडशगृहाणां संज्ञाः ... ... ,,
एवं भेदप्रभेदैर्वर्धितानामेकशालानामाहत्य सङ्ख्याकथनं ... ... ,,
सिद्धार्थस्थितयोर्हस्तिनीमहिष्याख्ययोः, दण्डगृहस्थितयोर्गावीछगल्याख्ययोश्च शालयोर्यथायथं मेलनेनात्र संभूतानां चतुर्णां गृहविशेषाणां संज्ञाः फलं च ... ... ,,

२४. द्वारपीठभित्तिमानाद्यध्यायश्चतुर्विंशः —

हलकाख्यानां पञ्चदशगृहाणां संज्ञाविशेषाः लक्षणं फलं च ... १२५
प्रकृताध्याय एवोपरि वक्ष्यमाणानां विषयाणां सङ्ग्रहः १२६
पञ्चानां वर्गाधिपानां स्वरूपकथनम् ... ... ,,
तत्र सामान्यतो भित्त्यलिन्दपीठद्वारोच्छ्रायादीनां प्रमाणप्रदर्शनम् १२७
भद्रनन्दपीठसौरभपुष्कराख्यानां चतुर्णां गृहविशेषाणां लक्षणं फलं च १२८

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः — पृष्ठम्

२५. समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनाध्यायः पञ्चविंशः —

तत्र पञ्चशालानामाहत्य सङ्ख्या, पञ्चशालोत्पत्तिप्रकारश्च ... १२९
अष्टानां पञ्चशालानां संज्ञाः ... ... ,,
प्रकारान्तरेण निष्पन्नानां तेषां संज्ञाः १३०
विभद्रादिदशभद्रान्तानां तेषां प्रत्येकं सङ्ख्या ... ... ,,
षट्शालोत्पत्तिप्रकारः १३१
षोडशविधानां षट्शालानां संज्ञाः लक्षणं च ... ... ,,
अखिलवर्णिनां शुभानि षट्शालानि, तद्भेदाश्च ... ... ,,
राजोचितानि विंशतिः षट्शालानि १३२
विभद्रादिद्वादशभद्रान्तानां षट्शालानां प्रत्येकं संख्या ... ... ,,
सप्तशालनिष्पत्तिः, तद्भेदाश्च १३३
राजयोग्यानि सप्तशालानि १३३,१३४
प्रकारान्तरेण निष्पन्नानि अन्यानि
तादृशानि सप्तशालानि १३५
विभद्रादिचतुर्दशभद्रान्तानां सप्तशालानां
प्रत्येकं सङ्ख्या १३६
अष्टशालनिष्पादनप्रकाराः १३७
विभद्रादिषोडशभद्रान्तनामष्टशालानां प्रत्येकं सङ्ख्या ... ... ,,
तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्ख्या १३८
नवशालनिष्पादनप्रकाराः ... ... ,,
विभद्राद्यष्टादशभद्रान्तानां नवशालानां
पृथक्पृथक् सङ्ख्या १३९
दशशालनिष्पादनप्रकाराः १४०
विभद्रादिविंशतिभद्रान्तानां दशशालानां
पृथक्पृथक् सङ्ख्या ... ... ,,
तेषां सर्वेषामेकीकृता सङ्ख्या १४१
चतुश्शालादिदशशालान्तानां सर्वेषां वेश्मनां
भूषावहनादिना निर्दिष्टाः सङ्ख्याः ... ... ,,

२६. आयादिनिर्णयाध्यायः षड्विंशः —

प्रासादकर्मणि सूत्रपातविधिः १४२

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
प्राच्यादिदिङ्मुखानां वेश्मनामारम्भे निषिद्धा मासाः	१४३
आये परिज्ञातव्ये क्षेत्रमानसाधननियमः	,,
आयानयनप्रकारः	,,
प्राच्यादिदिक्षूत्पन्नानामायानां यथाक्रममुद्दिष्टा ध्वजादिसंज्ञाः, तेषां फलं च	,,
विप्रादीनां प्रशस्ता आयाः	१४४
तत्तन्निवेशनानि प्रति तत्तदायानां विनियोगः	,,
तेष्वधमानां क्वचिददोषत्वकथनम्	,,
व्ययानयनप्रकारः	१४५
समाधिकादिभेदेन त्रिप्रकारस्य व्ययस्य यथाक्रममुद्दिष्टाः पिशाचादिसंज्ञाः	,,
अंशकानयनप्रकारः	,,
गृहादिष्वंशकस्य मुख्यत्वव्यवस्थापनम्	,,
अंशकत्रयस्य संज्ञाः	,,
गृहतारास्तत्संज्ञाश्च	,,
वर्ज्या मध्यमाश्च ताराः	,,
त्रयाणां नक्षत्रगणानां संज्ञास्तदन्तर्भूतानि नक्षत्राणि च	,,
भर्तुर्नक्षत्रगणसाम्यादिना विहितस्य गृहस्य शुभफलप्रदत्वकथनम्	१४६
गृहविधाववश्यचिन्तनीयानि षट् करणानि	,,
त्र्यादिभिः शुभैस्तैर्यथोत्तरं शुभकरत्वकथनम्	,,
समायव्ययादिवेश्मनां वर्जनीयत्वकथनम्	,,
समसप्तकादीनां गृहाणां कर्तव्यत्वोपदेशः	,,
षट्कोष्ठकादिगृहाणां वर्जनीयत्वकथनम्	,,
गृहजीवितादिविज्ञानोपायादिकम्	,,
मेर्वादीनि षट् छन्दांसि तद्विन्यसनप्रकारश्च	१४६,१४७
तेभ्यो गृहमूषासङ्ख्यादिज्ञानम्	१४८

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः | पृष्ठम्

२७. सभाष्टकाध्यायः सप्तविंशः —

अष्टानां सभानां संज्ञादिकम् १४८
नन्दादिसंज्ञानां तासां लक्षणम् १४९

२८. गृहद्रव्यप्रमाणाध्यायोऽष्टाविंशः —

द्वारप्रमाणम् ... ... ,,
प्रकारान्तरेण तत्प्रदर्शनम् १५०
पेद्यापिण्डोदुम्बरद्वारशाखारूपशाखाखस्वशा-
खादीनां प्रमाणम् ... ... ,,
शुभाः पञ्च द्वारशाखाः ... ... ,,
तलोच्छ्रयः ... ... ,,
शालाप्रमाणम् १५१
तलन्यासविधिः ... ... ,,
पद्मकस्तम्भविधिः ... ... ,,
घटपल्लवकस्तम्भविधिः ... ... ,,
कुबेराख्यस्तम्भविधिः १५२
श्रीधराख्यस्तम्भविधिः ... ... ,,
तलपट्टहीरग्रहणादीनां प्रमाणम् ... ... ,,
प्रतिमोकादीनां लक्षणम् १५३
भूतास्यादीनां चतुर्णां गृहच्छाद्यानां लक्षणम् ... ... ,,
सिंहकर्णादीनां गृहेषु वर्जनीयत्वकथनम् ... ... ,,
अन्येषामप्येवंविधानां निषेधः १५४

२९. शयनासनलक्षणाध्याय एकोनत्रिंशः —

शयनासनकर्मारम्भसमयः ... ... ,,
शयनासननिर्माणार्थे विहिता वृक्षाः ... ... ,,
हेमादिनद्धानां शयनासनानां श्रेष्ठत्वकथनम् ... ... ,,
शयनासनाद्यर्थकवृक्षादाने तत्कर्मारम्भे च
लक्षणीयानि निमित्तानि ... ... ,,
नृपादीनां शय्यायाः प्रमाणम् १५५

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
शय्याङ्गानां विधानम्	१५५
एकद्रव्यजायाः शय्यायाः श्रेष्ठत्वं, मिश्रद्रव्यजाया द्विदार्वादेश्च तस्या निन्द्यत्वं च	१५६
शय्यादारुसन्धानविधिः	,,
मध्यव्रणाद्युपलक्षितस्य शयनासनस्य दुष्टत्वम्	,,
सुश्लिष्टत्वादिगुणयुक्तत्वेन तेषां निर्मितेरावश्यकता	,,
निष्कुटादीनां षण्णां छिद्राणां लक्षणं फलं च	,,
शयनासनद्रव्यसामान्यविधिः	१५७
आसनक्लृप्तौ शय्योक्तदारूणामतिदेशः	,,
आसनाङ्गानां विधानम्	,,
तेषां द्रव्योपाधिकृतोत्तमादिता	,,
आसनालङ्काराः	,,
पादुकासङ्ग्रहादीनां मानम्	१५८

३०. राजगृहाध्यायस्त्रिंशः —

उत्तमादीनां राजवेश्मनां मानम्	,,
पृथ्वीजयप्रासादलक्षणम्	१५९, १६०
मुक्तकोणप्रासादलक्षणम्	१६१
श्रीवत्सप्रासादलक्षणम्	१६२
सर्वतोभद्रप्रासादलक्षणम्	,,
शत्रुमर्दनाख्यप्रासादलक्षणम्	१६३
राज्ञः क्रीडार्थानि क्षोणीविभूषणादीनि पञ्च गृहाणि	,,
अवनिशेखरप्रासादलक्षणम्	१६४
भुवनतिलकप्रासादलक्षणम्	,,
विलासस्तबकाख्यप्रासादलक्षणम्	,,
कीर्तिपताकप्रासादलक्षणम्	१६५
भुवनमण्डनप्रासादलक्षणम्	,,
क्षोणीभूषणप्रासादलक्षणम्	,,
पृथ्वीतिलकप्रासादलक्षणम्	१६६
श्रीनिवासाख्यप्रासादलक्षणम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
प्रतापवर्धनप्रासादलक्षणम्	१६७
लक्ष्मीविलासाख्यप्रासादलक्षणम्	,,
क्षोणीभूषणादिषु पञ्चसु प्रासादेषु भूमिकासंख्या	,,
उक्तानां सर्वेषां प्रासादानां द्वारमानादिकम्	१६८
तुम्बिन्याद्याः सप्त लुमाः	,,
मदलादीनां निवेशनस्थानादि	,,
राजासनमत्तवारणादीनां विधानम्	१६९

३१. यन्त्रविधानाध्याय एकत्रिंशः—

इष्टदेवतावन्दनमध्यायोपक्रमप्रतिज्ञा च	,,
यन्त्रशब्दनिर्वचनम्	१७०
यन्त्रबीजानि	,,
तत्र पक्षान्तरप्रदर्शनं, तत्खण्डनं, स्वमतस्थापनं च	,,
बीजशक्तिस्वभावासूत्रणम्	,,
तज्ज्ञानस्य सर्वार्थसाधकता	१७१
पार्थिवादीनां पदार्थानां बीजानि	,,
तत्तत्पदार्थेषु बीजभूतानां कार्याणि	१७२
बीजबीजिभावविकल्पनानां नानात्वम्	१७३
क्रियानिष्पादनाधिष्ठानम्	,,
यन्त्रगुणाः	,,
तेषूत्कृष्टा गुणाः	,,
यन्त्रसाध्याः क्रियादयस्तद्विवरणं च	,,
प्रकृतग्रन्थोक्तदिशा युक्त्या सम्यङ् निष्पादितैर्यन्त्रैः साध्यानां विचित्राणां दिङ्मात्रप्रदर्शनपरो निर्देशः	१७४
तत्र प्रथमभूमिकात उपरिभूमिकासु पञ्चसु कल्पितासु प्रतिप्रहरमेकैकभूमिकां प्रति यन्त्रेण शय्यायाः प्रसर्पणम्	१७५
पुत्रिकया नाडीप्रबोधनम्	,,
तोये वह्निदर्शनादीन्यत्यद्भुतानि यन्त्रकार्याणि	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः पृष्ठम्

सूर्यादिग्रहगतिप्रदर्शनपरं गोलभ्रमणम् १७५
दारवस्य पुरुषस्यैकनाडिकयैकयोजनगमनम् ... ... ,,
तालगत्यनुसारेण नृत्यन्त्या पुत्रिकया दीपे क्षीण-
क्षीणतैलप्रक्षेपः ... ... ,,
यन्त्रहस्तिनः प्रदीयमानभूरिवारिपानम् ... ... ,,
यन्त्रशुकानां तालगत्या गाननर्तनादीनि ... ... ,,
पुत्रिकाणां गजानां तुरगादीनां च ताल-
गत्या वलनवर्तननर्तनादीनि ... ... ,,
वापीकूपादितः क्षेत्रेषु यन्त्रेण जलानयनापन-
यनवैचित्र्यम् ... ... ,,
कृत्रिमाणां गजादिरूपाणां यथेच्छं निर्गमन-
धावनयुद्धकरणादिकाश्चेष्टाः ... ... ,,
स्वबुद्धिपरिकल्पितानामुक्तानामेषामन्येषां च
यन्त्राणां घटनारीतिप्रदर्शनं प्रति ग्रन्थक-
र्तुरप्रवृत्तौ कारणम् १७६
पुरातनोक्तदिशा वक्ष्यमाणानां यन्त्राणां सु-
ग्रहाय बीजभूतानां भूतानां पुनः स्मारणम् ... ... ,,
एतादृशविचित्रनानायन्त्रनिर्माणप्रावीण्यसामग्री ... ... ,,
स्वनोद्गारियन्त्रद्वयघटना १७७
पटहमुरजादिस्वनोद्गारियन्त्राणां तत्त्वम् ... ... ,,
अम्बरचारिविमानघटना ... ... ,,
दुष्टगजोच्चाटनाय रसयन्त्रेण सिंहनादविधा-
नप्रकारः ... ... ,,
दासादिपरिजनवर्गैर्विना तत्कृत्यानां सर्वेषां
यथावन्निर्वहणाय कल्पितस्य स्त्रीपुरुष-
प्रतिमायन्त्रस्य घटना १७८
अनभिमतजनप्रवेशनिरोधनाय द्वारदेशे स्था-
पनीयं द्वारपालयन्त्रम् ... ... ,,
निशि प्रविशतश्चौरस्य प्रसभघातनाय स्थापनी-
यं योधयन्त्रम् ... ... ,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
दुर्गगुप्त्यै क्रीडाद्यर्थे च युक्त्या योजितैर्यन्त्रैश्चापशतघ्न्यादितत्तद्वस्तुविधानवचनम्	१७८
अथ वारियन्त्रप्रस्तावः	,,
तत्र पातयन्त्रस्वरूपम्	,,
उच्छ्रायसमपातयन्त्रस्वरूपम्	१७९
पातसमोच्छ्राययन्त्रस्वरूपम्	,,
उच्छ्रययन्त्रस्वरूपम्	,,
धारागृहादिवारिगृहपञ्चकम्	,,
तत्र धारागृहविधानम्	१७९-१८१
प्रवर्षणगृहविधानम्	१८१
प्रणालगृहविधानम्	१८२
जलमग्नगृहविधानम्	,,
नन्द्यावर्तगृहविधानम्	१८३
अथ रथदोलाप्रस्तावः	१८४
वसन्तादयः पञ्च दोलाः	,,
तत्र वसन्तदोलाविधानम्	,,
मदननिवासाख्यदोलाविधानम्	१८५
वसन्ततिलकाख्यदोलाविधानम्	,,
विभ्रमकदोलाविधानम्	१८६
त्रिपुराख्यदोलाविधानम्	१८६-१८८
यन्त्राध्यायविधातुरभिधानम्	१८८

३२. गजशालाध्यायो द्वात्रिंशः —

सुभद्राख्याया गजशालाया लक्षणम्	,,
नन्दिन्याख्याया लक्षणम्	१८९
सुभोगदाया लक्षणम्	,,
भद्रिकाया लक्षणम्	,,
वर्धन्याख्याया लक्षणम्	,,
भ्रमारिकाया लक्षणं फलं च	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः				पृष्ठम्
३३. अश्वशालाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः —				
अश्वशालनिवेशनस्थानम्	...	...	...	१८९
अश्वशालानिर्माणे निषिद्धा वृक्षाः, भूमयश्च	...	...	...	१९०
निषिद्धदेशजैर्वृक्षैस्तच्छालानिर्माणे फलम्	...	...	...	,,
निषिद्धभूमिषु तन्निवेशने फलम्	...	...	...	,,
भर्तृगृहपरिसरे तन्निवेशने स्थाननियमाः	...	...	...	१९१
अश्वशालाविधानम्	...	...	...	,,
शालायामश्वानां स्थानकल्पना	...	...	...	,,
यवसस्थानकल्पना	...	...	...	,,
खादनकोष्ठकल्पना	...	...	...	१९२
पादबन्धनकीलककल्पना	...	...	...	,,
शालानिर्माणाङ्गबलिहोमादिकरणकथनम्	...	...	...	,,
प्रसूतु शालासंस्करणविशेषाः	...	...	...	,,
बहूनां तुरगाणामवस्थापननियमाः	...	...	...	,,
अश्वरक्षाद्यर्थानामुपकरणानां संग्रहः	...	...	...	,,
प्राङ्मुखायां शालायां तुरगबन्धनस्थानम्	...	...	...	१९३
अश्वानां प्राच्याभिमुख्येन बन्धनस्य सर्वसमृद्धिहेतुत्वस्थापनम्	...	...	...	,,
स्नानाधिवासनादिकरणे दिङ्नियमः	...	...	...	,,
दक्षिणाभिमुखायामुत्तराभिमुखायां च शालायामश्वबन्धनस्थानादिकम्	...	...	...	,,
सन्नाह्यादीनामश्वानां दक्षिणापश्चिमाग्नेयीनैर्ऋत्याभिमुख्येन बन्धनस्य निषेधः	...	...	...	१९४
वायव्यैशान्याभिमुख्येन बन्धनस्य निषेधः	...	...	...	१९५
ब्राह्म्यां दिश्यनुवंशस्थाने च तद्बन्धननिषेधः	...	...	...	,,
रुग्णानामितरेषां च बन्धने नियमा	...	...	...	,,
भेषजतदुपकरणारिष्टव्याधिताश्वमन्दिराणां स्थानानि, चिकित्सोपकरणानि च	...	...	...	,,
उक्तानां चतुर्णां मन्दिराणां सामान्यविधिः	...	...	...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
३४. अप्रयोज्यप्रयोज्याध्यायश्चतुस्त्रिंशः —	
राजादीनां वेश्मस्वप्रयोज्यानां परिगणनम्	१९६
तेषु प्रयोज्यानां प्रदर्शनोपक्रमः	१९७
तत्र प्रयोज्या देवता	,,
द्वारेषु प्रयोज्याः प्रतीहार्यादिप्रतिकृतयः	१९८
तत्रैव निधीनां लक्ष्म्याश्च निवेशनप्रकारः	,,
गृहबाह्याभ्यन्तरभित्तिष्वालेख्यानां नियमाः	,,
वासधाम्नि निवेशनीयानामालेख्यानां विधिः	,,
गृहभित्तीनामधोभागेषु, प्रेक्षासङ्गीतभूम्यादिषु च प्रयोज्यानां लेख्यानां विधिः	१९९
वेश्मनि प्रयोक्तव्यत्वेनोक्तानां सर्वेषां पीठशय्यासनसभादेवकुलादिष्वप्यतिदेशः	,,
३५. शिलान्यासविध्यध्यायः पञ्चत्रिंशः —	
शिलान्यासविषये विहितोऽयनपक्षतिथिनक्षत्रादिः	२००
प्रथमेष्टकालक्षणम्	,,
वर्जनीयाः शिलाः	,,
नन्दादिकाश्चतस्रः शिलास्तद्देवताश्च	,,
वेदीप्रकल्पनम्	,,
नन्दाप्रतिष्ठापनविधिः	२०१
उपशिलान्यसनम्	२०२
नन्दादीनामङ्काः, निवेशनस्थानानि च	,,
तासां प्रतिष्ठापनमन्त्रादिकम्	,,
वैदिकाः शिलाचयनमन्त्राः	२०३
विधिना स्थापितानां तासां पुनश्चालनादिषु फलम्	,,
३६. बलिदानविध्यध्यायः षट्त्रिंशः —	
मण्डलकरणम्	२०४
कलशन्यसनम्	,,
वास्तुदेवताकल्पनम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
अर्घ्यनिवेदनम्	२०४
विश्वकर्मणो वास्तुदेवानां च पूजाविधिः	२०४,२०५
शान्तिबलिकर्मार्हाणि वास्त्वादीनि	२०६

३७. कीलकसूत्रपाताध्यायः सप्तत्रिंशः —

प्रशस्ताः कीलकवृक्षाः	,,
विप्रादीनां विहिताः कीलकवृक्षाः	,,
अशोकादीनां विनियोगे क्वचिद् विशेषः	,,
तत्तद्वर्णानधिकृत्यापरो वृक्षविधिः	२०७
वर्णानां कीलकप्रमाणम्	,,
तेषां सूत्रविधिः	,,
कीलकस्थापनप्रकारः	,,
तत्र कीलकस्थानपूजा	,,
वेदीकल्पनम्	,,
वेद्यां ब्रह्मकुम्भस्थापनम्	२०८
कीलसंस्करणम्	,,
परश्वाद्युपकरणपूजा	,,
अग्निकार्यम्	,,
सुलग्नपरीक्षणम्	,,
पुरोहितसांवत्सरिकस्थपत्यादीनां पूजा	२०९
सूत्रपातसम्बद्धं बलिकर्म	,,
यथोक्तबल्यलाभे कार्यो बलिविशेषः	,,
विप्रपूजनम्	,,
स्थापनाय प्रथमशङ्कोरुद्धरणनियमाः	२१०
भूमौ प्रतिष्ठापितस्य तस्य परशुना हनने मन्त्राः	,,
शङ्कुमूर्धनि दातव्यानां प्रहाराणां संख्या	,,
हन्यमाने तस्मिन् शुभाशुभनिमित्तोपलक्षणम्	,,
ताडनसाधननियमः	,,
ताडितस्य कीलस्य प्राच्यादिषु नमने फलम्	२११
तस्मिन् कूर्चके जाते फलम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
तस्य स्फुटनहस्तत्र्यंशादिषु फलम्	२११
प्रथमप्रहाराष्टकेन कीलकस्य स्वास्थ्याभावे कर्तव्यं कर्म	,,
शङ्कुभिषेकादि	,,
सूत्रबन्धनप्रकारः	,,
कीलकस्थानेषु बलिदानविधिः	२१२
साम्ना मन्त्रितेन कुम्भोदकेन वास्तुप्रोक्षणम्	,,

३८. वास्तुसंस्थानमातृकाध्यायोऽष्टात्रिंशः—

चत्वारिंशतः क्षेत्रसंस्थानानां संज्ञास्तद्वि-नियोगश्च	२१३
तत्र राज्ञस्तत्कुमाराणां पुरोहितस्य सेनापतेश्च वासोचितानि क्षेत्रसंस्थानानि	,,
वाहनानामन्तःपुरस्य वणिजां वैश्यानां सुवर्णकृतां नगरगोष्ठिकानां च क्षेत्रसंस्थानानि	,,
पुत्राभिलाषिणां महामात्राणां मृगलुब्धकानामेकदृश्वनां गणाचार्याणां प्रजाध्यक्षाणां मालिकानां च तत्संस्थानानि	,,
सौचिकवाजिपोषकतक्षवन्दिमागधवेण्वादिवादकानां तत्संस्थानानि	२१४
रथिनां नीचानां श्वपाकानां धान्यजीविनां श्रमणानां हस्त्यारोहिणां च तत्संस्थानानि	,,
बन्धनागारिणां सुराकाराणां कर्मकारिणां नापितानां कोशरक्षिणां वह्निजीविमानोपजीविनोश्च तत्संस्थानानि	,,
चैत्यवृक्षवाटयज्ञवाटादीनां क्षेत्रसंस्थानानि	,,

३९. द्वारगुणदोषाध्याय एकोनचत्वारिंशः—

विप्रादिविषये गृहाणां द्वाराणां च स्थानानि	२१५
तेषु वास्तुद्वारगृहद्वाराणां निवेशननियमाः	,,
उत्सङ्गादयश्चत्वारो निवेशाः	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
तत्रोत्सङ्गलक्षणम्	२१५
हीनबाहुकादीनां लक्षणम्	२१६
ब्राह्मणाद्यावासस्थानकल्पनेषु विशेषविधिः	,,
वर्णानामुत्तमा भूमिकासंख्या	,,
तेषां गृहोर्ध्वप्रमाणम्	२१७
देवादिविषये विशेषविधिः	,,
तत्तद्वर्णानामवरा भूमिकासंख्या	,,
उत्कृष्टस्य वास्तुद्वारस्य गुणाः	,,
द्वारकल्पनसम्बद्धा नियमाः	२१८
रथ्यादिभिर्द्वारवेधे फलम्	२१९
भिन्नदेहाख्यस्य वास्तुनो लक्षणं	,,
पूर्वादिद्वाराणां निवेशनस्थानानि	,,
द्वारेष्वविहितस्थाने विनिवेशितेषु फलम्	,,
४०. पीठमानाध्यायश्चत्वारिंशः —	
उत्तमाधनमध्यमानां पीठानामुच्छ्रायः, विष्ण्वादिषु तद्विनियोगश्च	२२०
मनुष्यवास्तुपीठानां सामान्यविधिः	,,
विप्रादिषु विषये पीठोत्सेधाः	२२१
तेष्वेव प्रकारान्तरेण पीठविभागः	,,
४१. चयविध्यध्याय एकचत्वारिंशः —	
विंशतिश्चयगुणाः	,,
तद्विपरीताश्चयदोषा अपि विंशतिरिति कथनम्	२२२
दक्षिणपश्चिमादिकुड्यानां बहिर्मुखत्वेन विचयने फलं	,,
कुड्येषु दलितादिषु फलम्	,,
प्राग्दक्षिणादिकर्णानां बहिर्मुखत्वेन प्रवर्तने फलम्	,,
सर्वबाहुषु चयनेन विशालीकरणे तत्सन्निवेशः	,,
इहायव्ययव्यवस्था	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
चीयमानस्यातिसंक्षिप्तविस्तृतत्वादिषु संज्ञान्तरं फलं च … … …	२२३
भित्तिचयनप्रकारः … … …	,,

४२. शान्तिकर्मविध्यध्यायो द्विचत्वारिंशः —

कर्णिकास्थापनम् … … …	२२४
कर्णिकासु वायसादीनामधिरोहणे फलम् … … …	२२५
तासां गृध्रादिभिर्घर्षणे शान्तिकविधिः … … …	२२६
गृहाङ्गानां मधुसञ्चयादिभ्यो रक्षणीयत्वकथनम् … … …	,,
गृहदारूणामिन्द्रकीलादीनां भङ्गादिषु फलम् … … …	,,
नवदारुभङ्गादिषु प्रतिविधानम् … … …	२२७
स्थूणामल्लकपृष्ठवंशानां भङ्गे शान्तिविधिः … … …	,,
वारणसङ्ग्रहस्थूण्योपधिकायतुलानां भङ्गे तद्विधिः … … …	२२८
कर्णिकाभ्यन्तरस्थूणाशालापादयुगतुलापादादीनां भङ्गे तद्विधिः … … …	२२९
प्रधानस्थूणाप्रवक्रतादिषु फलम् … … …	२३०
विशेषतश्चतुर्णां तुलादीनां वास्तुमुख्याङ्गानां हिंसने शान्तिविधानकथनम् … … …	,,

४३. द्वारभङ्गफलाध्यायस्त्रिचत्वारिंशः —

उक्तानां नवकर्मविधीनां ग्रामादिष्वप्यतिदेशः … … …	,,
नवकर्मणि स्निग्धत्वादिगुणयुक्तेषु तद्विहीनेषु च द्रव्येषु फलम् … … …	२३१
पूर्वादिषु नगरभागेषु रम्येषु सत्सु राज्ञः फलम् … … …	,,
तेष्वरम्येषु तस्य फलम् … … …	२३२
देवागारपुरद्वारादिषूत्पन्नानि शुभाशुभानि राज्ञ एवेति कथनम् … … …	,,
उक्तेषु स्थलविशेषेषु नवकर्मण्यूर्ध्ववंशार्गलादीनां मुख्याङ्गानां भङ्गे राज्ञः फलम् … … …	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
तद्भङ्गे ग्रामे सति फलम्	२३२
दिगुत्थिते गृहोत्थिते च तस्मिन् फलभाजः	,,
इह सर्वनिमित्तेषु शुभाशुभानां फलानां कालनियमः	,,
वास्तुनि पुराणत्वव्यपदेशस्य कालः	,,
नवकर्मणि निष्ठिते तुम्बिकादीनां भङ्गे फलम्	,,
लुमामुण्डकानुपूर्वमुण्डगोधानागपाशाख्यानां गृहद्रव्याणां भङ्गे फलम्	२३३
कपाटस्यार्गलापार्श्वस्य तोरणस्य वास्तुमध्यस्य सोपानस्य वेदिकायाः गवाक्षस्य पट्टस्तम्भस्य च विनाशे फलम्	,,
गजशुण्डायाः कपोताल्याः स्थपनीपट्टिकाया विटङ्कस्य तुलायाः शालास्तम्भस्य स्तम्भशीर्षादेश्च भङ्गे फलम्	,,
प्रतिमोकभङ्गवाहिन्याकाशतलकपतिच्छन्नप्रासादमण्डलवलभीनां भङ्गे फलम्	२३४
प्रलीने विलीने विनष्टे च प्रासादे फलम्	,,
पूर्वोक्तेषु गृहावयवेषु स्निग्धत्वादिगुणविशिष्टेषु फलम्	,,
कर्णिकाभ्यन्तरस्थूणाशालापादहानौ फलम्	,,

४४. स्थपतिलक्षणाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः —

स्थपतेर्लक्षणम्	२३५
वास्तुशास्त्रस्याष्टाङ्गानि	,,
स्थपतेः कृत्यविशेषाः	,,
शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्तुः स्थपतेर्घातः	,,
अविदुषः स्थपतेर्निन्दा	,,
केवलशास्त्रज्ञस्य केवलकर्मज्ञस्य वा तस्य प्रयोगकाले सम्पद्यमाना दोषाः	,,
कर्मविदः स्थपतेर्लक्षणम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
शास्त्रकर्मसामर्थ्ये विद्यमानेऽपि प्रज्ञाभावे तस्य सम्भाव्यमाना दोषाः	२३५
प्रज्ञावत एव तस्य सर्वकर्मनिर्वहणक्षमत्वस्थापनम्	२३६
सर्वेषु स्थपतिगुणेषु सत्स्वपि शीलाभावे कर्मवैफल्यस्य विपरीतफलोपनमनस्य च निरूपणम्	,,
आलेख्याद्यष्टविधकर्मविज्ञानस्याप्यावश्यकता	,,

४५. अष्टाङ्गलक्षणाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः —

स्थापत्याष्टाङ्गविवरणम्	२३७
नृपालस्थपतेर्गुणाः	,,
अङ्गेषु सप्तमस्य यज्ञशालामानस्य प्रयोगः	,,
तत्र यज्ञशालानिवेशनविधिः	,,
यजमानकुटीप्रमाणादिकम्	२३८
प्राग्वंशपरिकल्पनम्	,,
प्रक्रमनिवेशनविधिः	,,
वेदीकल्पनम्	,,
होमस्थानकल्पनम्	,,
यजमानस्थानकल्पनम्	,,
कोटिहोमलक्षहोमस्थानादि	,,
सर्वाङ्गेषु याज्ञिकाङ्गस्य प्राशस्त्यम्	२३९
यज्ञभूमिमापने विहितं वास्तुपदम्	,,
अष्टमस्य राजशिबिरनिवेशाख्यस्याङ्गस्य निरूपणम्	,,
तत्र शिबिराणामाकृतिविशेषाः	,,
शिबिरद्वारसङ्ख्या	,,
रथ्याप्रमाणम्	,,
नरपतेः स्थानम्	,,
मन्त्रिपुरोहितबलाध्यक्षान्तः — पुरभाण्डागाराणां स्थानानि	,,
अश्वानां दन्तिनां च स्थानानि	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
परिखाप्रमाणम्	२३९
शिबिरस्थानमापनोचितं वास्तुपदम्	,,
अष्टमाङ्गेऽवशिष्टस्य दुर्गकर्मणो निरूपणप्रारम्भः	,,
तत्र षड्विधानां दुर्गाणां संज्ञाः	२४०
तेषु प्रशस्तं दुर्गम्	,,
दुर्गस्थानविभाजनार्हं वास्तुपदम्	,,
हर्म्यप्रमाणादिकम्	,,
रथ्योपरथ्याद्वाराणां प्रमाणानि	,,
दुर्गेश्वरप्रासादानां स्थानानि	,,
दुर्गरक्षार्थं स्थाप्यानां वीराणां लक्षणम्	,,
अन्तःपुरादीनामपि तत्र निवेशनीयत्वकथनम्	,,
४६. तोरणभङ्गादिशान्तिकाध्यायः षट्चत्वारिंशः—	
तोरणभङ्गदोषादिषु दोषाः, तत्प्रशमनविधिश्च	२४१
प्रासादं गृहं वा प्रविष्टाः सन्तो दोषसूचकाश्चतुर्विधाः कपोताः, तत्प्रवेशफलं च	२४२
कपोतप्रवेशदोषप्रशमनार्थो विधिः	२४३
४७. वेदीलक्षणाध्यायः सप्तचत्वारिंशः—	
चतुर्विधानां वेदीनां संज्ञाः तद्विनियोगश्च	२४४
तत्र सर्वतोभद्रालक्षणम्	,,
श्रीधरीलक्षणम्	,,
पद्मिनीलक्षणम्	,,
चतुरश्रालक्षणम्	,,
सर्ववेदीगता विशेषाः	,,
तास्विष्टकाचयनविध्यादि	,,
स्तम्भविन्यसनविधिः	२४५
स्तम्भस्थापनाङ्गं देवतापूजादिकम्	,,
४८. गृहदोषनिरूपणाध्यायोऽष्टचत्वारिंशः—	
भूप्लवफलम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः				पृष्ठम्
गृहविधौ वर्ज्या भूमयः	...	...	...	२४६
चैत्रादिमासेषु निर्मितानां गृहाणां फलम्	...	...	...	,,
कीलादीनां स्थानम्	...	...	...	,,
तत्तद्दिङ्मूढेषु वेश्मसु फलम्	...	...	...	,,
पुरे प्रासादादीनां निवेशनस्थानम्	...	...	...	,,
वलितादीनि चतुर्विधानि दुष्टगृहाणि	...	...	...	,,
तेषां लक्षणं फलं च	...	...	...	,,
मूषकोत्करादिभिर्दुष्टानां भुवां वर्जनीयत्वकथनम्		...	...	,,
तासु वास्तुनिवेशने फलम्	...	...	...	,,
वेश्मस्वनिष्टो मुखायामः	...	...	...	,,
मानुषशालायां मूषालिन्दयोरावश्यकता, देवागारशालायां तदाभावश्च	...	...	...	२४७
खादकाख्यस्य वेश्मनो लक्षणं फलं च	...	...	...	,,
सशल्यादिकं मर्मदोषचतुष्टयम्	...	...	...	,,
छिन्नाख्यस्य वास्त्वङ्गस्य लक्षणं फलं च	...	...	...	,,
स्वगृहद्वयमध्येन वर्त्मनो निर्वाहे फलम्	...	...	...	,,
मार्गवेधस्य स्वरूपं फलं च	...	...	...	,,
उत्सङ्गादीनां चतुर्णां प्रवेशानां स्वरूपं फलं च	...	...	...	,,
शालाभेदस्य स्वरूपं फलं च	...	...	...	२४८
विकोकिलगृहस्य स्वरूपं फलं च	...	...	...	,,
सीमाशालाप्रभिन्नेषु प्रासादादिषु फलम्	...	...	...	,,
गर्भे चन्द्रावलोकितायाः निषेधः	...	...	...	,,
गवाक्षके मूषानिवेशनस्यावश्यकता	...	...	...	,,
गण्डकुक्षिपृष्ठकक्षाख्यानामङ्गानां गृहात् पृथक्करणे फलम्		...	...	,,
गण्डादीनां स्वरूपनिर्देशः	...	...	...	,,
स्थापितानां द्वाराणां संरोधे फलम्	...	...	...	,,
गृहश्रोत्रादीनां रोधे फलम्	...	...	...	,,
कृतानां गवाक्षालोकनानां चयने फलम्	...	...	...	२४९
प्राच्यादिषु चीयमानाया भित्तेर्बहिर्गमने फलम्	...	...	...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
चीयमानानां प्राग्दक्षिणादिकर्णानां बहिर्गमने फलम्	२४९
मल्लिकाकृतिमन्दिरस्य लक्षणम्	,,
तत्रायव्ययव्यवस्था	,,
संक्षिप्तगृहस्य लक्षणं फलं च	,,
मृदङ्गाकृतिगृहस्य लक्षणं फलं च	,,
मृदुमध्यगृहस्य लक्षणं फलं च	२५०
कर्णेषु विषमोन्नतेषु फलम्	,,
गृहमध्ये द्वारकरणनिषेधः	,,
द्वारवेधेऽनिष्टद्रव्ययोजने च फलम्	,,
नवेन पुराणयोजने फलम्	,,
मिश्रजातिद्रव्योत्थेषु गृहादिषु फलम्	,,
तत्तत्स्थानेष्वधिवास्य प्रतिष्ठितानां पुनश्चालने फलम्	,,
अन्यवास्तुच्युतस्यान्यवास्तौ योजने फलम्	,,
देवदग्धेन द्रव्येण गृहकरणे फलम्	,,
सूर्यद्रुमध्वजच्छायानां गृहद्वारातिक्रमणे फलम्	,,
ध्वजच्छायायाः स्वरूपनिर्देशः	,,
निषिद्धा गृहताराः	,,
निम्नोन्नतत्वादिदोषयुक्तस्याग्रतरद्वारस्य करणे फलम्	,,
नागदन्तादीनां द्वारमध्ये निवेशनस्य, तेषां विषमस्थितेश्च निषेधः	२५१
गृहे इतिहासाद्युक्तवृत्तान्तप्रतिरूपणस्य निषेधः	,,
इन्द्रजालतुल्यानां, मिथ्याकृतानां, भीषणानां च प्रतिरूपणस्य निषेधः	,,
स्वयमुद्घाटनं पिधानं च कुर्वतः, सशब्दस्य, पादशीतलस्य च, द्वारस्य निवेशने फलम्	,,
अधोमुखत्वेन प्रत्यग्याम्याननत्वेन च द्रव्यस्य निवेशने फलम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
स्तम्भद्वारस्य भित्तेश्च वैपरीत्येन निवेशनस्य निषेधः	२५१
उपर्युपरिभूमिकाकल्पने, तत्र क्षणक्लृप्तौ च नियमाः	,,
शालाया निम्नत्वे अलिन्दस्याधिक्ये च फलम्	,,
उपरिभूमिषु द्वारनियमाः	,,
आध्मातादिद्वाराणां निवेशने फलम्	,,
चत्वररथ्यादिभिर्द्वारवेधे फलम्	२५२
हीनाधिकप्रमाणस्य द्वारस्य निवेशने फलम्	,,
कृशादिद्वाराणां निवेशने फलम्	,,
अन्तर्द्वारादुच्चस्य बहिर्द्वारस्य, विशङ्कटस्य च द्वारस्य निवेशने फलम्	,,
पट्टसन्धौ द्वारमध्ये निवेशिते फलम्	,,
तुलायामुपतुलायां च द्वारि तिर्यङ्निवेशितायां फलम्	२५३
जयन्त्यामनुवंशमनुप्रासायां फलम्	,,
ललाटिकाख्यायास्तुलायाः स्वरूपं फलं च	,,
यज्ञोपवीतिन्याख्यायास्तस्याः स्वरूपं फलं च	,,
भारतुलाया मध्यवेधे फलम्	,,
अखिलैस्तुलाग्रैर्भित्तिभेदकरणस्य निषेधः	,,
भारपट्टे ब्रह्मपदन्यस्ते फलम्	,,
अयुक्तयोर्युक्तयोर्वा सन्धेर्भारपट्टगतसन्धौ योजने फलम्	,,
अनुवंशमाश्रित्य भोजने शयने च कृते फलम्	,,
नागदन्तके तिर्यक्स्थे शयनागारविन्यस्ते च फलम्	,,
पक्षिराजघण्टाध्वजच्छत्रादीनां गृहे निषेधः	,,
गृहनमने पञ्च हेतवः	,,
अनुचितस्थौल्यादिकैर्द्रव्यैर्गृहस्य वैरूप्ये दृष्टान्तः	२५४

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः				पृष्ठम्
जीर्णघुणक्षतादीनां दारूणां वर्जनीयत्वकथनम्	...	...	...	२५४
गृहकर्मणि वर्जनीया वृक्षाः	...	...	...	,,
द्वारैर्भित्तिभिश्च मर्मपीडायां फलम्	...	...	...	,,
कायसन्धिपालादिषु मर्मस्थानस्थितेषु फलम्	...	...	...	,,
स्तम्भादिभिर्द्वारमध्ये निपीडिते फलम्	...	...	...	,,
षड्दारुकाणां द्वाराणां च मध्येषु कर्णद्रव्यादिभिर्विद्धेषु फलम्	...	...	...	२५५
नागदन्तादिभिः शय्यावेधे फलम्	...	...	...	,,
गृहमध्यभागे द्वारे निवेशिते फलम्	...	...	...	,,
द्रव्येण महामर्मपीडायां फलम्	...	...	...	,,
गृहस्य शून्यतापादका दोषाः	...	...	...	,,
विभागपदहीनेषु वास्त्वादिषु फलम्	...	...	...	,,
पुरप्रासादवेश्मनां परिसरे वर्जनीया वृक्षाः	...	...	...	,,
द्रव्यायामोच्छ्रायविस्ताराणामाधिक्ये फलम्	...	...	...	,,
घातितेषु पातितेषु च स्तम्भद्वारादिषु फलम्	...	...	...	,,
[illegible]फलदायिनो गृहस्य सामान्यलक्षणम्	...	...	...	२५६

४९. रुचकादिप्रासादलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः—

पुरा ब्रह्मणा सृष्टानि पञ्च विमानानि	...	...	...	,,
तेषां विनियोगः	...	...	...	२५७
सूर्यादीनामुपयोगायान्यान्यपि बहूनि विमानानि स कल्पयामासेति वचनम्	...	...	...	,,
ब्रह्मसृष्टानां वैराजादीनां पञ्चानां विमानविशेषाणामाकृतिः	...	...	...	,,
वैराजभेदानां संज्ञाः	...	...	...	,,
कैलासभेदानां संज्ञाः	...	...	...	,,
पुष्पकमणिकत्रिविष्टपाख्यविमानत्रयभेदानां संज्ञाः	...	...	...	२५८
एषामुत्तमाधममध्यमानि मानानि	...	...	...	,,
अथ चतुर्विंशतेर्वैराजभेदानां लक्षणप्रस्तावः	...	...	...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
तत्र रुचकलक्षणम्	२५८
चित्रकूटलक्षणम्	२५९
सिंहपञ्जरलक्षणम्	,,
भद्रलक्षणम्	,,
श्रीकूटलक्षणम्	,,
उष्णीषलक्षणम्	,,
शालाख्यलक्षणम्	,,
गजयूथपलक्षणम्	२६०
नन्द्यावर्तलक्षणम्	,,
अवतंसलक्षणम्	२६१
स्वस्तिकलक्षणम्	,,
क्षितिभूषणलक्षणम्	२६२
भूजयलक्षणम्	२६३
विजयनन्दश्रीतरुप्रमदाप्रियाभिधानां चतुर्णां विमानानां लक्षणम्	२६४
व्यामिश्रहस्तिजातीयकुबेरवसुधाधराणां लक्षणम्	२६५
सर्वतोभद्रविमानाख्यमुक्तकोणानां लक्षणम्	,,
अथ दशानां कैलासविमानभेदानां लक्षणप्रस्तावः	२६६
तत्र वलयदुन्दुभिप्रान्तपद्मकान्तचतुर्मुखमण्डूकाख्यानां सप्तानां विमानानां लक्षणम्	,,
अवशिष्टानां कूर्माद्याख्यानां त्रयाणां लक्षणम्	२६७
अथ दशानां पुष्पकविमानभेदानां लक्षणप्रस्तावः	,,
तत्र भवविशालसाम्मुख्याख्यानां लक्षणम्	,,
प्रभवशिबिरागृहमुखशालद्विशालगृहराजामलविम्बाख्यानां सप्तानां लक्षणम्	२६८
चतुरश्रायतानामेषामेव सन्निवेशान्तरप्रदर्शनम्	२६९
अथ दशानां मणिकभेदानां लक्षणप्रस्तावः	२७०
तत्रामोदरैतिकतुङ्गचारुभूत्याख्यानां पञ्चानां विमानानां लक्षणम्	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः	पृष्ठम्
निषेवकनिषेधसिंहसुप्रभाख्यानां लक्षणम्	२७१
लोचनोत्सवविमानलक्षणम्	२७२
अथ दशानां त्रिविष्टपविमानभेदानां लक्षण-प्रस्तावः	,,
तत्र वज्रकनन्दनशङ्कुवामनमेखललयमहापद्मानां लक्षणम्	,,
हंसविमानलक्षणम्	२७३
व्योमचन्द्रोदयविमानयोर्लक्षणम्	,,
५०. प्रासादशुभाशुभलक्षणाध्यायः पञ्चाशः—	
शुभकराणां प्रासादानां लक्षणम्	,,
तद्विपरीतलक्षणेषु प्रासादेषु प्रत्येकं फलानि	२७४
५१. आयतननिवेशाध्याय एकपञ्चाशः—	
उत्तमादिभेदेन त्रिधा भिन्नस्य नृपायतनस्य मानं विन्यासश्च	२७५
नृपानुजीविनृपपत्नीगृहाणां देवधिष्ण्यानां च दिग्भागादिकम्	,,
मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोधःप्रासादानां दिग्भागादिकम्	,,
राजमातृस्वसृमातुलकुमारप्रासादानां दिग्भागादिकम्	,,
द्विजमुख्यसामन्तकुञ्जरारोहभटपौरजनगृहाणां दिग्भागादिकम्	,,
सर्वेषां गृहाणां सामान्यविधिः	२७६
इतरेषां गृहाणां भूषणादिभी राजगृहैः साम्य-माधिक्यं च परिहरेदिति वचनम्	,,
अवशिष्टस्य भूभागस्य विनियोगः	,,
५२. प्रासादजात्यध्यायो द्विपञ्चाशः—	
वैराजविमानसामान्यविधिः	२७७
वैराजविमानप्रभवाः प्रासादविशेषाः	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः				पृष्ठम्
तथाविधा अष्टौ शिखरोत्तमाः प्रासादाः	...	...	...	२७८
वैराजजन्मनां सर्वेषामेषां प्रासादानां सर्वकामफलप्रदत्वकथनम्	...	...	...	,,
एष्वन्यजातिदूषितेषु फलम्	...	...	...	,,

५३. जघन्यवास्तुद्वाराध्यायस्त्रिपञ्चाशः—

जघन्यवास्तुद्वारप्रमाणम्	...	...	...	२७९
तत्र पेद्यापिण्डादीनां मानम्	...	...	...	,,
रूपशाखाखल्वशाखातुङ्गशाखानां मानम्	...	...	...	,,
तुङ्गाया बाह्यतः क्रियमाणानां शाखानां मानम्	...	...	...	,,
तलोदयमण्टपादीनां मानम्	...	...	...	२८०
उत्तममध्यमयोः प्रासादयोस्तलमानम्	...	...	...	,,
कुम्भिकादिषु हीनाधिकमानकल्पननिषेधः	...	...	...	,,

५४. प्रासादद्वारमानाद्यध्यायश्चतुष्पञ्चाशः—

प्रासादद्वारमानम्	...	...	...	,,
पेद्यामानम्	...	...	...	,,
शाखामानम्	...	...	...	,,
उत्तराङ्गमानम्	...	...	...	,,
रूपशाखामानम्	...	...	...	,,
पीठबन्धमानम्	...	...	...	,,
भरणमानम्	...	...	...	,,
कपोतमानम्	...	...	...	२८१
रथिकामानम्	...	...	...	,,
द्वारभूषा	...	...	...	,,
कपोतादिविधानम्	...	...	...	,,
परिमण्डलीकरणम्	...	...	...	,,
पद्मपत्रिकामानम्	...	...	...	,,
रसनामानम्	...	...	...	,,
जङ्घामानम्	...	...	...	,,

"Aho Shrut Gyanam"

विषयः				पृष्ठम्
खल्वशाखामानम्	...	...	...	२८१
बाह्यशाखामानम्	...	...	...	,,
द्वारशाखानां सङ्ख्या	...	...	...	,,
शाखानां निर्गमविस्तारयोर्मानम्	...	...	...	,,
पिण्डोदुम्बरमानम्	...	...	...	२८२
तलन्यासमानम्	...	...	...	,,
सिंहमुखमानम्	...	...	...	,,
त्रिविधं पट्टपिण्डमानम्	...	...	...	,,
हीरग्रहणमानम्	...	...	...	,,
कुम्भिकोत्कालकयोर्निवेशनप्रकारः	...	...	...	,,
उत्तरपट्टतद्धीरयोर्मानम्	...	...	...	,,
तदूर्ध्वभागपरिष्करणम्	...	...	...	,,
सप्तानां लुमानां संज्ञाः	...	...	...	,,
तत्र तुम्बिनीनिष्पादनप्रकारः	...	...	...	२८२
अन्यासां लुमानां निष्पादनप्रकारः	...	...	...	२८३
पञ्चविंशतिवितानानां नामानि	...	...	...	,,
कोलादीनां नागबन्धान्तानां सप्तानां वितानानां रूपनिर्माणप्रकारः	...	...	...	२८४
पुष्पकादीनां विद्युन्मन्दारकान्तानां तेषां रूपनिर्माणप्रकारः	...	...	...	२८५
दशच्छाद्योदयाः	...	...	...	२८६
सप्त वृत्तच्छाद्योदयाः	...	...	...	,,
छाद्यक्षेत्रानुसारेण कल्प्यानि लुमामानानि ...		...	...	,,
छाद्यलुमानां गण्डिकाच्छेदादिकम्	...	...	...	२८७
उत्तमादिप्रासादानां छाद्यनिर्गमाः	...	...	...	२८८
सिंहकर्णलक्षणम्	...	...		२८८–२९०

शुभम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

"Aho Shrut Gyanam"

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचितं

समराङ्गणसूत्रधारापरनामधेयं

वास्तुशास्त्रम् ।

महागमागमनो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

देवः स पातु §भुवनत्रयसूत्रधार-
स्त्वां बालचन्द्रकलिकाङ्कितजूटकोटिः ।
एतत् *समग्रमपि कारणमन्तरेण
कार्त्स्न्यादसूत्रितमसूत्र्यत‡ येन विश्वम् ॥ १ ॥

सुखं धनानि ऋद्धिश्च सन्ततिः सर्वदा नृणाम् ।
प्रियाण्येषां तु संसिद्ध्यै सर्वं स्याच्छुभलक्षणम् ॥ २ ॥

यच्च निन्दितलक्ष्मा(च्चा? त्र)तदेतेषां विघातकृत् ।
अतः सर्वमुपादेयं (यद्) भवेच्छुभलक्षणम् ॥ ३ ॥

देशः पुरं निवासश्च सभा वेश्मासनानि च ।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम् ॥ ४ ॥

वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः ।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते ॥ ५ ॥

---

§ भुवनत्रयसूत्रधारः लोकत्रयशिल्पी । शिल्पवैचित्र्यमुत्तरार्धे प्रतिपाद्यते । * समग्रं कारणमन्तरेणापि समवाय्यसमवायिनिमित्तात्मना त्रिप्रकारमन्योन्यविलक्षणस्वरूपं लोकप्रतीतं कारणकलापं कार्यमात्रसाधारणं विनापीत्यर्थः, जगद्रूपस्य हि कार्यस्यैक एवेश्वर उपादानं च निमित्तं चाभ्रात इति । ‡ असूत्र्यत आकारोल्लेखपूर्वमसृज्यत ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथैकदा जगज्जन्महेतुमम्बुरुहासनम् ।
पृथ्वी पृथुभयभ्रान्ता चकिताक्षी समाययौ ॥ ६ ॥

प्रणम्य प्रणतिप्रह्वनिखिलत्रिदशेश्वरम् ।
सगद्गदमुवाचेति भूतधात्री पितामहम् ॥ ७ ॥

भगवन्नहमेतेन पृथुना पृथुतेजसा ।
उप(द्रु? द्रु)ता त्वां शरणं प्राप्ता त्रायस्व मां ततः ॥ ८ ॥

वदन्त्यामिति मेदिन्यामाविरासीदथो पृथुः ।
संरम्भमुक्तहृदयो ब्रह्माणं प्रणनाम च ॥ ९ ॥

जगादैनमथ स्निग्धध्वनिगम्भीरया गिरा ।
कुर्वंस्तद्यानहंसानां पयोदध्वनिशङ्कितम् ॥ १० ॥

त्वयास्मि जगतां नाथ! जगतोऽधिपतिः कृतः ।
स्थापितानि च भूतानि सर्वाण्यपि वशे मम ॥ ११ ॥

तेष्वियं मम विश्वेश! कदाचिद् वशवर्तिनी ।
समीकरोमि पाषाणजालान्यस्याः किलाधुना ॥ १२ ॥

व्यस्तानि धनुषा तावद् गौर्भूत्वेयं पलायिता ।
दोग्धुकामोऽहमप्येनां चिरमन्वगमं महीम् ॥ १३ ॥

यत्रक्वापि प्रयान्त्येषा तत्र मामेव पश्यति ।
अपश्यन्त्यन्यतस्त्राणमदुग्धा त्वामुपस्थिता । १४ ॥

अस्यां वर्णाश्रमस्थानविभागश्च विधास्यते ।
इयं च दुर्गमानेकक्षोणीधरकुलाकुला ॥ १५ ॥

विधास्येऽस्यां कथं त्वेतदिति मे शङ्कितं मनः ।
पृथुनेत्यथ विज्ञप्तो भगवानब्जसम्भवः ॥ १६ ॥

उवाच बोधयन्नेनं कृत्वा भूमिं च निर्भयाम् ।
इयं मही महीपाल! विधिवत् पालिता सती ॥ १७ ॥

सस्यैरुपा(प्ये?य)निष्पन्नैस्तव भोग्या भविष्यति ।
यच्च ते स्यादभिमेतं स्थानादिविनिवेशनम् ॥ १८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

तदेष त्रिदशाचार्यः सर्वसिद्धिप्रवर्तकः ।
[1]सुतः प्रभासस्य विभोः स्वस्रीयश्च बृहस्पतेः ॥ १९ ॥

विश्वातिशायिधीः सर्वं विश्वकर्मा करिष्यति ।
राजन्नसौ महेन्द्रस्य विदधावमरावतीम् ॥ २० ॥

[2]अन्या अप्यमुना रम्याः पुर्यो लोकभृतां कृताः ।
त्वया क्षेत्रीकृतां मूर्त्तिं दृष्ट्वा साद्रिद्रुमामसौ ॥ २१ ॥

सन्निवेशान् पुरग्रामनगराणां विधास्यति ।
तद् गच्छ वत्स! लोकानामितस्त्वं हितकाम्यया ॥ २२ ॥

भयोज्झिता त्वमप्युर्वि! पृथोः प्रियकरी भव ।
काले स्मृतः स्मृतः पुण्यो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ २३ ॥

[3]त्वमप्यखिलमेवैतद् [4]विश्वकर्म(न्)! करिष्यसि ।
इत्युक्त्वा गमनमुपेयुषि प्रजेशे स्वं स्थानं क्षितिभुजि चाश्रिते मुदोर्व्याम् ।
प्रालेयाद्रिनिभृतमाजगाम खेलत्सिद्धस्त्रीपरिगतमाशु विश्वकर्मा ॥ २४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
[5]महासमागमनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ पृष्ठे हिमगिरेः शशाङ्कशुचिरोचिषि ।
सिद्धामरवधूभुक्तमणिमञ्जुगुहागृहे ॥ १ ॥

विस्तीर्णासनमासीनं सर्वज्ञमथ संस्मृताः ।
आययुर्विश्वकर्माणं चत्वारो मानसाः सुताः ॥ २ ॥

जयो विजयसिद्धार्थौ चतुर्थश्चापराजितः ।
तमुपागम्य शिरसा नेमुः प्राञ्जलयो मुनिम् ॥ ३ ॥

---

१. 'श्रुतप्रभावश्च विभो प्रीतये ते बृहस्पतिः', २. 'सुराणामपि चान्येषां पु', ३. 'तवाप्य', ४. 'विश्वकर्मा करिष्यति' क पाठः । ५. पृथिव्याख्याना शास्त्रसंबन्धा, (?)प्र[1] ख पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तानुवाच मुनिर्वत्सा! विदितं वो यथा पुरा ।
[1]वास्तु ब्रह्मा स(पर्या?सर्जा)दौ विश्वमप्यखिलं तथा ॥ ४ ॥

धर्म्यं कर्म तदा श्रैष्ठ्यप्राप्त्यै लोकावनानि च ।
व्यवस्थाप्य चकारैष लोकपाल(श्रि?स्य) कल्पनाम् ॥ ५ ॥

अहमप्यमुना विश्वनाथेनाम्बुजजन्मना ।
लोकानां सन्निवासार्थमादिष्टोऽस्मि स्वयम्भुवा ॥ ६ ॥

रम्याणि नगरोद्यानसभास्थानान्यथो मया ।
सुरासुरोरगादीनां निर्मितान्यात्मबुद्धितः ॥ ७ ॥

गत्वोर्वीं *वैन्यनृपतेर्वत्साः! प्रियचिकीर्षया ।
नगरग्रामखेटादीन् करिष्यामि पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥

कार्ये त्वमुष्मिन् सकले मम विश्वसृजार्पिते ।
सम्यक्साहायकैर्भाव्यं भवद्भिरिति नः स्थितम् ॥ ९ ॥

यतस्त्रिभुवनालोकप्रद्योतस्याब्जिनीपतेः ।
सहायतां तमश्छेदे कलयन्ति मरीचयः ॥ १० ॥

स्वयं करिष्येऽहमथो निवासाय पृथोः पुरीम् ।
विचित्रनगरग्रामखेटा[2]मतिमनोहराम् ॥ ११ ॥

भवन्तः पुनरागत्य चत्वारोऽपि चतुर्दिशम् ।
तांस्तान् निवेशान् कुर्वन्तु पृथग्जनकृताश्रयान् ॥ १२ ॥

अन्तरेष्वब्धपाथोधिशैलानां सरितां तथा ।
विधातव्यानि दुर्गाणि[3] नृपाणां भयशान्तये ॥ १३ ॥

वर्णप्रकृतिवेश्मानि संस्थानानि च लक्ष्मभिः ।
विधेयानि प्रतिग्रामं प्रतिपूः प्रतिपत्तनम् ॥ १४ ॥

---

१. 'वास्तुब्रह्म सदा विश्वं व्याप्नोति सकलं जगत्', २. 'टानतिमनोहरान्' क. पाठः । ३. 'णि संजातभय' ख. पाठः ।

---

* वैन्यनृपतेः वेनसूनोर्भूपतेः पृथोरित्यर्थः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तानित्थमात्मतनयानभिधाय सम्यक्
सारार्थभूतमपरिस्फुटतोज्झितं च ।
[1]स्थानार्पितोरुभरनिर्वृतचित्तवृत्ति-
स्तूष्णीं§ प्रभासतनयो नयविज्जगाम ॥ १५ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
[2]विश्वकर्मणः पुत्रसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ प्रश्नो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

अथ तेषु जयो नाम वाक्यं तद् विश्वकर्मणः ।
श्रुत्वा कृताञ्जलिः प्राह स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

ज्ञानैकनिधिरप्यस्मान् यत् सहायतया किल ।
वृणोषि तेन न वयमात्मानं बहुमन्महे ॥ २ ॥

तदिदानीं हितार्थे नः प्रजानामपि च [3]प्रभो ! ।
अप्रमेयप्रभावस्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

पूर्वमेकार्णवे जाते जगति प्रलयं गते ।
महाभूतामरपुरीज्योतिषां कथमुद्भवः ॥ ४ ॥

किमाकारा किमाधारा किंप्रमाणा च मेदिनी ।
विस्तृतिः परिधिश्चास्या बाहुल्यमपि कीदृशम् ॥ ५ ॥

उच्छ्रायव्यासदीर्घत्वैः कैः केऽस्यां कुलभूभृतः ।
कति ख्यातानि वर्षाणि द्वीपा नद्योऽध्ययस्तथा ॥ ६ ॥

काः सूर्येन्दुग्रहर्क्षादिगतयश्च पृथक्पृथक् ।
भूमेरुपरि किं चैषामन्योन्यं प्रोक्तमन्तरम् ॥ ७ ॥

---

१. 'स्थानार्पणातिशयनि', २. 'जयविजयसिद्धार्थापराजितमुलागमनो नाम' क. पाठः । ३. 'प्रभोः' ख. पाठः ।

---

§ तूष्णीं मौनमित्यर्थः ।

"Aho Shrut Gyanam"

किमाधारं दिवि ज्योतिश्चक्रं भ्रमयते च कः ।
लोके कथं महाभूतान्यूर्ध्वाधो बिभ्रति स्थितिम् ॥ ८ ॥

युगधर्मव्यवस्थाभिः काश्चादौ लोकवृत्तयः ।
कश्चादिमस्ततो राज्ञां ग्रहाणां वर्णिनां कथम् ॥ ९ ॥

कति देशाः कति भुवः पृथक्त्वेन निरूपिताः ।
कार्यः क च कथं सन्निवेशो जनपदाश्रयः ॥ १० ॥

व्यक्तचिह्नैः स्वनस्पर्शगन्धवर्णरसादिभिः ।
काः शस्ता निन्दिताः काश्च पुराणामपि भूमयः ॥ ११ ॥

कार्यं केन विधानेन भूभृत्पुरनिवेशनम् ।
किं फलं सुनिविष्टेऽस्मिन् दुर्निविष्टे च किं पुनः ॥ १२ ॥

कतिप्रकारं दुर्गं च दुर्गकर्मक्रमश्च कः ।
किमग्रपुरसंस्थानमनिन्द्यं किं च निन्दितम् ॥ १३ ॥

कश्चात्रानुक्रमविधिः प्रमाणैरुपपादितः ।
प्राकारगोपुराट्टालपरिखावप्रकर्म च ॥ १४ ॥

तमङ्गनिर्गमद्वारप्रतोल्यट्टालकादिभिः ।
कीदृशः प्रविभागश्च रथ्याचत्वरवर्त्मभिः ॥ १५ ॥

भूमिप्रमाणसंस्थानं सीमा च[1] क्षेत्रदिक्पथैः ।
नगरग्रामखेटानां निवेशाः स्युः पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥

पुरस्याभ्यन्तरे पूर्वं कैर्द्रव्यावयवक्रमैः ।
कस्मिन् स्थाने कथं कार्यं शक्रध्वजनिवेशनम् ॥ १७ ॥

प्रतिसंवत्सरं तस्य नियुक्तस्य कथं पुनः ।
हिताय नृपलोकानां विधातव्यो महोत्सवः ॥ १८ ॥

गृहेषु केषु केष्वत्र कासु कासु ककुप्सु च ।
भागैर्बाह्यान्तरैः कैः कैः कार्याः काः काश्च देवताः ॥ १९ ॥

कैः कैर्यानपरीवारवर्णरूपविभूषणैः ।
कार्याः कैः कैः सुरा वस्त्रवयोवेषायुधध्वजैः ॥ २० ॥

---

१ 'भू' क, ग, पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रमाणमितिसंस्थानसङ्ख्यानोच्छ्रयलक्ष्मभिः ।
प्रासादाः कस्य के वा स्युः सुरराजद्विजातिषु ॥ २१ ॥

प्राकारपरिखागुप्तं पुरे स्याद् गोपुरं क्व च ।
§युग्ममध्याम्बुवेश्मानि क्व च स्युः क्व महानसम् ॥ २२ ॥

कोष्ठागारायुधस्थानभाण्डागारनिवेशनैः ।
व्यायामनृत्तसङ्गीतस्नानधारागृहादिभिः ॥ २३ ॥

शय्यावासगृहप्रेक्षावेश्मादर्शगृहैः पृथक् ।
क्रीडादोलाश्रयारिष्टगृहान्तःपुरवेश्मभिः ॥ २४ ॥

विटङ्कभ्रमनिर्यूहकक्षासंयमनादिभिः ।
अशोकवनिकाभिश्च लतामण्डपवेश्मभिः ॥ २५ ॥

वापीभिर्दारुगिरिभिश्चित्राभिः पुष्पवीथिभिः ।
एतैर्विशेषैरन्यैश्च विचित्रैर्विपिनाश्रयैः ॥ २६ ॥

मानोन्मानक्रियायामद्रव्याकृतिविनिर्मितः ।
निकेतननिवेशः स्याद् राज्ञां भागाश्रितः कथम् ॥ २७ ॥

पुरोधःसैन्यभूश्रेष्ठदैवचिन्तकमन्त्रिणाम् ।
कं कं च भागं प्राप्य स्युर्निवेशा नृपवेश्मनः ॥ २८ ॥

पुरे स्युर्दिक्षु भागेषु पद्भागेषु केषु च ।
विप्रराजन्यविट्शूद्रास्तज्जैरन्तरजैः समम् ॥ २९ ॥

तथा कृषितुलाशिल्पकलापण्योपजीविनः ।
हिंसाश्रिताश्च पुरुषा निवेश्याः स्युः कथं क्व च ॥ ३० ॥

निवेशाः कीदृशाश्चैषां कियन्तो वा भवन्ति ते ।
शस्यन्ते केन वा केषां कैः प्रवेशजलभ्रवैः ॥ ३१ ॥

धिष्ण्यमार्यं कतिविधं द्रव्याण्याद्यानि कानि वा ।
हेतुरेषां च सर्वेषां स्याच्च कीदृगनुक्रमः ॥ ३२ ॥

---

§ युग्मं मिथुनं मध्ये येषां तानि युग्ममध्यानि क्रीडागृहाणि तानि च अम्बुवेश्मानि चेति द्वन्द्वसमासः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भजन्ते योगमन्योन्यं कानि द्रव्याणि कैः सह ।
कानि योगं न गच्छन्ति कैर्वा कः क्व वसेत् पुमान् ॥ ३३ ॥

इष्टकाकर्म किं चेष्टं कीर्तिता कतिधा च भूः ।
परिकर्मक्रमस्तासां वक्ष्यम्बुपवनैश्च कः ॥ ३४ ॥

गुरुवर्णिध्वजोवींशतञ्चत्यप्रतिमा(:?) पुराम् ।
वृक्षाः के के प्रशस्ताः स्युर्गृहार्थे के च गर्हिताः ॥ ३५ ॥

तच्छेदस्रावसंभूतं शब्ददिक्पातगर्भजम् ।
विज्ञायते कथं कर्तृकारकादिशुभाशुभम् ॥ ३६ ॥

प्रमाणं तक्षणच्छेदैः [1]शोधितानां कथं भवेत् ।
आहृत्य स्थापनं पूर्वं दारूणां स्थानके क्व च ॥ ३७ ॥

सामान्यतोऽखिलानां काः काश्च जातेर्विशेषतः ।
प्रशस्तैर्लक्ष्मभिर्युक्ता भूमयः परिकीर्तिताः ॥ ३८ ॥

शल्योद्धारविधिः कीदृक् कीदृशं भूमिकर्म च ।
दिग्ग्रहः सूत्रणं चाधिवासनं च कथं भवेत् ॥ ३९ ॥

प्रमाणं मूलपादस्य [2]शिलान्यासे च को विधिः ।
विभज्यते कथं वेश्म शालालिन्दविभाजनैः ॥ ४० ॥

मानानि कानि भित्तीनां पीठानामुच्छ्रयाश्च के ।
कथं तानि विकल्प्यानि वर्णानां मेखलादिभिः ॥ ४१ ॥

समस्तकानां स्तम्भानां द्वारस्तम्भासनैः सह ।
नागवीथ्युपधानानां समं कण्ठविनिर्गमैः ॥ ४२ ॥

जयन्तीसङ्ग्रहतुलाकार्याणां वास्तुनोऽपि च ।
कीदृशं फलकानां च प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ ४३ ॥

स्वमानात् सर्ववर्णानां तलोच्छ्रायास्तु कीदृशाः ।
का गवाक्षकपोतालिवेदिकाजालकक्रियाः ॥ ४४ ॥

स्थूणा [3]निम्नष्टिकोत्सूका मृगा(लयो?ल्यु)पतुलास्तथा ।
सान्तःप्राणिशिरोवंशाः किंप्रमाणाः प्रकीर्तिताः ॥ ४५ ॥

---

१. 'साधितानां' ख. ग. पाठः । २. 'शिलाभ्यासे', ३. 'णिमृष्टि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

छायोदयाः कियन्तः स्युर्वृत्तच्छायक्रमश्च कः ।
त्र्यश्राणां खण्डवृत्तानां लुप्तानां च क्रियाः कथम् ॥ ४६ ॥

सीमालिन्दशिर(स्त्वा?स्त्रा)सां कीदृशी चावलम्बना ।
कतिप्रकाराः प्रासादशिरसां च विकल्पनाः ॥ ४७ ॥

यच्चान्यदेवमादि स्यात् प्रासादभवनादिषु ।
[1]द्रव्यकाष्ठकलासङ्गि प्रमाणं तस्य कीदृशम् ॥ ४८ ॥

शालालिन्दप्रमाणानि चतुःशालेषु धामसु ।
ज्यायोमध्यकनीयस्सु भूपाभिः काष्ठकल्पना ॥ ४९ ॥

एकद्वित्रिचतुःशालान्येषां संयोगतोऽपि च ।
कथं कति च वेश्मानि कल्प्यन्ते प्रविभागशः ॥ ५० ॥

कथं च षोडशचतुःषष्ट्येकाशीतयः शतम् ।
संविभागाः पदानां स्युः कथमत्रामरस्थितिः ॥ ५१ ॥

आद्यो नवपदो वास्तुरन्त्यः साहस्रिकः कथम् ।
अङ्गप्रत्यङ्गभागेषु केषु केषु क तस्थुषः ॥ ५२ ॥

कथमेते सुराः सर्वे वास्तोरस्य व्यवस्थिताः ।
एतद्वंशशिर[2]श्चक्षुःकुक्षिहृन्मूर्धमर्मसु ॥ ५३ ॥

जायेत पीडा द्रव्येषु सन्निविष्टेषु कस्य का ।
वास्त्वारम्भप्रवेशेषु यात्रायां स्थापनेषु च ॥ ५४ ॥

दूतस्वप्ननिमित्ताद्यैः कथं ज्ञेयं शुभाशुभम् ।
दारुक्रियासु चित्रेषु तथा लेप्यक्रियासु च ॥ ५५ ॥

[3]योज्यं किं किमयोज्यं च किं भूपभवनादिषु ।
हस्तस्य लक्षणं मानसंज्ञा वै जायते कथम् ॥ ५६ ॥

किं हर्म्येष्वग्निलक्ष्म स्यात् किं च निर्युक्तलक्षणम् ।
अनुक्रमेण वर्णानां बलिकर्म च कीदृशम् ॥ ५७ ॥
विधेयं विधिना केन भवने च प्रवेशनम् ।
पतिते स्फुटिते जीर्णे प्लुष्टे वज्राशनिक्षते ॥ ५८ ॥

---

१. 'द्रव्यं' क. पाठः । २. 'रःकक्षकु', ३. 'अङ्गप्रत्यङ्गयोज्यं किं किं भू' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

निमग्नभग्ननिर्भिन्नप्रशीर्णेषु च वास्तुषु ।
मधुवल्मीकसंभूतौ प्रविरूढे च दारुणि ॥ ५९ ॥
जायते किं फलं कुत्र प्रायश्चित्तेन को विधिः ।
इत्येवमादिकमनेकविधं विधानं वेश्मोपगं च पृथगाश्रयसंभूतं च ।
अस्मास्वनल्पकरुणार्द्रितचित्तवृत्तिर्व्याख्यातुमर्हसि समस्तमनुक्रमेण॥६०$\frac{1}{2}$॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
प्रश्नाध्यायस्तृतीयः ॥

अथ महदादिसर्गश्चतुर्थोऽध्यायः ।

जयस्येति समाकर्ण्य विश्वकर्मा च तद् वचः ।
जगाद गर्जदम्भोदध्वनिगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

साधु वत्स ! त्वया सम्यक् प्रज्ञयातिविशुद्धया ।
प्रश्नोऽयमीरितो वास्तुविद्याब्जवनभास्करः ॥ २ ॥

स त्वं निधाय प्रश्नानां समुदायममुं हृदि ।
वदतो मेऽवधानेन शृणु यद् ब्रह्मणोदितम् ॥ ३ ॥

इदमासीद् युगान्ताग्निप्लुष्टं संवर्तकादिभिः ।
समुत्सृजद्भिरम्भांसि विश्वमेकार्णवीकृतम् ॥ ४ ॥

तमोभूते ततस्तस्मिन् भोगिपर्यङ्कमाश्रितः ।
हरिः सुष्वाप सलिले कृत्वोदरगतं जगत् ॥ ५ ॥

अथास्य नाभावम्भोजमभूत् तस्मिन्नजायत ।
सर्वज्ञानाश्रयः श्रीमांश्चतुर्वक्त्रः सुरेश्वरः ॥ ६ ॥

स कदाचिद् दधच्चेतः प्रजासृष्टिं प्रति प्रभुः ।
महान्तमसृजत् तत्र पूर्वं विश्वस्य हेतवे ॥ ७ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

त्रिधाहङ्कृतमेतस्मान्मनोऽभूत् सात्त्विकादतः ।
राजसादपि चाक्षाणि तन्मात्राणि च तामसात् ॥ ८ ॥

तेभ्यः पञ्च महाभूतान्याविरासन्ननुक्रमात् ।
व्योमादीनि धरान्तानि स्वैः स्वैर्युक्तानि तैर्गुणैः ॥ ९ ॥

अधरोत्तरभावश्च सम्यगेषामथोच्यते ।
आदौ पृथ्वी ततोऽधस्तादापस्तासां च पावकः ॥ १० ॥

तस्याप्यधस्तात् पवनस्ततः खमवकाशदम् ।
भूतादिस्थं वियत् सोऽपि महता परिवारितः ॥ ११ ॥

महांश्च विशति व्यक्तं व्यक्तमव्यक्तकं पुनः ।
ग्राह्यग्राहकभावेन व्यक्तो भूतसमुद्भवः ॥ १२ ॥

आधाराधार्यभावश्च यथार्थौ च स्थितिव्ययौ ।
महाभूतानि सगुणान्येवं सृष्ट्वा ततः प्रभुः ॥ १३ ॥

मनः पुनरसौ सर्गे भौतिके सम्यगादधौ ।
सुरासुरान् सगन्धर्वान् यक्षरक्षांसि पन्नगान् ॥ १४ ॥

[1]नागान् मुनीनप्सरसो मनसा समजीजनत् ।
अर्केन्दू चक्षु (षी?षो) जातौ गगनभ्रमणक्षमौ ॥ १५ ॥

गात्रेभ्योऽपि च नक्षत्रचक्रमस्मादजायत ।
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्योऽभूत् ताराग्रहपञ्चकम् ॥ १६ ॥

ग्रहत्वं पुनरेतेषामिन्द्रियग्रहणाद् विदुः ।
सुरेन्द्रचापचिह्नानां विद्युद्वलयशालिनाम् ॥ १७ ॥

भीमाशनिभृतां चासीत् केशेभ्योऽम्बुमुचां भवः ।
विश्वमापूरयन् कृत्स्नमाविरासीत् तदिच्छया ॥ १८ ॥

त्रिलोकीपावनस्तिर्यग्गामी चण्डः समीरणः ।
ततश्चण्डानिलोद्भूतमुपर्यर्कांशुतापितम् ॥ १९ ॥

---

१. '(सावित्री पुनरप्सरसः ? सावित्रीं चाप्यप्सरसः)' ख. ग. पाठः ।
२. 'ध्रुवां भ' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वायुभिः शोषमानीतं जगाम घनतां पयः ।
तस्योपरिष्टादम्भोधेरधः कुण्डलितं वपुः ॥ २० ॥

विष्णोः (सच्या? शय्या)त्वमभ्येत्य धत्तेऽनन्तोऽखिलां भुवम् ।
न तप्तं येषु येष्वम्भः प्रदेशेष्वर्करश्मिभिः ॥ २१ ॥

नीतं न वानिलैः शोषं तत्र तत्राब्धयोऽभवन् ।
महाम्भोवीचिसङ्घाता विक्षिप्ताश्चण्डमारुतैः ॥ २२ ॥

यत्र यत्रापुरैक्यं ते तत्र तत्राद्रयोऽभवन् ।
निश्चलत्वार्थमवनिश्चर्मवद् वितताथ तैः ॥ २३ ॥

शैलैः कीलैरिव स्थानेष्वाचिता तेषु तेष्वियम् ।
वृद्धिं गताद्रिनिःष्यन्दैर्भूभृतां प्रविभागजा ॥ २४ ॥

निम्नगाभूत् ततोऽम्भोधेः कान्ता निम्नानुसारिणी ।
मेदिन्यन्तेषु जलधिपर्यन्तेषु विनिर्ययुः ॥ २५ ॥

अम्भांसि यत्र यत्रासंस्ते द्वीपाश्चित्ररूपिणः ।
सनिम्नगाम्बुधिद्वीपा विभक्ताखिलभूधरा ॥ २६ ॥

व्यक्ता बभूव कृत्स्नेवं भूमिर्भूतानि बिभ्रती ।
स चक्रे रौरवादीनां निरयाणामधः क्षितेः ॥ २७ ॥

स्वकर्मफलभुक्त्यर्थं स्थानं दुष्कृतकर्मणाम् ।
जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजैः सह स प्रभुः ॥ २८ ॥

चतुर्धेत्यसृजल्लोके भूतग्रामं चराचरम् ।
द्वेधा जरायुजास्तत्र मनुष्याः पशवस्तथा ॥ २९ ॥

ग्राम्याः सप्ताभवंस्तेषु सप्तारण्यकृतालयाः ।
पुमान् गौस्तुरगश्छागो मेषो वेगसरः खरः ॥ ३० ॥

ग्रामवासैकनिरताः सप्तैते परिकीर्तिताः ।
सिंहद्विपोष्ट्रमहिषा शरभो गवयः कपिः ॥ ३१ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अरण्यगोचरा जीवाः सप्तैते वत्स ! निर्मिताः ।
धर्माधर्मविवेकित्वाच्छ्रेयान् ग्राम्येषु पूरुषः ॥ ३२ ॥

अरण्यचारिषु श्रेष्ठः सिंहः शौर्यबलादिभिः ।
सुपर्णा भुजगाः कीटाः येऽपि च स्युः पिपीलिकाः ॥ ३३ ॥

चतुर्धेत्यण्डजन्मानो जन्मिनस्ते प्रकीर्त्तिताः ।
[1]क्लेद (केप?केश)समुद्भूताः कृमियूकादिजन्तवः ॥ ३४ ॥

सर्वेऽपि स्वेदजन्मानस्ते प्रजापतिना कृताः ।
उद्भिज्जाः पञ्चधा भू(त्वा? त्था) निर्दिष्टाः स्थावराश्च ते[2] ॥ ३५ ॥

द्रुमा वल्लयश्च गुल्माश्च वंशाः सतृणजातयः ।
छन्नान्तःकरणत्वं च स्वस्थानात्यागितापि च ॥ ३६ ॥

छिन्नप्ररोहिता चैषां वैशेषिकगुणत्रयम् ।
गायत्री भूतसंज्ञे(षां? षा) चतुर्विंशतिपर्विका ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वैनां पुरुषः पुण्यां भवति स्वर्गभाजनम् ।
भुवनभूजलवह्निमरुद्वियत्प्रमुख एष भवस्तव कीर्त्तितः ।
वसुमतीपरिमाणविनिश्चयं कथयतः शृणु सम्प्रति वत्स! मे ॥ ३८ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
महदादिस(ङ्गा ? र्गा)ध्यायश्चतुर्थः ॥

अथ भुवनकोशः पञ्चमोऽध्यायः ।

अथो यथाक्रमं भूमेः कृत्स्नायाः कथयामि ते ।
विष्कम्भपरिधी वत्स ! बाहुल्यमपि च स्फुटम् ॥ १ ॥

विष्कम्भोऽस्याः समुद्दिष्टो दशयोजनकोटयः ।
लक्षाण्यपि च मेदिन्यास्तद्वदेकोनविंशतिः ।
विष्कम्भत्रिगुणो यावद् विष्कम्भांशश्च पञ्चमः ॥ २ ॥

---

१. 'क्लेशकोपुस' (?), २. 'ये' ख, ग. पाठः ।

मेदिन्याः परिधिस्तावद्योजनैः परिकीर्त्तितः ।
द्वात्रिंशत्कोटयः षष्टिर्लक्षाणि परिधिः क्षितेः ॥ ३ ॥

अशीतिश्च सहस्राणि योजनानां प्रकीर्त्तितः ।
योजनानां सहस्राणि विंशतिर्लक्षयोर्द्वयम् ॥ ४ ॥

इति बाहुल्यमेतस्याः क्षितेर्वत्स¹ तवोदितम् ।
चतुर्णां सलिलादीनां भूतादेर्महतोऽपि च ॥ ५ ॥

उत्तरोत्तरमुर्वीतो मानं शतगुणं विदुः ।
तोयादिषु स्थितेयं भूश्चक्रवद् वृत्तशालिनी ॥ ६ ॥

पात्रस्थापरपात्रश्रीहारि²ण्यन्यान्यपि क्रमात् ।
प्रमाणमिदमेतेषां क्षित्यादीनां तवोदितम् ॥ ७ ॥

द्वीपादी³नां तु पाथोधिनिवेशः पुनरुच्यते ।
द्वीपानामम्बुधीनां च सप्तानामपि मध्यगः ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीपो भवेद् वृत्तः सहस्रशतविस्तृतः ।
हिमाद्रिर्हेमकूटाख्यो निषधो नीलसंज्ञितः ॥ ९ ॥

श्वेतः शृङ्गी च षडमी भवन्त्यस्मिन् कुलाचलाः ।
एतस्मादुत्तरेणाद्रेस्तुषाराङ्कितमेखलात् ॥ १० ॥

पूर्वापरायताः सर्वेऽप्यद्रयो यावदम्बुधि ।
अन्तरा नीलनिषधौ जम्बूद्वीपस्य नाभिगः ॥ ११ ॥

वृत्तः पुण्यजनाकीर्णः श्रीमान् मेरुर्महाचलः ।
उदग्याम्यायते मेरोः प्राग्भागे माल्यवान् गिरिः ॥ १२ ॥

सेवि⁴तः सिद्धनारीभिरानीलनिषधायतः ।
सुमेरोः पश्चिमेनाद्रिर्गन्धर्वकुलसङ्कुलः ॥ १३ ॥

माल्यवत्सदृशायामो महीभृद् गन्धमादनः ।
पर्वतावुभयान्तस्थौ हिमवान् शृङ्गवांस्तथा ॥ १४ ॥

---

१. 'वर', २. 'हरि', ३. 'पावनीषु पाथोधेर्निवे' ख, ग. पाठः ।
४. 'समवि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

योजनानां सहस्रे द्वे[1] सार्धे स्यादुच्छ्रयस्तयोः ।
श्वेतश्च हेमकुटश्चेत्यन्तयोः पृथिवीधरौ ॥ १५ ॥

योजनानां सहस्रार्धमेकैकस्योच्छ्रयस्तयोः ।
निषधाचलनीलाद्रिमाल्यवद्गन्धमादनाः ॥ १६ ॥

सहस्रयोजनोच्छ्रायाश्चत्वारोऽमी पृथक्पृथक् ।
एतेऽष्टावपि शैलेन्द्राः सहस्रद्वयविस्तृताः ॥ १७ ॥

उच्छ्रयार्धमधश्चापि विलग्नाः सह मेरुणा ।
मेरोः समुच्छ्रयोऽशीतिः सहस्राणि चतुर्युता ॥ १८ ॥

षोडशाधः सहस्राणि द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतिः ।
जम्बूतरुर्महान् मध्ये सुमेरोर्निषधस्य च ॥ १९ ॥

द्वीपस्यामुष्य [2]यद्योगाज्जम्बूद्वीप इति श्रुतिः ।
शृङ्गैर्हिमशिलानद्धैः सर्वतो हिमवानयम् ॥ २० ॥

महान्तो निवसन्त्यत्र पिशाचा यक्षराक्षसाः ।
कूटैर्हेममयैर्हेमकूट इत्यवनीधरः ॥ २१ ॥

यं सर्वतो निषेवन्ते सदा चारणगुह्यकाः ।
तरुणार्कप्रभाजालप्रतिमो निषधाचलः ॥ २२ ॥

निवसन्ति सुखं तत्र शेषवासुकितक्षकाः ।
हेमाब्जकर्णिकाकारः सुमेरुर्मणिकन्दरः ॥ २३ ॥

अत्रामराः साप्सरसस्त्रयस्त्रिंशद् वसन्ति ते ।
वैडूर्यनद्धैः शिखरैर्नीलो नीलमहीधरः ॥ २४ ॥

कलयन्ति [3]तपोनित्या यत्र ब्रह्मर्षयः [4]स्थितिम् ।
श्वेतः स काञ्चनैः शृङ्गैर्गगनोल्लेखिभिर्वृतः ॥ २५ ॥

दोर्दर्पशालिनां यत्र निवासस्त्रिदशद्विषाम् ।
महानीलमयो बर्हिपिञ्छच्छायो बर्हिर्महान् ॥ २६ ॥

---

१. 'द्वे द्वे सार्धे उच्छ्र' ख. ग. पाठः । २. 'त', ३. 'ततो नि', ४. 'स्थिताः' क पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पितॄणामालयः शृङ्गैरुच्छ्रितैः शृङ्गवान् गिरिः ।
हिमाचलस्य याम्येन क्षाराब्धिवृत्तमन्यतः ॥ २७ ॥

वर्षं स्याद् भारतं नाम प्रथमं कार्मुकाकृति ।
तुषारनिलयस्याद्रेर्हैमकूटाचलस्य च ॥ २८ ॥

मध्ये किंपुरुषं नाम द्वितीयं वर्षमीरितम् ।
अन्तरे हेमकूटस्य निषधस्य च भूभृतः ॥ २९ ॥

हरिवर्षमिति प्रोक्तं तृतीयं वर्षमुत्तमम् ।
निषधाचलनीलाद्रिमाल्यवद्गन्धभूभृताम् ॥ ३० ॥

चतुर्णां मध्यगं वर्षं तुर्यमस्मिन्निलावृतम् ।
उत्तरे नीलशैलस्य याम्ये च श्वेतभूभृतः ॥ ३१ ॥

पञ्चमं वर्षमत्यर्थरम्यं रम्यकसंज्ञितम् ।
श्वेतशृङ्गवतोः शैलराजयोरनयोरिह ॥ ३२ ॥

मध्ये षष्ठं हिरण्यांशुरम्यं हैरण्यकाह्वयम् ।
अस्योत्तरे शृङ्गवतो याम्ये च क्षारवारिधेः ॥ ३३ ॥

कुरुवर्षाभिधं वर्षमुत्तरेण प्रचक्षते ।
अन्तरा नीलनिषधौ प्राग्भागे माल्यवद्गिरेः ॥ ३४ ॥

भद्राश्वमष्टमं वर्षं प्राक्समुद्रान्तमीरितम् ।
गन्धमादनशैलस्य प्रत्यक् प्राक् चापराम्बुधेः ॥ ३५ ॥

नवमं वर्षमाचार्याः केतुमालं प्रचक्षते ।
इति प्रोक्तानि वर्षाणि नवामूनि मया तव ॥ ३६ ॥

साम्प्रतं पुनरेतेषां प्रमाणमवधारय ।
प्रमाणेन सहस्राणि चतुस्त्रिंशच्चतुर्दिशम् ॥ ३७ ॥

योजनानामिहेच्छन्ति चतुरश्रमिलावृतम् ।
प्राक्प्रत्यग्भागगे वर्षे तस्योदग्याम्यतः समे ॥ ३८ ॥

---

१. 'मध्यतः' ख. ग. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

एकत्रिंशत्सहस्राणि किञ्चित् प्राक्प्रत्यगायते ।
यान्युक्तानि षडन्यानि वर्षाण्येभ्योऽन्तराणि *ते ॥ ३९ ॥
तेषां नवसहस्राणि प्रत्येकं विस्तृतिर्मता ।
वर्षे किम्पुरुषे नार्यो नराश्च प्लक्षभोजनाः ॥ ४० ॥
जीवन्त्ययुतमब्दानां जात्यजाम्बूनदत्विषः ।
हरिवर्षे नरा नार्यो वसन्तीक्षुरसाशिनः ॥ ४१ ॥
सायुतं च सहस्रं ते जीवन्ति रजतत्विषः ।
इलावृते नराः पद्मरागभासोद्गतास्तथा ॥ ४२ ॥
जम्बूफलरसाहाराः सपादायुतजीविनः ।
नास्मिन् मेरुतटच्छन्ने तारकार्केन्दुरश्मयः ॥ ४३ ॥
स्वाङ्गप्रभाभिः किन्त्वत्र कृतोद्द्योता वसन्त्यमी ।
कैरवोदरसच्छाया भद्राश्वे साङ्गना नराः ॥ ४४ ॥
नीलाम्रकफलाहारा भवन्त्यत्रायुतायुषः ।
दलत्कुवलयश्यामाः केतुमाले शरीरिणः ॥ ४५ ॥
शरदामयुतं तेषामायुः पनसभोजिनाम् ।
श्वेताभो रम्यके रम्ये न्यग्रोधफलभुग् जनः ॥ ४६ ॥
हरिवर्ष इव प्रोक्तमेतस्मिन् मानमायुषः ।
श्यामत्विषः स्त्रियो वर्षे पुमांसश्च हिरण्यके ॥ ४७ ॥
जीवन्त्ययुतमब्दानां सर्वेऽपि लकुचाशिनः ।
कुरुष्वभीष्टदैर्वृक्षैर्जीवन्ति स्त्रीयुता नराः ॥ ४८ ॥
सपादमयुतं देवगर्भभा गौरकान्तयः ।
पुण्यकर्मा वसत्येषु वर्षेषु निखिलो जनः ॥ ४९ ॥
शोकव्याधिजरातङ्कशङ्कोन्मुक्तः सदासुखी ।
वनैः कीर्णानि सर्वाणि कुसुमस्तबकाननैः ॥ ५० ॥
उद्भिज्जाद्रिनदीभिश्च तैस्तैस्तुङ्गैश्च पादपैः ।
उदञ्चद्वीचिमालेन लावणेनाब्धिना बहिः ॥ ५१ ॥

---

* ते तव ।

"Aho Shrut Gyanam"

परिक्षिप्तोऽयमुक्तस्ते जम्बूद्वीपो मयाखिलः ।
द्वादशाम्बुनिधावत्र पृथग् भूमिभृतः स्थिताः ॥ ५२ ॥
त्रयस्त्रयो दिशि दिशि स्फारोर्मिस्थगितोपलाः ।
मैनाकश्च बलाहश्च चक्रनामा च दक्षिणे ॥ ५३ ॥
नारदाख्यो वराहाख्यः सौमकाख्यश्च पश्चिमे ।
उदग्भागेऽपिच द्रोणकङ्कचन्द्रा इति त्रयः ॥ ५४ ॥
धूम्रको दुन्दुभिश्चैव सार्द्रकश्चेति पूर्वतः ।
सहस्रं योजनानां ते दीर्घास्तस्यार्धमुच्छ्रिताः ॥ ५५ ॥
मग्नास्तदर्धमम्भोधौ विस्तृताश्च धराधराः ।
जुष्टाः सर्वे सुरैः भृङ्गप्रौढिलीढविहायसः ॥ ५६ ॥
ज्वलितौषधयः कान्तविचित्रद्रुमवीरुधः ।
द्वीपाः [1]शाककुशक्रौञ्चशाल्मल्य इति च क्रमात् ॥ ५७ ॥
गोमेदः पुष्कराख्यश्च षडमी बाह्यतः स्थिताः ।
क्षीराज्यदधिमद्येक्षुरसस्वाद्वम्भसोऽर्णवाः ॥ ५८ ॥
द्वीपान् शाकादिकानेते परिवार्य स्थिताः क्रमात् ।
स्वद्वीपतुल्याः सर्वे ते प्रमाणेन यथाक्रमम् ॥ ५९ ॥
अमी शाकादयो द्वीपा जम्बूद्वीपप्रमाणतः ।
यथाक्रमं स्युर्द्विगुणास्तथाम्भोनिधयोऽपिच ॥ ६० ॥
शाके सप्ताद्रयस्तेषूदयो जलधरस्तथा ।
नारको रैवतः श्यामो राजतोऽथाम्बिके[2]यकः ॥ ६१ ॥
चतुःसाहस्रिकस्तेषां विष्कम्भोऽर्धं समुच्छ्रयः ।
तदर्धं भूप्रदेशश्च सेवितानां सुरर्षिभिः ॥ ६२ ॥
वृत्तानां द्वीपवत् तेषां बाह्यतोऽमून्यनुक्रमात् ।
वर्षाणि सन्निविष्टानि सप्त तानि ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥
जलदाख्यं कुमारं च सुकुमारं मणीचकम् ।
कुसुमोत्तरमोदाकीमहाद्रुमवनानि च ॥ ६४ ॥

---

१. 'तालकु', २. 'जा' ख. पाठः । ३. 'जयः' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कुशे विद्रुमहेमाख्यौ द्युतिमानथ पुष्पवान् ।
कुशेशयो हरिक्ष्माभृन्मन्दरश्च कुलाचलाः ॥ ६५ ॥
विष्कम्भोऽष्टसहस्राणि तेषां प्रत्येकमीरितः ।
तदर्धमुच्छ्रयस्तद्वदुच्छ्रयार्धमधोगमः ॥ ६६ ॥
उद्भिदं वेणुवत्संज्ञं [1]सरालमथ लम्बनम् ।
वर्षं श्रीमत् प्रभाकृच्च कपिलं पन्नगाभिधम् ॥ ६७ ॥
क्रौञ्चे क्रौञ्चोऽन्धकारश्च देवो गोविन्दवामनौ ।
द्विविदः पुण्डरीकश्चेत्यस्मिन् सप्त [2]कुलाद्रयः ॥ ६८ ॥
विष्कम्भोऽयुतमेतेषां विष्कम्भार्धं समुच्छ्रयः ।
अधोगतिस्तदर्धं च वर्षाण्येषां तु बाह्यतः ॥ ६९ ॥
कुसलाख्याष्टवर्षाख्ये परापतमनोनुगे ।
मुनिवर्षान्धकाराख्ये सप्तमं दुन्दुभीति च ॥ ७० ॥
गिरयः शाल्मलिद्वीपे रक्तः पीतः सितस्तथा ।
वैपुल्यमेषां द्वात्रिंशत्सहस्राणि प्रचक्षते ॥ ७१ ॥
वैपुल्यार्धं समुच्छ्रायस्तदर्धमवनौ गतिः ।
वर्षे शान्तभयं वीतभयं चेत्यत्र संस्थिते ॥ ७२ ॥
गोमेदे तु सुरश्चेति कुमुदश्चेति भूधरौ ।
योजनानां चतुःषष्टिस्तौ सहस्राणि विस्तृतौ ॥ ७३ ॥
उच्छ्रायो विस्तरस्यार्धं तदर्धं चाप्यधोगतिः ।
धातकीखण्डनामास्य मध्ये वर्षमुदीरितम् ॥ ७४ ॥
अस्त्यद्रिः पुष्करद्वीपे मानसोत्तरसंज्ञितः ।
बाह्यतो वर्षमेतस्य महावीतमिति स्मृतम् ॥ ७५ ॥
विस्तृतोऽष्टौ सहस्राणि शैलोऽयं द्वे तथायुते ।
सहस्रशतमन्यच्च सुरसिद्धर्षिसेवितः ॥ ७६ ॥
व्यासार्धेनोच्छ्रयस्तस्य तदर्धेनाप्यधोगमः ।
सुरेशानां नगर्योऽस्मिन् मया वत्स! निवेशिताः ॥ ७७ ॥

१. 'स्वराल' ख., 'स्वाराल' ग. पाठः । २. 'कुलाचलाः' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ऐन्द्री वस्त्वोकसारा प्राग् याम्या संयमनी ततः ।
प्राचेतसी सुखा पश्चात् तथा सौम्युत्तरे विभा ॥ ७८ ॥
धर्मरक्षार्थमेतासु चत्वारश्चतसृष्वपि ।
तथा लोकव्यवस्थार्थं पृथग् लोकभृतः स्थिताः ॥ ७९ ॥
लोकालोकाचलः स्वादुसलिलाद् द्विगुणो बहिः ।
स्वादूदाब्धिप्रमाणात् स विस्ताराद् द्विगुणोऽपिच ॥ ८० ॥
समुच्छ्रितोऽसौ नियुतं नियुतार्धमधो गतः ।
पञ्च क्रोशाः प्रतिदिशं नियुतानि तथा नव ॥ ८१ ॥
तद्वच्च नियुतस्यार्धं मेरुमध्यात् तदन्तरम् ।
समुद्भासितदेहार्धस्तिग्मांशोः किरणैरयम् ॥ ८२ ॥
तत्समेन च भूम्यर्धेनावृतः परतः पुनः ।
भौतान्यावरणान्युर्व्या यस्यैतानि स्थितान्यधः ॥ ८३ ॥
बाह्यतोऽपिच भूम्यूर्ध्वं निविष्टानि तथानघ! ।
इति वत्स! तव प्रोक्तः सन्निवेशोऽखिलः क्षितेः ॥ ८४ ॥
स्थितिं गतिं च कथयाम्यर्कादीनामतःपरम् ।
सूर्येन्दुधिष्ण्यज्ञसितभौमार्किंत्रिदशार्चिताः ॥ ८५ ॥
सप्तर्षयो ध्रुवश्चेति भूमेरूर्ध्वं क्रमात् स्थिताः ।
चत्वारि द्वे तथा भूमेरूर्ध्वमा सूर्यनन्दनात् ॥ ८६ ॥
षडेवमन्तराणि स्युः सहस्राणां शतं शतम् ।
ग्रहान्तराणि यान्यन्यान्यवशिष्टान्यनुक्रमात् ॥ ८७ ॥
तानि चत्वार्यपि द्वे द्वे लक्षे प्रोक्तानि मानतः ।
धरित्रीध्रुवयोर्मध्ये योजनानां चतुर्दश ॥ ८८ ॥
नियुतानि समुत्सेधस्त्रैलोक्यस्य प्रकीर्त्तितः ।
एकाथ द्वे चतस्रोऽष्टावन्तरं कोटयः क्रमात् ॥ ॥ ८९ ॥
महोजनस्तपःसत्यलोकानामुपरि ध्रुवात् ।
ये स्थिताः सत्यलोकोर्ध्वमधस्ताद्ण्डकर्परात् ॥ ९० ॥
एका कोटिर्भवेत् तेषां पञ्चाशन्नियुतान्विता ।
अथावरणयोगोऽस्य विहितः (स?प)ब्जजन्मना ॥ ९१ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

यथैवाधस्तथा तिर्यक् तथैवोर्ध्वमपि क्रमात् ।
वहेऽब्दाः प्रवहे सूर्यः स्थितः शीतांशुरुद्वहे ॥ ९२ ॥

संवहस्थानि नक्षत्राण्यावहस्थाः पुनर्ग्रहाः ।
सप्तर्षयः परिवहे ध्रुवश्चापि परावहे ॥ ९३ ॥

प्रदक्षिणममी सप्त मरुतो भ्रमयन्त्यमून् ।
मेधीभूतः स्थितो मध्ये सुमेरुक्ष्माभृति ध्रुवः ॥ ९४ ॥

समस्तमपि तद्बद्धं ज्योतिश्चक्रं भ्रमत्यदः ।
सप्ताश्वेनैकचक्रेण रथेन रथिनां वरः ॥ ९५ ॥

*तेजोमयेन सततं भ्राम्यति ज्योतिषां पतिः ।
केतुमाले (रजन्यर्धं व्रजन्नूर्ध्वं) करोत्यस्तं कुरुष्वपि ॥ ९६ ॥

मध्यन्दिनं च भद्राश्वे(ष्वह्नीस्तं ग)च्छन् भारते रविः ।
रसाब्धिपक्षसङ्ख्यानि योजनानि निमेषतः ॥ ९७ ॥

सप्तविंशतिकां चाष्टौ भागान् सर्पत्यहर्पतिः ।
योजनान्य(ध्विनंदर्तु ? ब्धिनन्दर्तु) गुणसङ्ख्यानि काष्ठया ॥ ९८ ॥

नवांशकचतुष्कं च क्रामत्यहिमदीधितिः ।
वह्न्यग्निवसुखेन्द्रक्ष्मासङ्ख्यातान्यब्जिनीपतिः ॥ ९९ ॥

योजनस्य त्रिभागं च प्रयाति कलयैकया ।
वियत्खव्योमभूताब्धिगुणपावकसङ्ख्यया ॥ १०० ॥

योजनान्युष्णकिरणो मुहूर्तेन प्रसर्पति ।
रात्र्यहेण सहस्राणि पञ्चाशन्नवकोटयः ॥ १०१ ॥

लक्षाणि सप्तनवतिर्गतिः स्यात् तिग्मरोचिषः ।
मध्येन पुष्करद्वीपस्यार्को गत्यानया व्रजन् ॥ १०२ ॥

नभस्तलेन पुनरप्युदयादुदयं श्रयेत् ।
इत्थं गतिरियं सम्यक् तिग्मभानोर्निरूपिता ॥ १०३ ॥

गतिं चन्द्रग्रहर्क्षाणां भोगं चार्काद् विभावयेत् ।
प्रोक्तं तवेत्यहोरात्रप्रमाणमधुनानघ! ॥ १०४ ॥

---

* एतदादिश्लोकद्वयं ख, ग, मातृकयोर्नास्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

पक्षमासर्त्तुवर्षादीन् व्यवहाराय कल्पयेत् ॥ १०४$\frac{1}{2}$ ॥

इति निगदित एष द्वीपशैलाम्बुधीना-
मवनिवलयवर्त्ती कार्त्स्न्यतः सन्निवेशः ।
गतिरपि दिनभर्त्तुः कीर्त्तिता विश्वमानं
पुनरिह युगधर्मं कीर्त्यमानं निबोध ॥ १०५$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
भुवनकोशाध्यायः पञ्चमः ॥

अथ सहदेवाधिकारः षष्ठोऽध्यायः ।

अथ प्राक्कथितादस्माद् भूतसर्गादनन्तरम् ।
प्रजासीदमरैः सार्धमियं पूर्णजनाकुला ॥ १ ॥

शोकव्याधिजरातङ्कविमुक्तास्त्रिदशा इव ।
पुराभवन् कृतयुगे पुमांसः स्थिरयौवनाः ॥ २ ॥

ते निकुञ्जेषु शैलानां नदीषु च सरस्सु च ।
वनेषु च विचित्रेषु चिक्रीडुर्दैवतैः सह ॥ ३ ॥

हेलया ते समुत्पत्य कदाचिदमरैः सह ।
निरर्गलाः समासाद्य स्वर्विचेरुः सुरा इव ॥ ४ ॥

चित्राम्बरावृताः सर्वे नानाभरणशालिनः ।
विमानाकृतयस्तेषामासन् कल्पद्रुमा द्रुमाः ॥ ५ ॥

मनोज्ञाभिः सह स्त्रीभिर्विचित्राभर(णास्त्रि?णश्रि)यः ।
कल्पद्रुमेष्वकार्षुस्ते वासं क्रीडां च तेष्वथ ॥ ६ ॥

क्षुत्तृड्दुःखोज्झिताः सर्वे बभूवुरयुतायुषः ।
रत्नावदातदेहास्ते कदाचिद् भूरसाशिनः ॥ ७ ॥

रतिप्रायास्तदासंस्ते स्वेच्छाहारविहारिणः ।
स्वीकारविग्रहच्छेदविशदीकृतचेतसः ॥ ८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

नास्मिन्नर्कस्तपत्युग्रं न वाति प्रबलोऽनिलः ।
नीहारच्छेदसुन्दर्यो निशाः पूर्णेन्दुभूषणाः ॥ ९ ॥

भिन्नस्निग्धाञ्जनश्यामाः सतडिन्मन्द्रनिस्वनाः ।
अचण्डाशनयश्चासन् कबरीकान्तयो घनाः ॥ १० ॥

माद्यत्पिकवधूदष्टमाकन्दमुकुराङ्कुराः ।
आसन् सदापुष्पफलाभोगा येषां वनालयाः ॥ ११ ॥

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च ।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः ॥ १२ ॥

रूपश्रुतसुखैश्वर्यभाजस्ते निखिला अपि ।
समत्वान्नाभवत् तेषामुत्तमाधममध्यता ॥ १३ ॥

न खेटनगरग्रामपुरक्षेत्रखलादिकम् ।
न दंशमशकक्रव्याद्भयं वा न ग्रहादि च ॥ १४ ॥

कल्पद्रुमाप्तभोगानां न चैषां प्रभुरप्यभूत् ।
पुरास्मिन् भारते वर्षे तेषां निवसतामिति ॥ १५ ॥

जगाम सुबहुः कालः सुरैः सार्धं सुर(स्त्रि?श्रि)याम् ।
अज्ञाततत्प्रभावानां सहसंवाससंभवा ॥ १६ ॥

अथैषामभवद् दैवादवज्ञा त्रिदशान् प्रति ।
अपूज्यमानास्ते पूज्याः सर्वेऽप्यखिलवेदिनः ॥ १७ ॥

आदाय तत्कल्पतरुं निपेतुर्द्यां दिवौकसः ।
दिवंगमनशक्तिश्च दिव्यो भावश्च तद्गतः ॥ १८ ॥

सरसः परमो भूमौ भूरसश्च न्यवर्तत ।
स्मृत्वा कल्पदुमांस्तांस्तान् क्रीडास्ताश्च सुरैः सह ॥ १९ ॥

व्यलपन् बहुधात्यर्थमनर्थकृतचेतसः ।
ततो विलपतां भूरि स्वैरमाहारहेतवे ॥ २० ॥

प्राणत्राणार्थमेतेषामभूत् पर्पटको भुवि ।
भूरसेनैव तेनैते कुर्वाणाः प्राणरक्षणम् ॥ २१ ॥

---

१. 'नर्थीकृ' ख. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

विना कल्पद्रुमैर्वासमन्यवृक्षेषु चक्रिरे ।
अथैषां पश्यतामेव कदाचिद् भाग्यसंक्षयात् ॥ २२ ॥

विपर्ययाच्च कालस्य भूमेः पर्पटकोऽप्यगात् ।
ततः पर्पटके नष्टे तुषशूककणोज्झिताः ॥ २३ ॥

अकृष्टपच्या मेदिन्यामभवञ् शालितण्डुलाः ।
शाल्योदनेन तेनाथ सुस्वादुव्यञ्जनेन ते ॥ २४ ॥

परमां तृप्तिमासेदुः परितोषात्तचेतसः ।
तन्नाशशङ्कया शालितण्डुलानां द्रुमेष्वथः ॥ २५ ॥

ते व्यधुर्महतो राशींस्तैत्क्षेत्राणि च चक्रिरे ।
अजायत ततो लोभो मात्सर्येर्ष्यापुरस्सरः ॥ २६ ॥

तत्र तत्र शनैश्चक्रे पदन्यासं च मन्मथः ।
द्वन्द्वप्राप्त्या ततस्तेषां बिभ्रतामुत्तमां गतिम् ॥ २७ ॥

धैर्यध्वंसादभूत् स्त्रीषु भृशं रागतरङ्गमः ।
दारक्षेत्रनिमित्तानि भूयांस्येषामनन्तरम् ॥ २८ ॥

परिक्लेशैकमूलानि द्वन्द्वान्यासन् पृथक्पृथक् ।
ततः स्वक्लृप्तमर्यादोच्छेदिष्वेष्वजितात्मसु ॥ २९ ॥

अविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुषतामगात् ।
प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता ॥ ३० ॥

मलप्रवृत्तिरभवत् तुषधान्योपसेवया ।
तुषधान्ये ततो नष्टे परिभुक्ते च सञ्चये ॥ ३१ ॥

चीरवल्कलवस्त्राणां कन्दमूलफलाशिनाम् ।
ऋतवः कालपर्यासात् षड् वसन्तादयोऽभवन् ॥ ३२ ॥

ततस्तेषामभूद् दोषरोगशोकाकुलं वपुः ।
मनश्च कामक्रोधेर्ष्यादैन्यासूयादिदूषितम् ॥ ३३ ॥

आधिदैवकमुष्णाम्बुशीतादिजनितं महत् ।
आधिभौतिकमप्यासीद् दुःखं व्यालमृगादिजम् ॥ ३४ ॥

---

१. 'स्ततः क्षेत्राणि चक्रि' ख. ग. पाठः । २. 'र्यादास्वनिष्टेष्व' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

इत्थं दुःखत्रयार्त्तास्ते व्यवायाद्यभिगुप्तये ।
हिमनीहारशीताम्बुवाताद्यापच्छिदेऽपिच ॥ ३४ ॥

अजातभीतयो वृक्षैः कुट्टिमानि गृहाणि (ते?च) ।
व्यधुश्छित्वाश्मभिर्वृक्षानन्यान् दुःखार्तचेतसः ॥ ३५ ॥

स्मृत्वा कल्पद्रुमाकारांस्तद्रूपाणि गृहाणि ते ।
एकद्वित्रिचतुःसप्तदशशालानि चक्रिरे ॥ ३६ ॥

श(ब्दा? ष्प)प्राकारपरिखेष्वाच्छन्नेषु तृणादिभिः ।
हृष्टास्तेष्वनयन् कालमाप्तेषु गृहमेधिनः ॥ ३७ ॥

इत्यमीषु गृहिणो गृहेषु ते शीतवातजलतापनाशिषु ।
हर्षसंवलितमानसाश्चिरं सन्निरस्तविपदोऽवसन् सुखम् ॥ ३८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

सहदेवाधिकारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ वर्णाश्रमप्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ।

अथामरगणैः सार्धमाजगाम पितामहः ।
दुःखच्छेदाय मर्त्यानामादाय नृपतिं पृथुम् ॥ १ ॥

स तानूचे प्रभुर्वोऽसौ मरुतामिव वासवः ।
दण्डधारी च दुष्टानां प्रभावे लोकपालवत् ॥ २ ॥

प्रतापतापितारातिसिंहः सिंहपराक्रमः ।
युष्माकमाधिपत्येऽसावभिषिक्तो मया पृथुः ॥ ३ ॥

रक्षाकृत् सर्वशिष्टानामुच्छेत्ता दुष्टचेतसाम् ।
वृत्तितो भीतिहर्ता च भविष्यत्येष वो नृपः ॥ ४ ॥

---

१. 'कामानासे' ख. ग. पाठः । २. 'रातिः शश्वत् सि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भवद्भिरेतदायत्तैर्भवितव्यं ममाज्ञया ।
करिष्यत्येष वो नीत्या चातुर्वर्ण्याश्रमस्थितीः ॥ ५ ॥

उक्त्वेति ब्रह्मणि गते नाथमासाद्य तेऽथ तम् ।
अवोचन् दुःखिता दुःखादस्मात् त्रायस्व नः प्रभो! ॥ ६ ॥

कल्पद्रुमामरत्यक्तान् द्वन्द्वार्तिक्लान्तचेतसः ।
व्यसनार्णवनिर्मग्नान् पाहि नः पृथिवीपते! ॥ ७ ॥

अथो पृथुरुवाचैतान् मा भैष्ट सुखमास्यताम् ।
दुःखान्यपहरिष्यामि करिष्ये च सुखानि वः ॥ ८ ॥

ततः स चतुरो वर्णानाश्रमांश्च व्यभाजयत् ।
तेषु ये वेदनिरताः स्वाचाराः संयतेन्द्रियाः ॥ ९ ॥

सूरयश्चावदाताश्च ब्राह्मणास्तेऽभवंस्तदा ।
यजनाध्ययने दानं याजनाध्यापनार्थिताः ॥ १० ॥

धर्मास्तेषां विमुच्यान्त्यांस्त्रींस्तुल्याः क्षत्रवैश्ययोः ।
ये तु शूरा महोत्साहाः शरण्या रक्षणक्षमाः ॥ ११ ॥

दृढव्यायतदेहाश्च क्षत्रियास्त इहाभवन् ।
विक्रमो लोकसंरक्षाविभागो व्यवसायिता ॥ १२ ॥

एतेषामयमप्युक्तो धर्मः शुभफलोदयः ।
निसर्गान्निपुणं येषां रतिर्वित्तार्जनं प्रति ॥ १३ ॥

श्रद्धादाक्ष्यदयाव(न्तो ? त्ता) वैश्यांस्तानकरोदसौ ।
चिकित्सा कृषिवाणिज्ये स्थापत्यं पशुपोषणम् ॥ १४ ॥

वैश्यस्य कथितो धर्मस्तद्वत् कर्म च तैजसम् ।
नातिमानभृतो नातिशुचयः पिशुनाश्च ये ॥ १५ ॥

ते शूद्रजातयो जाता नातिधर्मरताश्च ये ।
कलारम्भोपजीवित्वं शिल्पिता पशुपोषणम् ॥ १६ ॥
वर्णत्रितयशुश्रूषा धर्मस्तेषामुदाहृतः ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थस्तथा यतिः ॥ १७ ॥

१. 'नो', २. 'शुचय' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

इत्याश्रमाः पृथक् तेन चत्वारः प्रविभाजिताः ।
गुरुशुश्रूषणं भैक्षं व्रतचर्याग्निकर्म च ॥ १८ ॥

स्वाध्यायश्चाभिषेकश्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।
पूजाग्न्यतिथिदेवानां स्ववृत्त्या जीवनं दमः ॥ १९ ॥

असमानर्षिगोत्रेषु विवाह ऋतुगामिता ।
परस्य स्त्रीषु वैमुख्यं परानुग्रहशीलता ॥ २० ॥

विनिवृत्तिरकार्येभ्यो धर्मोऽयं गृहिणां कृतः ।
देवतातिथिसत्कारो ब्रह्मचर्यं वने स्थितिः ॥ २१ ॥

वल्काजिनजटाचीरधारणं शयनं भुवि ।
उपोषणैर्व्रतैर्देहकर्शनं नियमैस्तथा ॥ २२ ॥

आहारोऽकृष्टपच्यैश्च धर्मोऽयं वनवासिषु ।
वैराग्यमिन्द्रियजयश्चिन्तात्यागः प्रशान्तता ॥ २३ ॥

आकिञ्चन्यमनारम्भो यतिधर्मः सदा स्मृतः ।
क्षमत्वं गुर्वधीनत्वं शौचं स्वाध्यायनित्यता ॥ २४ ॥

विशुद्धिर्व्यवहारेषु शिष्यधर्मोऽयमीरितः ।
शुचित्वं वाङ्मनःकायैः पतिशुश्रूषणं क्षमा ॥ २५ ॥

पूजनं पतिपूज्यानां स्त्रीधर्मः शौचमेव च ।
एवं वर्णाश्रमान् सम्यक् कृत्वा वर्णास्तदुद्भवान् ॥ २६ ॥

विभज्य तेषां वैन्येन ते ते धर्माः प्रकीर्तिताः ।
वृत्तिं कर्माणि चैतेषां पृथगुद्दिश्य सोऽभ्यधात् ॥ २७ ॥

स्वधर्मावस्थितानां वो भावि लोकद्वये सुखम् ।
य एतां स्थितिमुल्लङ्घ्य मोहादन्यद् विधास्यति ॥ २८ ॥

तस्याहं यमवत् क्रुद्धः करिष्याम्यनुशासनम् ।
युक्तानां कर्मसु स्वेषु वृत्त्यर्थं भवतामहम् ॥ २९ ॥

खेटकग्रामवेश्मानि विधास्यामि पुराणि च ।
इत्युक्त्वा तानथो कोट्या कार्मुकस्य पृथुर्नृपः ॥ ३० ॥

---

१. 'भूत्यर्थं' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

विषमां साधयामास पृथिवीं पृथुविक्रमः ।
तत्सङ्क्लेशेन गौर्भूत्वा नश्यन्ती तेन मेदिनी ॥ ३१ ॥

विधेर्नियोगाद् दुदुहे साधु सस्यानि भूतये ।
कल्पितास्तेन शैलानां सरितामन्तरेषु च ॥ ३२ ॥

समेषु चावकाशेषु पुरादीनां विभक्तयः ।
तेन सीराग्रकृष्टेयं धान्यैरुप्तैर्यथाविधि ॥ ३३ ॥

ससस्या क्रियते क्षोणी भगवत्यम्बुदागमे ।

इत्युद्भवो निगदितः प्रथमो नृपस्य
धर्मेण सार्धमपिचाश्रमवर्णभेदाः ।
प्रोक्ताः कृषिव्यतिकरोऽपिच दर्शितस्ते
कार्त्स्न्येन वत्स! शृणु देशविभागभूमिम् ॥ ३४$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
वर्णाश्रमप्रविभागो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽध्यायः ।

देशाश्च देशभूम्यश्च समासात् तव सम्प्रति ।
तत्सङ्ख्या तद्विभागाश्च प्रोच्यन्तेऽवहितः शृणु ॥ १ ॥

देशः स्याज्जाङ्गलानूपसाधारणतया त्रिधा ।
त्रिविधस्याप्यथैतस्य यथावल्लक्ष्म कथ्यते ॥ २ ॥

दूराम्बुरिरिणप्रायो ह्रस्वकण्टकिपादपः ।
रूक्षोष्णचण्डपवनः कृष्णमृत् तेषु जाङ्गलः ॥ ३ ॥

निम्नो भूरिजलः स्निग्धो बहुमत्स्यामिषो हिमः ।
स्यादनूपः सरित्प्रायः स्निग्धोच्छ्रितबहुद्रुमः ॥ ४ ॥

यः पुनर्नातिशीतोष्णः स्याद् देशद्वयलक्षणः ।
स साधारण इत्युक्तो देशो देशविशारदैः ॥ ५ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

जाङ्गलादिषु देशेषु त्रि(पुण्ये?ष्वप्ये)षु स्वलक्षणैः ।
युक्ताः षोडश विज्ञेया भूमयः प्रविभागतः ॥ ६ ॥

बालिशस्वामिनी भोग्या सीतागोचररक्षिणी ।
अपाश्रयवती कान्ता खनिमत्यात्मधारिणी ॥ ७ ॥

वणिक्प्रसाधिता द्रव्यसम्पन्नामित्रघातिनी ।
आश्रेणीपुरुषा शक्यसामन्ता देवमातृका ॥ ८ ॥

धान्या हस्तिवनोपेता सुरक्षा चेति षोडश ।
भुवः संज्ञाभिरुद्दिष्टा लक्ष्मासामथ कथ्यते ॥ ९ ॥

भूभुजा बालिशेनापि शक्यते या प्रशासितुम् ।
या च भद्रजना सा स्याद् बालिशस्वामिनी क्षितिः ॥ १० ॥

वितरन्त्यधिकं यस्यां भागभोगादिकान् करान् ।
नरा भूरिश्रियः सात्र भोग्येति क्षितिरुच्यते ॥ ११ ॥

यस्यां नदाश्च नद्यश्च गिरिर्मध्येऽथवा बहिः ।
विभक्तक्षेत्रसीमा सा सीतागोचररक्षिणी ॥ १२ ॥

सरिदद्रिवनाद्येषु त्रासाद् यस्यां विशेज्जनः ।
जनापाश्रययोग्यत्वादपाश्रयवतीति सा ॥ १३ ॥

वनोपवनवत्यद्रिसरित्कुञ्जमनोहरा ।
देहिनो रमयत्युर्वी या सा कान्तेति कीर्तिता ॥ १४ ॥

यस्यां सदैव जायन्ते कलधौतादिधातवः ।
लवणानि च भूयांसि प्राहुः खनिमतीति ताम् ॥ १५ ॥

यात्यन्तं नानुगृह्णेत दण्डकोशासनादिभिः ।
स्फीतलोकाश्रया या च सा स्याद् भूरात्मधारिणी ॥ १६ ॥

प्रसिध्यन्त्यसकृद् यत्र पण्योपक्रयविक्रयाः ।
वणिक्प्रसाधितेत्युक्ता सा भूर्वणिगलङ्कृता ॥ १७ ॥

शाकाश्वकर्णखदिरश्रीपर्णीस्यन्दनासनैः ।
वेणुवेत्रशराद्यैश्च युक्ता द्रव्यवतीति भूः ॥ १८ ॥

यस्यां जनपदाः साधु विभक्तास्त्यक्तविक्रमाः ।
योगं यान्ति च मित्राणि स्याद् भूः सामित्रघातिनी ॥ १९ ।

"Aho Shrut Gyanam"

न क्षुद्रा वन्दिनो यस्यां दुर्गप्रत्यन्तसंश्रयाः ।
भूः साश्रेणीर्मनुष्येति विनीतैराश्रिता जनैः ॥ २० ॥
मन्त्रोत्साहादिवैमुख्यं यस्यां सामन्तभूभुजः ।
भजन्ते सा स्मृता शक्यसामन्ता भूः समन्ततः ॥ २१ ॥
जीवन्ति क्षेत्रिणो यस्यां न(दी ? द)नद्यादिवारिभिः ।
तां देवमातृकेत्याहुरनपेक्षितवारिदाम् ॥ २२ ॥
निष्पद्यन्तेऽधिकं यस्यां बीजान्युप्तान्ययत्नतः ।
कृष्टानुपहृतक्षेत्रा धान्या सा धान्यशालिनी ॥ २३ ॥
पर्यन्तेष्वद्रयो यस्यां या च हस्तिवनाश्रिता ।
सा हस्तिवनवत्युर्वी भूभृतः सैन्यवर्धिनी ॥ २४ ॥
दुष्प्रधृष्यैव या नित्यं विषमत्वादरातिभिः ।
विषमाद्रिसरिद्गुप्ता सा सुरक्षेति भूः स्मृता ॥ २५ ॥
षोडशेत्युदिता भूम्यः प्रविभागाद् यथातथम् ।
अन्या जनपदादीनां ब्रूमः सम्मिश्रलक्षणाः ॥ २६ ॥
धातुस्यन्दोल्लसत्कुञ्जगुल्मद्रुमलतावृतैः ।
उत्सङ्गिताः पृथुशिलैः समन्तादवनीधरैः ॥ २७ ॥
तीर्थावतारकान्ताभिः स्वादुतोयाभिरावृताः ।
नदीभिः पुलिनप्रान्तैर्विचित्रद्रुमशालिभिः ॥ २८ ॥
कोकिलालापसुभगैर्मधुमत्तालिशालिभिः ।
विचित्रफलपुष्पाढ्यैः काननैरुपशोभिताः ॥ २९ ॥
दलत्कुवलयश्रेणीक्वणन्मधुपहारिभिः ।
सरसीदेवखाताद्यैर्भूषिताः प्राज्यवारिभिः ॥ ३० ॥
समैः सुगन्धिभिः स्वादुशीतैः कान्तैरभङ्गुरैः ।
क्षेत्रैरक्षतसीमान्तैः सस्यनिष्पादिभिर्वृताः ॥ ३१ ॥
निष्कण्टकाश्मवल्मीकैः प्रभूतयवसेन्धनैः ।
विभक्तक्षेत्रसीमान्तैर्गोचरैरुपशोभिताः ॥ ३२ ॥

१. 'पूरुषेति विभीतैः' ख. ग. पाठः । २. 'नान्विता' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्थले तृणसमुद्राणामन्तरेषु वसुन्धराः ।
प्रशस्यन्ते समासन्नस्वादुशीतलवारयः ॥ ३३ ॥

दुरात्मनामधृष्या यास्तथानेकाश्रयान्विताः ।
संरम्भत्रासनिर्मुक्तं मनश्च रमयन्ति याः ॥ ३४ ॥

तास्त्वेवंगुणयुक्तासु महीषु विनिवेशयेत् ।
यथास्थानं जनपदान् खेटग्रामपुरादि च ॥ ३५ ॥

युता महीध्रमूला(स्व? म्बु)प्राकारैस्तु पृथक्पृथक् ।
चतस्रः कीर्तिता धन्या भूमयो दुर्गहेतवः ॥ ३६ ॥

दुरारोहतया दुर्गे टङ्कच्छिन्न इवान्ततः ।
समपृष्ठेन्दु(?)युक्तेऽद्रौ गिरिदुर्गावनिर्भवेत् ॥ ३७ ॥

कण्टकिद्रुमनीरन्ध्र(तद्देशा?नद्धे सा)म्भसि कानने ।
गूढप्रवेशमार्गे भूर्मूलदुर्गेति कीर्तिता ॥ ३८ ॥

द्वीपेषु स्वादुतोयेषु बहुगाधजला बहिः ।
रम्यावकाशदेशा स्याज्जलदुर्गा च मेदिनी ॥ ३९ ॥

स्निग्धाः सारभृतः शुद्धाः प्रदक्षिणजलाशयाः ।
बहूदकास्तरुच्छन्ना निविडाः प्रागुदक्प्लवाः ॥ ४० ॥

दूर्वास(स्त्वौ?स्यौ)षधीमुञ्जकुरुन्दकुशवल्कलैः ।
परितः परिणद्धाश्च स्वादुस्वच्छस्थिरोदकाः ॥ ४१ ॥

वास्तुयज्ञामरस्थानाद्यारामोद्यानसंभृताः ।
तटाकवापीस्थानैश्च याः समन्तादलङ्कृताः ॥ ४२ ॥

या वाहनानां सुखदा मिथुनानां रतिप्रदाः ।
पुरार्थं ताः प्रशस्यन्ते भूमयो जनितश्रियः ॥ ४३ ॥

कुङ्कुमागुरुकर्पूरस्पृक्केलाचन्दनादिभिः ।
सुगन्धा मिश्रितैरेभिः पृथक्स्थैर्वा वसुन्धरा ॥ ४४ ॥

कल्हारपाटलाम्भोजमालतीचम्पकोत्पलैः ।
स्थलाम्बुप्रभवैश्चान्यैः सुगन्धा कुसुमैस्तथा ॥ ४५ ॥

---

१. 'स्त्वैः' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

गोमूत्रगोमयक्षीरदधिमध्वाज्यगन्धभाक् ।
समानगन्धा मदिरामाध्वीकेभमदासवैः ॥ ४६ ॥

शालिपिष्टकगन्धैश्च धान्यगन्धैश्च या तथा ।
प्रशस्ताखिलवर्णानामीदृग्गन्धा वसुन्धरा ॥ ४७ ॥

सिता रक्ता च पीता च कृष्णा चैव क्रमान्मही ।
विप्रादीनां हि वर्णानां सर्वेषामथवा हिता ॥ ४८ ॥

स्वादुः कषाया तिक्ता च कटुका चेत्यनुक्रमात् ।
वर्णानां स्वादतः शस्ता सर्वेषां मधुराथवा ॥ ४९ ॥

घर्मागमे हिमस्पर्शा या स्याद्दुष्णा हिमागमे ।
प्रावृष्युष्णहिमस्पर्शा सा प्रशस्ता वसुन्धरा ॥ ५० ॥

मृदङ्गवल्लकीवेणुदुन्दुभीनां समा ध्वनौ ।
द्विपा(ब्दौप्य?श्वाब्धि)समस्वाना चेति स्युर्भूमयः शुभाः ॥ ५१ ॥

इदानीमप्रशस्तानां भुवां लक्ष्माभिदध्महे ।
पुरादिसन्निवेशार्थं परित्याज्या भवन्ति याः ॥ ५२ ॥

भस्माङ्गारकपालास्थितुषकेशविषाश्मभिः ।
मूषकोत्करवल्मीकशर्कराभिश्च निर्भरा ॥ ५३ ॥

रूक्षा प्ररोहिणी निम्ना भङ्गुरा सुषिरोषरा ।
वामावर्तजलास्राविण्यसारा विषमोन्नता ॥ ५४ ॥

कटुकण्टकिनिःसारशुष्कनिष्फलपादपा ।
क्रव्यात्पक्षिसमाकीर्णा क्रिमिकीटवती च या ॥ ५५ ॥

सुकृतान्यपि भोज्यान्नभक्ष्यपानानि तत्क्षणात् ।
यस्यां विनाशमायान्ति सह तूर्यादिनिस्वनैः ॥ ५६ ॥

सरित् पूर्ववहा यस्यां पुरार्थं तामपि त्यजेत् ।
बहुनापि यतस्तत्र कालेनायाति सा पुनः ॥ ५७ ॥

वसासृङ्मज्जविण्मूत्रमलको(थ?श)पतत्रिणाम् ।
समगन्धां त्यजेदुर्वीं तैलस्य च शवस्य च ॥ ५८ ॥

---

१. 'ध्णा चेति क,' २. 'मृगाकी' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सदैव धूम्रवर्णा या मिश्रवर्णाथवा मही ।
विवर्णा रूक्षवर्णा वा सा न स्यादिष्टदायिनी ॥ ५९ ॥

तिक्ताम्ललवणा चापि भूमिर्या स्वेदला भवेत् ।
तां लोकविद्वेषकरीं त्यजेत् पुरनिवेशने ॥ ६० ॥

या रूक्षखरसंस्पर्शा सदैवोष्णा हिमाथवा ।
अनिष्टसुखसंस्पर्शा या स्यात् तामपि सन्त्यजेत् ॥ ६१ ॥

क्रोष्टूष्ट्रखरस्वाना या च निर्झरनिःस्वना ।
भिन्नभाण्डसमक्रूरध्वनिताचिन्न [illegible] ॥ ६२ ॥

इति गन्धादिभिर्भूमिः कथितेयं शुभाशुभा ।
हलेन कृष्यमाणायां भूमौ काष्ठे समुद्धृते ॥ ६३ ॥

विद्याद् भयं वह्निभयमिष्टकायां धनागमम् ।
पाषाणेषु तु कल्याणं कुलध्वंसमस्थिषु ॥ ६४ ॥

सरीसृपेषु सर्वेषु स्तेनेभ्यो भयमादिशेत् ।
अनूपरा बहुतृणा सस्या स्निग्धोदरक्षमा ॥ ६५ ॥

प्रागीशानप्लवा सर्वप्लवा वा दर्पणोदरा ।
शुभेऽह्न्युपोषितः स्नातः शुचिः शुक्लस्रगम्बरः ॥ ६६ ॥

स्वस्ति विप्रान् वाचयित्वा वास्तुदेवान् समर्च्य च ।
करप्रमाणं कुर्वीत खातं तद्भूमिमध्यगम् ॥ ६७ ॥

ततस्तन्मृदमाकृष्य तत् तयैवानुपूरयेत् ।
खाताधिकमृदुत्था भूः श्रेष्ठा मध्या च तत्समा ॥ ६८ ॥

प्रहीणखातमृत् क्षोणी हीना शस्ता न सा नृणाम् ।
खन्यमाने यदा खाते जन्तवोऽन्नपिपीलिकाः ॥ ६९ ॥

मणिशङ्खप्रवालादि तदाऽतिश्रेयसी क्षितिः ।
सापि प्रशस्यते भूमिर्यस्यां स्युः खातपांसवः ॥ ७० ॥

तुषकेशोपलाङ्गारभस्मास्थिकलवर्जिताः
भृत्वाद्भिः खातमापूर्णं तस्मिन् पदशतं व्रजेत् ॥ ७१ ॥

१. 'स्यादतो भ' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तावच्चेदागमेऽम्भः स्यात् तदा भूः सार्वकामिकी ।
मध्यमात्र प्रहीणे स्यात् ततो हीनतरेऽधमा ॥ ७२ ॥
खाते सितादिमाल्यानि यस्यां निश्युषितानि च ।
यद्वर्णानि न शुष्यन्ति सा तद्वर्णेष्टदा मही ॥ ७३ ॥
खातस्योदक्प्रभृतिषु दिक्षु प्रज्वालयीत वा ।
दीपान् यस्यां चिरं तिष्ठेत् तद्वर्णेष्टप्रदा हि सा ॥ ७४ ॥
इत्येवं कीर्त्तिताः कार्त्स्न्याल्लक्ष्मभिः पुरभूमयः ।
खर्वटग्रामखेटानामेता एव स्मृता हिताः ॥ ७५ ॥
वर्णिनां वर्णधाम्नां च शिबिराणां च सर्वदा ।
प्रासादयज्ञवाटानामेता एवेष्टदा भुवः ॥ ७६ ॥
इत्येवमादिभिरि(र्य?माः) शुभलक्ष्मयुक्ता
भूम्यः शुभा निगदिता नगरादिहेतोः ।
आभ्यः परेण बहुधा परिकल्प्यमानं
ब्रूमस्त्रिधा स्थितवतोऽपि करस्य मानम् ॥ ७७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे भूमिपरीक्षा नामाष्टमोऽध्यायः ॥

अथ हस्तलक्षणं नाम नवमोऽध्यायः ।

हेतुः समस्तवास्तूनामाधारः सर्वकर्मणाम् ।
मानोन्मानविभागादिनिर्णयैकनिबन्धनम् ॥ १ ॥
परिध्युदयविस्तारदैर्घ्याणां स्युरमी यतः ।
ज्येष्ठमध्याधमा भेदा यं च ज्ञात्वा न मुह्यति ॥ २ ॥
इदानीं तस्य हस्तस्य सम्यङ् निश्चयसंयुतम् ।
कथ्यते त्रिविधस्यापि लक्षणं शास्त्रदर्शितम् ॥ ३ ॥
रेण्वष्टकेन वालाग्रं लिक्षा स्यादष्टभिस्तु तैः ।
भवेद् यूकाष्टभिस्ताभिर्यवमध्यं तदष्टकात् ॥ ४ ॥

---

१. 'दागतेभ्यः स्यात्', २. 'विवि' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अष्टाभिः सप्तभिः षड्भिरङ्गुलानि यवोदरैः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि तच्चतुर्विंशतिः करः ॥ ५ ॥

सोऽष्टभिः पर्वभिर्युक्तः करः कार्यो विजानता ।
करस्यार्धं चतुःपर्व शेषं स्याद् भक्तमङ्गुलैः ॥ ६ ॥

तत्राग्रे पर्वरेखाः स्युस्तिस्रः पुष्पकभूषिताः ।
शेषास्वङ्गुलरेखासु पुष्पाणि विदधीत न ॥ ७ ॥

अत्रार्धे मध्यतः कार्यं द्वेधा पञ्चममङ्गुलम् ।
मध्यं त्रिधाष्टमं कार्यं चतुर्धा द्वादशं ततः ॥ ८ ॥

हस्तः स्वाङ्गुलमानेन विधेयाङ्गुल(मि?इ)ष्यते ।
तत्सार्धं द्विगुणं वापि बाहुल्यं तु तदर्धतः ॥ ९ ॥

कथितः करभेदोऽयमङ्गुलानां विभेदतः ।
तस्य निर्माणदारूणि देवताश्च प्रचक्ष्महे ॥ १० ॥

खदिराञ्जनवंशादि श्लक्ष्णं हीरं मनोरमम् ।
सारवच्च भवेदिष्टं दारु हस्तप्रकल्पने ॥ ११ ॥

ग्रन्थिलं लघु निर्दग्धं जीर्णं विस्फुटितं तथा ।
अदृढं कोटराक्रान्तं दारु हस्ताय नेष्यते ॥ १२ ॥

त्रिविधस्याप्यथैतस्य पर्वरेखासु देवताः ।
† मध्यादारभ्य विज्ञेयाः क्रमेण नव वच्मि ताः ॥ १३ ॥

* ब्रह्मा वह्निर्यमो विश्वकर्मा नाथश्च पाथसाम् ।
वायुर्धनाधिपो रुद्रो विष्णुश्चाग्रे जगत्पतिः ॥ १४ ॥

वास्तुद्रव्यविभागेषु यानेषु च विशेषतः ।
प्रारभेत यतो मानं कल्पयेद् देवतास्ततः ॥ १५ ॥

---

१. 'ध्यात्' ख. ग. पाठः ।

---

† 'मध्यपर्वत एकस्मिन् पार्श्वगणनया प्रान्तसंयुक्तानि चत्वारि पर्वाणि भवन्ति । मध्यादेव परस्मिन् पार्श्वे समध्यमपर्वत्वात् पञ्च भवन्ति' ।

* 'मध्ये ब्रह्मा । ततो वामे पर्वणि वह्निः दक्षिणे पर्वणि यमः, पुनर्वामे विश्वकर्मा दक्षिणे वरुणः, पुनर्वामे वायुः दक्षिणे धनदः, पुनर्वामे रुद्रो दक्षिणे विष्णुः । ततस्तु क्रमेण गणनायां रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा वह्निर्विधाता कालस्तोयेशः कुबेरो विष्णुरिति पर्वदेवता भवन्ति' इति टिप्पणमिह दत्तमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

विद्धैश्च द्रव्यमध्यैश्च देवताभिश्च [1]पीडिते ।
प्रत्येकं त्रिदशस्थाने यथोक्तं फलमादिशेत् ॥ १६ ॥
शिरोऽर्त्तिरनलप्रोगो मरणं स्थपतेर्वधः ।
अतिसारो मरुद्व्याधिरर्थभ्रंशो भयं नृपात् ॥ १७ ॥
कुलपीडा च महती कर्तु[2]कारकयोरिति ।
यथाक्रममी दोषा ब्रह्मादीनां निपीडनात् ॥ १८ ॥
ब्रह्मानलकयोर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ।
कर्मस्वधिगतस्तेषां पुरकारो भविष्यति ॥ १९ ॥
कर्मणः सुष्ठुनिष्पत्ति(स्तिष्ठतेभोगःस्थपतेर्भोग्य)मक्षयम् ।
ब्रह्मा यमस्तयोर्मध्ये यदा हस्तं तु धारयेत् ॥ २० ॥
कर्ता सशिल्पिकश्चैव(अ?न)चिरेण विनश्यति ।
विश्वानलकयोर्मध्ये हस्तसूत्रं यदा धृतम् ॥ २१ ॥
सु(शु)कर्मणि मध्यान्तं निष्पन्ने पुरवृद्धिता ।
यमजलदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥
पवनो विश्वकर्मा चोभयोर्मध्ये च धारणम् ।
यदा तु तत्र कर्मान्तं शुभं तत्सर्वकामदम् ॥ २३ ॥
नीरधनदयोर्मध्ये मध्यमं च विनिर्दिशेत् ।
एषां मध्ये यदा वस्त्रहस्तं तत्र यदा धृतम् (?) ॥ २४ ॥
अनावृष्टिभयं लोके देशभङ्गो न संशयः ।
रुद्रपवनयोर्मध्ये रुचिहस्तं तु धारयेत् ॥ २५ ॥
तत्र लक्ष्मीवतस्तस्य कार्यसिद्धिर्न संशयः ।
विष्णुधनदयोर्मध्ये यदा पाणिकराग्रतः ॥ २६ ॥
विविधास्तत्र भोगाश्च संजायन्ते नरस्य हि ।
ज्येष्ठादीनामथैतेषां संज्ञाभेदो विधीयते ॥ २७ ॥
यच्च येन भवेद् द्रव्यं मेयं तदपि कीर्त्यते ।
यवाष्टकाङ्गुलैः क्लृप्तः प्रकर्षेणायतः किल ॥ २८ ॥

---

१. 'पीडितैः ।' ख. ग. पाठः । २. 'रोप ।' क. ख. पाठः । ३. 'कार', ४. 'सुमतिर्म-णिमध्यन्तं', ५. 'रयेत्' ६. 'शुभान्तं सर्वं' ७. 'राग्रतः' ख. ग. पाठः । ८. 'सदा चैतस्य संभवेत्' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ज्येष्ठो हस्तः स विद्वद्भिः प्रोक्तः प्राशयसंज्ञितः ।
यः पुनः कल्पितः सप्तयवक्लृप्तैरिहाङ्गुलैः ॥ २९ ॥

तज्ज्ञैः स मध्यमो हस्तः साधारण इति स्मृतः ।
मात्रेत्यलं यतः प्रोक्तं हस्तश्च शम उच्यते ॥ ३० ॥

तेन मात्राशयः स स्याद्धस्तो यः पञ्चयवाङ्गुलः ।
विभागायामविस्ताराः खेटग्रामपुरादिषु ॥ ३१ ॥

प्रासादवेश्मपरिखाद्वाररथ्याम्भभित्तिषु ।
मार्गाश्च निर्गम(वे?वे)शौ सीमाक्षेत्रान्तराणि च ॥ ३२ ॥

वनोपवनभागाश्च देशान्तरविभक्तयः ।
योजनक्रोशगव्यूतिप्रमाणमपि चाध्वनः ॥ ३३ ॥

प्राशयेन प्रमातव्याः खातकूपजलाशयः ।
तलोच्छ्रयान् मूलपादान् जलोद्देशानधः क्षितेः ॥ ३४ ॥

तथा दोलाम्बुशस्त्रादि पातालानिलनिर्णयम् ।
शैलखातनिकेतानि सुरङ्गामानमन्तरम् ॥ ३५ ॥

साधारणेन वाह्याध्वमानं च परिकल्पयेत् ।
आयुधानि धनुर्दण्डान् यानं शयनमासनम् ॥ ३६ ॥

प्रमाणं कूपवापीनां गजानां वाजिनां नृणाम् ।
अरघट्टेक्षुयन्त्राणि युगयूपहलानि च ॥ ३७ ॥

शिल्प्युपस्करनौछत्रध्वजातोद्यानि यानि च ।
वृसीधर्मोपकरणस्थानासनादिकं च यत् ॥ ३८ ॥

नल्वदण्डांस्तथा मात्राशयहस्तेन मापयेत् ।
भेदत्रयान्वितमपि प्रोक्तं हस्तस्य लक्षणम् ॥ ३९ ॥

संज्ञाभेदोऽथ सामान्यमानानां प्रतिपाद्यते ।
स्यादेकमङ्गुलं मात्रा कला प्रोक्ताङ्गुलद्वयम् ॥ ४० ॥

पर्व त्रीण्यङ्गुलान्याहुर्मुष्टिः स्याच्चतुरङ्गुला ।
तलं स्यात् पञ्चभिः षड्भिः करपादाङ्गुलैर्भवेत् ॥ ४१ ॥

---

१. 'तयामानानि', २. 'तनिवेतानि' ख. ग. पाठः । ३. 'धार्ह्यं च मा' क. पाठः । ४. 'कीर्तयेत्' ख. ग. पाठः । ५. 'मल्लद' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सप्तभि(र्दृ? र्दि)ष्टिरष्टाभिरङ्गुलैस्तूणिरिष्यते ।
प्रादेशो नवभिस्तैः स्याच्छयतालो दशाङ्गुलः ॥ ४२ ॥
गोकर्ण एकादशभिर्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला ।
चतुर्दशभिरुद्दिष्टः पादो नाम तथाङ्गुलैः ॥ ४३ ॥
रत्निः स्यादेकविंशत्या स्यादरत्निः करोन्मितः ।
द्वाचत्वारिंशता किष्कुरङ्गुलैः परिकीर्त्तितः ॥ ४४ ॥
चतुरुत्तरयाशीत्या व्यामः स्यात् पुरुषस्तथा ।
षण्णवत्याङ्गुलैश्चापं भवेन्नाडीयुगं तथा ॥ ४५ ॥
शतं षडुत्तरं दण्डो नल्वस्त्रिंशद्धनुर्मितः ।
क्रोशो धनुःसहस्रं तु गव्यूतं तद्द्वयं विदुः ॥ ४६ ॥
चतुर्गव्यूतमिच्छन्ति योजनं मानवेदिनः ॥
एकं दश शतमस्मात् सहस्रमनु चायुतम् ॥ ४७ ॥
नियुतं प्रयुतं तस्मादर्बुदन्यर्बुदे अपि ।
वृन्दखर्वनिखर्वाणि शङ्कुपद्माम्बुराशयः ॥ ४८ ॥
ततः स्यान्मध्यमन्त्यं च परं चापरमप्यतः ।
परार्धं चेति विज्ञेयं दशवृद्ध्योत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥
सङ्ख्यास्थानानि कथितान्येवमेतानि विंशतिः ।
इदानीं कालसङ्ख्यायाः प्रमाणमभिधीयते ॥ ५० ॥
दृङ्निमेषो निमेषः स्यात् तैः पञ्चदशभिः स्मृता ।
काष्ठा ताभिः कला ताभिर्मुहूर्तस्तैरहर्निशम् ॥ ५१ ॥
त्रिंशतैतत् त्रिकं विद्यात् क्रमादित्युत्तरोत्तरम् ।
अहोरात्रैः पुनः पञ्चदशभिः पक्ष उच्यते ॥ ५२ ॥
पक्षद्वयेन मासः स्याद् भवेन्मासद्वयादृतुः ।
ऋतुत्रयं स्यादयनं वत्सरस्त्वयनद्वयम् ॥ ५३ ॥
दशधायमिति प्रोक्तः कालः कालविदां वरैः ।
इत्युक्तमेतदखिलं करमानमत्र सम्यक्तया निगदितापि च कालसङ्ख्या ।
अन्तःपुरं जनपदामरधाममार्गैराचक्ष्महे नगरसंप्रविभागमत्र ॥ ५४$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
हस्तलक्षणं नाम नवमोऽध्यायः ॥

---

१. 'व्यूतित', २. 'ति' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ पुरनिवेशो दशमोऽध्यायः ।

पुरस्य त्रिविधस्यापि प्रमाणमथ कथ्यते ।
प्राकारपरिखाट्टालद्वाररथ्याध्वभिः सह ॥ १ ॥

ज्येष्ठं तत्र चतुश्चापसहस्रं पुरमिष्यते ।
मध्यं द्वाभ्यां सहस्राभ्यामेकेन व्यासतोऽधमम् ॥ २ ॥

साष्टमांशं सपादं वा सार्धं वा व्यासमायतम् ।
कुर्यादेकैकमायामं चतुर(स्री?श्री)कृतं शुभम् ॥ ३ ॥

चतुःषष्टिपदाख्येन पुरं सर्वं प्रकल्पयेत् ।
द्विरष्टकोष्ठं तत् कुर्यात् षट्पथं नवचत्वरम् ॥ ४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे प्रागुदीच्यन्तमागताः ।
चतुर्भागान्तरा वंशाः कार्यास्तस्य त्रयस्त्रयः ॥ ५ ॥

वंशषट्कविभक्तेऽस्मिन् पदषोडशकान्विते ।
राजमार्गः शुभः कार्यो मध्यमं वंशमाश्रितः ॥ ६ ॥

कार्यो ज्यायसि (च) ज्यायांश्चतुर्विंशतिकः करैः ।
विंशत्या मध्यमे मध्योऽधमे षोडशकोऽधमः ॥ ७ ॥

बलस्य चतुरङ्गस्य पौराणां पार्थिवस्य च ।
असम्बाधसमश्चैष कार्योऽयं काश्मशर्करः ॥ ८ ॥

महारथ्याद्वयं कार्यं तदुपान्तस्थवंशयोः ।
तद् द्वादश दशाष्टौ स्यात् करान् ज्येष्ठादिकं त्रिषु ॥ ९ ॥

पदमध्यगतं कार्यं यानमार्गचतुष्टयम् ।
ज्येष्ठादिषु पुरेष्वेषु तत्पद्यं च चतुःकरम् ॥ १० ॥

उपरथ्या महामार्गस्यार्धं वा द्विशयाधिकम् ।
शेषा रथ्यास्तदर्धेन विधातव्याः प्रमाणतः ॥ ११ ॥

यानमार्गचतुष्कस्य कार्यौ पार्श्वद्वयाश्रितौ ।
पदाष्टकपदान्तस्थौ द्वौ द्वौ जङ्घापथावपि ॥ १२ ॥

---

१. 'भासास्थं च' ग. पाठः । २. 'शतिभिः क' पाठः । ३. 'चतुःप्रान्त',
४. 'स्यार्धस्यादिसया' ख ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पुरे ज्येष्ठे त्रिहस्तौ तौ मध्यमेऽर्धकरोज्झितौ ।
मध्यमादर्धहस्तेन हीनौ स्यातां कनीयसि ॥ १३ ॥

पुरस्यान्तर्गतौ कार्यौ घण्टामार्गौ तथापरौ ।
राजमार्गगुणोपेतौ प्रमाणेन च तद्विधौ ॥ १४ ॥

प्राक्प्रत्यगायताः [illegible] मार्गा [illegible]रिताः ।
याम्योत्तरायतास्तद्वदन्ये स्युस्तत्प्रमाणतः ॥ १५ ॥

घण्टामार्गप्रमाणेन घण्टामार्गस्य बाह्यतः ।
समन्ततो वप्रभुवं स्थापयेद् [illegible]मार्गवित् ॥ १६ ॥

महारथ्याप्रमाणेन तद्भूर्वाथ द्विहस्ततः ।
[1]व्यासखातान्तरैः सार्धं विधेयं परिखात्रयम् ॥ १७ ॥

खातोत्पादोज्झितं कार्यं [illegible] ।
व्यासतः स्याद् [illegible] तत् ॥ १८ ॥

कुर्याद् वप्रं स्वभूभागे परिखोत्खातया मृदा ।
सोत्सङ्गं गजपृष्ठं वा [illegible]ताडितम्* ॥ १९ ॥

खातोद्वृत्त[illegible] [illegible] ततः ।
भूप्रदेशान् पुरा निम्नानापूर्य समतां नयेत् ॥ २० ॥

एवं संशोध्य परिखात्रितयं परितोऽश्मभिः ।
विधेयमिष्टकाभिर्वा सम्यग्बद्धतलं स्थिरम् ॥ २१ ॥

सिरावारिभिरापूर्णं पूर्णं [illegible]म्भसा ।
विचित्राब्जमनोहारि § ससंग्राहाम्बुनिर्गमम् ॥ २२ ॥

सर्वपार्श्वेष्वथैतस्य गन्धान्धमधुपाङ्गनान् ।
सुमनोविटपारामान् कुर्याद् बालान् सगुल्मकान् ॥ २३ ॥

बाह्यभागं पुनस्तस्य विदध्यात् सर्वतो[illegible]म् ।
द्रुममूलैर्लताजालैः कण्टकैरपि संकटम् ॥ २४ ॥

---

१. 'नवत्' ख. पाठ. । २. '[illegible]' ख. ग. पाठः । ३. 'गोत्रीय' क. पाठः ४. 'तलस्थितम्' ख. ग पाठः । ५. '[illegible]कण्ठकान्' (?) क. पाठः ।

---

* गोत्रीयपदताडितं गोत्रा गोसमूहः तदीयैः पदैस्ताडितं प्रहतम् ।

§ 'सग्राहं साम्बुनिर्गमम्' इति पादः पाठ्यः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वप्रोर्ध्वभागगं मध्यं स्थूलोपलशिलाचितम् ।
कुर्यात् प्राकारमुद्दामं यद्वा पक्वेष्टकामयम् ॥ २५ ॥
ज्यायान् करैर्द्वादशभिर्दशभिर्मध्यमः स्थितः ।
कनीयानष्टभिर्हस्तैर्विस्तारैः स्यात् त्रिधेत्यसौ ॥ २६ ॥
उच्छ्रायः सप्तदशभिः करैर्ज्यायान् प्रशस्यते ।
मध्यमः पञ्चदशभिस्त्रयोदशभिरन्तिमः ॥ २७ ॥
ऊर्ध्वं न सप्तदशकान्न त्रयोदशकादधः ।
प्राकारोच्छ्रयमिच्छन्ति नापि युग्मकरोन्मितम् ॥ २८ ॥
हस्तेहस्तेऽङ्गुलद्वन्द्वमायतः सम्यगुच्छ्रयात् ।
यस्य वा द्वादशकरा मूले भवति विस्तृतिः ॥ २९ ॥
चतु(रस्रो?र्हस्तो)च्छ्रितिस्तस्य शिरः स्याद् दशविस्तृतम् ।
हस्तोच्चं कपिशीर्षं स्याद् द्विहस्ता काण्डवारिणी ॥ ३० ॥
कार्याः कर्णाश्रितैर्द्वारकर्णान्तस्थैश्च संयुताः ।
प्राकारेऽट्टालकास्तस्मिन् दिक्षुदिक्षु चतुर्दिशम् ॥ ३१ ॥
द्विभौमांश्चरिकोर्ध्वं च प्राकारोच्छ्रायविस्तृतीन् ।
तदर्धं निर्गमान् कुर्यात् ससालाट्टालकानथ ॥ ३२ ॥
शतं शतं स्याद्धस्तानां मिथश्चाट्टालकान्तरम् ।
इत्थं पुरमगम्यं स्यात् पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥ ३३ ॥
चरिकां संचरद्वारां सुखारोहां सवेदिकाम् ।
ससोपानां सनिर्यूहां कुर्यात् सकपिशीर्षकाम् ॥ ३४ ॥
राजमार्गमहारथ्यासंश्रितानि चतुर्दिशम् ।
त्रीणि त्रीणि विधेयानि पुरे द्वाराणि तद्विदा ॥ ३५ ॥
राजमार्गमहाद्वारचतुष्कं विस्तरान्नव ।
अष्टौ सप्त करानोर्व्या द्विगुणं त्रिकरोज्झितम्(?) ॥ ३६ ॥
महारथ्याश्रयं द्वारं तत् षट्पञ्चचतुष्करम् ।
उच्छ्रयात् सार्धसार्धैकहस्तोनं विस्तरेण तत् ॥ ३७ ॥

---

१. 'ज्येष्ठः क' क. पाठः । २. 'रात् स्यात्,' ३. 'हस्ता', ४. 'करोष्ठितम्' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कुर्यात् प्रतोलीः सर्वेषु महाद्वारेष्वथो दृढाः ।
दृढार्गलाश्चेन्द्रकीलाः कपाटपरिघान्विताः ॥ ३८ ॥
राजमार्गसमा शाला स्यात् प्रतोलीविनिर्गमा ।
तदर्धं कोष्ठकान्तः स्याद् व्यासोऽध्यर्धं तयोः स्मृतः ॥ ३९ ॥
चतुरश्रामिति न्यस्य प्रतोलीं वदनायताम् ।
व्यासतस्त्र्यंशविन्यस्तभागां भूपाद्वयान्विताम् ॥ ४० ॥
अन्तर्भित्तौ चतुर्द्वारं महाद्वारेण सम्मितम् ।
विकल्पकोष्ठकान्तेषु दारुभिस्तद् विभूषयेत् ॥ ४१ ॥
द्वारे चोभयतःशाले द्वे द्वे द्वारे च भूपयोः ।
ते कार्ये सम्मुखे व्यासाद् द्विकरे द्विगुणोच्छ्रिते ॥ ४२ ॥
(ष?त)दारुभूपयोः पट्टमध्यं पञ्चकरोच्छ्रितम् ।
तद्वत् कार्या द्वितीया भूद्वाःशेषोदयोच्छ्रिता ॥ ४३ ॥
बहिर्द्वारविनिर्मुक्तां पूर्ववत् तां प्रकल्पयेत् ।
पुरःसंरोधनसद्वैर्गवाक्षैश्चप्रतो युताम् ॥ ४४ ॥
तलं ततो महाद्वारस्योर्ध्वे बद्ध्वा तृतीयकम् ।
रोधनद्वारयुग्हर्म्यसंयुक्तं सपरिक्रमम् ॥ ४५ ॥
सन्न्यस्तस्तम्भवेद्यन्यदूर्ध्वं तस्योपकल्पयेत् ।
व्यालजालशतघ्न्यस्त्रशस्त्रयन्त्रादिभिर्युतम् ॥ ४६ ॥
वृद्धिशोभाभिगुप्त्यर्थं पुरस्य प्रविकल्पयेत् ।
बृहद्द्वाराणि परितस्त्रितलाभिः प्रतोलिभिः ॥ ४७ ॥
प्रतोल्या दक्षिणाद् भागादुच्छ्रितो वामतो गतः ।
यावद् द्वितीयं तत्पार्श्वमेकः कार्यो बहिः स्थितः ॥ ४८ ॥
द्वितीयो वामभागात् तु निर्गत्यास्यैव वेष्टकः ।
कार्यः स्याद्वा तदुत्थानात् प्राकारस्तस्य बाह्यतः ॥ ४९ ॥
एतयोरन्तराले च राजमार्गेण सम्मितम् ।
कर्तव्यं स्यादिहैवं तु वक्त्रद्वारकमुत्तमम् ॥ ५० ॥

---

१. 'मः' ख. ग. पाठः । २. 'मः'क, 'मात्' ख. पाठः । ३. 'सोवृद्धंत' ख. पाठः । ४. 'न्ते यद् दा' ख. ग. पाठः । ५. 'तु मू', ६. 'वक्षाका' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

दृष्ट्वा दृष्टोपभोगार्हान् सरिद्गिरिजलाशयान् ।
पक्षद्वाराणि कुर्वीत स्वेच्छया तत्र तत्र च ॥ ५१ ॥

जलभ्रमान् पुरे कुर्याच्छिलादारुतिरोहितान् ।
द्विकरान् करमात्रान् वा साम्भसोऽस्मिन् प्रदक्षिणान् ॥ ५२ ॥

छिन्नकर्णं विकर्णं च वज्रं सूचीमुखं तथा ।
वर्तुलं व्यजनाकारं चापाकृतिधरं च यत् ॥ ५३ ॥

शकटद्विसमं यच्च विस्ताराद् द्विगुणायतम् ।
विदिक्स्थं सर्पचक्रं च तत् पुरं निन्दितं भवेत् ॥ ५४ ॥

छिन्नकर्णे वसँल्लोकः पुरे तस्करतो भयम् ।
व्याधिभ्यो वापरेभ्यो वा प्राप्नोतीति विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥

विद्विष्टस्वामिता सर्वलोकगर्हानपत्यता ।
जायते स्वल्पमायुष्यं विकर्णपुरवासिनाम् ॥ ५६ ॥

स्त्रीजयं विषरोगांश्च भेदांश्च विविधांस्तथा ।
जनो वसन्नवाप्नोति वज्राकृतिधरे पुरे ॥ ५७ ॥

व्रजन्ति प्राणिनो नाशं क्षुद्व्याधिपरिपीडिताः ।
निवसन्तः सदा सूचीमुखाकारधरे पुरे ॥ ५८ ॥

स्वामिना सह हीयन्ते सर्वतः सश्रयोज्झिताः ।
स्वल्पायुषश्च जायन्ते जना वृत्तपुराश्रयाः ॥ ५९ ॥

असत्यवादिनः स्वल्पायुषः पवनपीडिताः ।
जनाः स्युश्चलचित्ताश्च नगरे व्यजनाकृतौ ॥ ६० ॥

दुश्चरित्राङ्गनायुक्तस्तथा बहुनपुंसकः ।
चापाकारे पुरे लोको निवसन् भवति ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

रोगशोकानलस्तेनभयं तत्र प्रजायते ।
शकटद्विसमाकारं पुरं यद् विनिवेश्यते ॥ ६२ ॥

आरम्भासिद्धिदं विप्रभयदं ज्ञातिभेदकृत् ।
पौराणां स्वामिनश्च स्याद् गजवाजिक्षयावहम् ॥ ६३ ॥

---

१. 'विस्तराद् द्विगुणायतः ।' (?) क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

परैराक्रम्य भुज्येत तत् पुरं बलशालिभिः ।
द्विगुणायतसंस्थानं यत् क्वचिद् विनिवेश्यते ॥ ६४ ॥

जनक्षयोऽग्निदाहश्च स्त्रीकृतानि भयानि च ।
पुरे भवति दिङ्मूढे न च निर्योगमेति तत् ॥ ६५ ॥

शस्त्रानिलपिशाचाग्निभूतयक्षभयार्दिताः ।
रुक्पीडिताश्च नश्यन्ति भुजङ्गकुटिले जनाः ॥ ६६ ॥

पुराणामप्रशस्तानि संस्थानानीदृशानि यत् ।
एकस्मिन्नपि तेनैषां न पुरं विनिवेशयेत् ॥ ६७ ॥

संस्थानमेकमप्येषां प्रमादात् क्रियते यदि ।
तदा राष्ट्रं निपीड्येत क्षुद्द्विषद्भीतिमृत्युभिः ॥ ६८ ॥

शास्त्रज्ञः स्थपतिस्तस्मात् प्रयत्नपरया धिया ।
यथावत् कथितं चारु नगरं विनिवेशयेत् ॥ ६९ ॥

वेदीनिवेशयात्रायां देवागाराभिचारयोः ।
नदीकर्मणि मैत्रे च शान्तिं कुर्याच्छ्रमेषु च ॥ ७० ॥

यज्ञे पुरनिवेशे च स्थापने प्रयतः सुधीः ।
कुर्यात् तथाभ्युदयिकं यद्वान्यदपि किञ्चन ॥ ७१ ॥

पुरे भीतिकरं शश्वदनायुष्यमपौष्टिकम् ।
कृतमप्रयतैः कर्म नृपतिघ्नं च जायते ॥ ७२ ॥

विहितं यदशास्त्रज्ञैर्यच्च निर्लक्षणैः कृतम् ।
कृतमप्रयतैर्यच्च तदशस्तं फलोज्झितम् ॥ ७३ ॥

शास्त्रज्ञः स्थपतिर्ज्योतिर्विदा तद्वत् पुरोधसा ।
अधिष्ठितः पुरे कर्म विदध्याच्छान्तिकेषु च ॥ ७४ ॥

पुरोहितोऽग्निं जुहुयाद् दद्यान्मौहूर्त्तिकः स्थिरम् ।
स्थपतिश्च बलिं दद्याद् योजयेदिति शान्तिकम् ॥ ७५ ॥

तदा तस्मिन् पुरे शान्तिर्यत्र मर्मस्थिताः सुराः ।
पूज्यन्ते सततं पौरैश्चत्वरस्थायिनस्तथा ॥ ७६ ॥

---

१. 'सस्वामिनः पि', २. 'रुक्पीडाभिश्च' ख. ग. पाठः । ३. 'चात्र न' क. पाठः । ४. 'यां वेदागा' ग. पाठः । ५. 'यतैः कर्म त' क. पाठः । ६. 'तम्' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चतुःप्रकारं स्थापत्यमष्टधा च चिकित्सितम् ।
धनुर्वेदश्च सप्ताङ्गो ज्योतिषं कमलालयात् ॥ ७७ ॥

सामान्यलक्षणोत्पातनिमित्तानि च सर्वशः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्यजन्त्येते न तत् पुरम् ॥ ७८ ॥

नगरस्य विभागोऽयं यथावत् समुदीरितः ।
खेटं तदर्धविष्कम्भमाहुर्ग्रामं तदर्धतः ॥ ७९ ॥

योजनेन पुरात् खेटं खेटाद् ग्रामं प्रचक्षते ।
गव्यूतिपरिमाणेन ग्रामाद् ग्रामं प्रचक्षते ॥ ८० ॥

द्विक्रोशाद् विषये सीमा तदर्धेन पुरस्य सा ।
खेटके पुरसीमार्धं ग्रामे खेटार्धतः स्मृता ॥ ८१ ॥

त्रिंशद्धनूंषि विष्कम्भः पुरे दिग्वर्त्मसु स्मृतः ।
विंशतिः खेटके मार्गो ग्रामे दश च दर्शितः ॥ ८२ ॥

नव ग्रामसहस्राणि नवति(श्च?श्व) प्रचक्षते ।
चतुःषष्टिमपि ग्रामान् ज्यायो राष्ट्रं विदुर्बुधाः ॥ ८३ ॥

देशार्धं च सहस्राणि ग्रामाणां त्रिशती तथा ।
ग्रामाश्चतुरशीतिश्च मध्यमं राष्ट्रमीरितम् ॥ ८४ ॥

सहस्रमेकं ग्रामाणां तद्वच्च शतपञ्चकम् ।
ऊना च ग्रामपञ्चाशत् कनीयो राष्ट्रमुच्यते ॥ ८५ ॥

अध्यर्धसङ्ख्ययैतेषां ज्येष्ठमध्यकनीयसाम् ।
विधाय नवधैकैकं विभजेद् विधिवत् सुधीः ॥ ८६ ॥

राष्ट्रेष्वेवं विभक्तेषु यथाभागं विधानवित् ।
निवेशयेत् पुराण्येषु सप्त सप्त यथागमम् ॥ ८७ ॥

विभागश्च प्रमाणं च लक्षणं चादिमस्य यत् ।
जातिवर्णाधिवासश्च यथावत् तदिहोच्यते ॥ ८८ ॥

सुवर्णकारानाग्नेय्यां तथा वह्न्युपजीविनः ।
निवेशयेत् कर्मकरानन्यानपि विधानवित् ॥ ८९ ॥

१. 'तत्र ग्रा', २. 'दश द्वे च', ३. 'न्यूनाच ग्रा' ख. ग. पाठः । ४. 'क्रम' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वैश्यानामक्षधूर्तानां चक्रिकाणां च दक्षिणे ।
नटानां नर्त्तकानां च गृहाणि विनिवेशयेत् ॥ ९० ॥

निवेशयेत् सौकरिकान् मे(थी?षी)कारान् मृगच्छिदः ।
कैवर्तान् नैर्ऋताशायां दमनाधिकृतांस्तथा ॥ ९१ ॥

रथेषु कौशलं येषां येषां स्यादायुधेषु च ।
वारुण्यां दिशि तान् सर्वान् पुरस्य विनिवेशयेत् ॥ ९२ ॥

कर्मस्वधिकृता ये च ये चापि परिकर्मिणः ।
शौण्डिका ये च तान् सर्वान् वायोर्दिशि निवेशयेत् ॥ ९३ ॥

यतीनामाश्रयान् ब्रह्मवत्सानां च तथा सभाम् ।
प्रपाश्च पुण्यशालाश्च कुर्याद् दिशि धनेशितुः ॥ ९४ ॥

घृतविक्रयिणो ये च फलविक्रयिणश्च ये ।
निवेशिताः प्रशस्यन्ते पुरस्येशानदिग्गताः ॥ ९५ ॥

पूर्वभागे बलाध्यक्षान् राज्ञो मुख्यांस्तथा बले ।
निवेशयेत् तथाग्नेय्यां बलं नानाविधं सुधीः ॥ ९६ ॥

श्रेष्ठिनो दक्षिणाशायां तथा देशमहत्तरान् ।
याम्येकहारान्(१) कुर्वीत तथा ककुभि निर्ऋतेः ॥ ९७ ॥

कोशपालमहामात्यादेशिकान् कारुकानपि ।
नियामकांश्च कुर्वीत सलिलाधिपतेर्दिशि ॥ ९८ ॥

वायोः ककुभि कुर्वीत दण्डनाथान् सनायकान् ।
पुरोहितज्योतिषिकानुत्तरस्यां निवेशयेत् ॥ ९९ ॥

विप्राः सौम्यां दिशो भागे क्षत्रियाः शक्रदिग्गताः ।
वैश्यशूद्रास्तु कर्तव्या दक्षिणापरयोः क्रमात् ॥ १०० ॥

निधेया वणिजो वैद्या मुख्याश्चापि चतुर्दिशम् ।
चतुर्दिशं विशेषेण स्थापयीत बलानि च ॥ १०१ ॥

नगरस्य बहिः प्राच्यां लिङ्गस्थान् विनिवेशयेत् ।
श्मशानानि तथा तत्स्थान् याम्यायां स्थपतिः सुधीः ॥ १०२ ॥

---

१. 'म्य' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सर्वतोदिशमुद्दिष्टो विभागो नगरे यथा।
तथा ग्रामेषु खेटेषु सेनायाश्च निवेशने ॥ १०३ ॥

नगराभिमुखौ कार्यौ संपूर्णाङ्ग[1]महोदयौ।
द्वारे द्वारे सौम्यमुखौ लक्ष्मीवैश्रवणौ शुभौ ॥ १०४ ॥

राष्ट्रं खेटमथ ग्रामं § पश्यन्[2]तेतपुरं महत् (?)।
तत्रारोग्यार्थसंसिद्धी प्रजाविजयमादिशेत् ॥ १०५ ॥

क्लेशबन्धवधैर्लोकाः स्युर्मिथः सूत्रहिंसकाः।
ग्रामं खेटं पुरं राष्ट्रं यदेतौ नैव पश्यतः ॥ १०६ ॥

स्थाप्यन्ते ये यथा देवा नगरे सर्वतोदिशम्।
बाह्यान्तरासु भूमीषु ब्रूमहे तानतःपरम् ॥ १०७ ॥

चतुर्दिशं समारभ्य प्राकारपरिखान्ततः।
बहिः शते शते सार्धे धनुषां द्विशतेऽपि च ॥ १०८ ॥

धनुःशतमितैः शुद्धैरनिन्द्यैर्धरणीतलैः।
स्वस्वप्रासादयुक्तानि स्वस्वानुगगृहैः सह ॥ १०९ ॥

निवेशनानि कुर्वीत त्रिदशानां यथाक्रमम्।
नगराभिमुखं चित्रवनभाञ्जि शुभानि च ॥ ११० ॥

याम्योत्तरायतं वंशं विकल्पपुरमध्यगम्।
बहिरन्तश्च कुर्वीत देवानां त्रिनिवेशनम् ॥ १११ ॥

प्राच्यां प्रत्यङ्मुखान् कुर्यात् प्राङ्मुखांश्चाम्बुभृद्दिशि।
याम्योदक्पार्श्वयोस्तस्य [3]प्रादक्षिण्येन वंशगान् ॥ ११२ ॥

दक्षिणस्यां न कुर्वीत त्रिदशानप्युदङ्मुखान्।
चैत्यशान्तिसभा यक्षमातृ[4]प्रथमयान्विताः(?) * ॥ ११३ ॥

इत्यमी कथिताः सम्यग् ये यथादिङ्मुखाः सुराः।
दिक्षु दिक्षु बहिर्ये स्युस्तानिदानीं प्रचक्ष्महे ॥ ११४ ॥

१, 'सहोदरौ।', २. 'श्यन्त्येते पु', ३. 'प्राग्द' ख. पाठः। ४. 'प्रमथया क. पाठः।

---

§ 'पश्यतस्तौ पुरं च यत्' इति पठनीयं भाति।

* 'प्रमथपान्विताः' इति पठनीयं भाति।

"Aho Shrut Gyanam"

विष्णोर्दिनाधिनाथस्य सहस्रनयनस्य च ।
धर्मस्य च विधातव्यं दिशि प्राच्यां निकेतनम् ॥ ११५ ॥
सनत्कुमारसावित्र्योर्मरुतां मारुतस्य च ।
पूर्वदक्षिणदिग्भागे विदधीत निकेतनम् ॥ ११६ ॥
गणेशमातृभूतानां याम्ये प्रेतपतेर्गृहम् ।
भद्रकाल्याः पितॄणां स्याद् वेश्म चैत्यं च नैर्ऋते ॥ ११७ ॥
सागरस्य नदीनां च शिल्पिभर्तुः प्रजापतेः ।
निलयं पश्चिमाशायां विदध्याद् वरुणस्य च ॥ ११८ ॥
फणिनां भवनं कार्यमपरोत्तरदिग्गतम् ।
शनैश्चरस्य चात्रैव कात्यायन्याश्च मन्दिरम् ॥ ११९ ॥
विशाखस्कन्दसोमानां तथा यक्षाधिपस्य च ।
पृथक्पृथग् विधातव्याः प्रासादाः सौम्यदिग्गताः । ॥ १२० ॥
जगद्गुरोर्महेशस्य श्रियो वह्नेश्च मन्दिरम् ।
पूर्वोत्तरस्यां ककुभि प्रविधेयं मनोरमम् ॥ १२१ ॥
नदीनामम्बुधीनां च समन्तान्नगरस्य च ।
कान्तारेष्वद्रिषु स्थानं सर्वत्रेष्टमुमापतेः ॥ १२२ ॥
निवेश्यन्ते स्वदिग्भागेष्वेवं यस्मिन् सुरोत्तमाः ।
सम्यक्समृद्धिमासाद्य चिरं नन्दति तत्पुरम् ॥ १२३ ॥
नगरस्य विदूरेऽपि ककुप्सु निखिलास्वपि ।
बाह्यतोऽभिमुखा देवाः शस्यन्ते न पराङ्मुखाः ॥ १२४ ॥
क्रियते यदि भूभागे वंशेन स पराङ्मुखः ।
विधिमेनं तदा तस्मिंस्तज्ज्ञः शास्त्रोक्तमाचरेत् ॥ १२५ ॥
तद्वेषवर्णभूषास्त्रवाहनैरन्वितं सुरम् ।
तद्भित्तौ प्रकटाकारं नगराभिमुखं लिखेत् ॥ १२६ ॥
वैकङ्कतशमीबिल्वैः क्षीरकण्टकिभिर्द्रुमैः ।
उदपानाग्न्यगारेषु स्यान्न दोषोऽन्तरास्थितैः । ॥ १२७ ॥
अर्चाश्रितेष्वयं प्रोक्तो विधिर्नालेख्यवर्तिषु ।
कर्तव्याः सर्वतोवक्त्रास्तस्मान्निखिलगताः सुराः ॥ १२८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

विधानं यद् यथा प्रोक्तं सुरधाम्नां पुराद् बहिः ।
तत् तथाभ्यन्तरेऽपि स्यात् कार्यं स्वस्वदिगाश्रयम् ॥ १२९ ॥

मध्ये पुरस्य कर्तव्यं गृहमम्भोजजन्मनः ।
निवेशनं तथेन्द्रस्य तथैव हलिकृष्णयोः ॥ १३० ॥

मातृयक्षगणाधीशान् शिवकान् भूतसङ्कान्[1] ।
विनापि वेश्मभिः कुर्यात् पुरे चत्वरमार्गगान् ॥ १३१ ॥

राज्ञा वर्णाश्रमकलापण्यशिल्पोपजीविनः ।
स्वदिक्पदस्थाः कर्तव्यास्ते देवाश्चेच्छता श्रियम् ॥ १३२ ॥

प्रासादे सति भक्तीच्छाशक्तियुक्तो यदापरम् ।
प्रासादं कारयेत् पूर्वं न तदा पीडयेत् सुधीः ॥ १३३ ॥

प्रतिवेश्म प्रतिग्रामं प्रतिदेवकुलं तथा ।
कुर्यात् प्रतिपुरं चापि न प्राङ्मानगुणाधिकम् ॥ १३४ ॥

पूर्वप्रासादतो रुद्रसोमयोर्ब्रह्मणोऽथवा ।
प्रासादे विहितेऽन्यस्मिन् भवेत् पीडाग्रजन्मनाम् ॥ १३५ ॥

कृते धाम्न्यधिकेऽन्यस्मिन् वह्नेर्वाचस्पतेरुत ।
पुरोधसां भयं विद्याद् ध्रुवं ज्योतिर्विदां तथा ॥ १३६ ।

धनाधिपामराधीशयमानां वरुणस्य वा ।
अधिके विहिते धाम्नि भयं विद्यान्महीपतेः ॥ १३७ ॥

स्कन्दधाम्नोऽधिकेऽन्यस्मिन् विहिते तस्य वेश्मनि ।
सेनापतेर्बलानां च पीडा सञ्जायते ध्रुवम् ॥ १३८ ॥

प्रजापतेरभ्यधिकं हरेर्वान्यत् कृतं गृहम् ।
कर्तुः कारयितुश्च स्याद् बन्धायै च विनष्टये ॥ १३९ ॥

गणेशयक्षफणिनामधिकोऽन्यः कृतो यदि ।
प्रासादः स्यात् तदा नित्यं सेनाङ्गानां महद्भयम् ॥ १४० ॥

स्त्रीनाम्न्यो देवतास्तासां पीड्यन्ते यदि वेश्मभिः ।
मुख्यानां पुरनारीणां तदा कुर्वन्त्युपद्रवम् ॥ १४१ ॥

1. 'संहकान्', 2. 'याथ वि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पूर्वामरेषु सर्वेषु पीडितेष्वमरालयैः ।
अन्यैस्तल्लिङ्गिनां पीडा चैत्यैर्वा चैत्यपीडितैः ॥ १४२ ॥

हीनाधिकप्रमाणेषु दुर्निविष्टेषु धामसु ।
कर्तुः कारयितुः पीडा स्यान्न पूजा तथास्य च ॥ १४३ ॥

नैवातिसंभृतं कुर्यात् स्वल्पमल्पामरालयम् ।
पुरं चानाश्रितं कुर्याद् वेधभागाश्रितं नच ॥ १४४ ॥

ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि नवषट्त्रिपदान्तरे ।
सुरवेश्मानि कुर्वीत दोषायापरथा पुनः ॥ १४५ ॥

कथितोऽयं विधिः स्वैः स्वैस्त्रिदशानां निवेशने ।
बहिर्निवेशनात् स्वेच्छं विदध्यादमरालयम् ॥ १४६ ॥

नगरेषु समग्रेषु ग्रामेषु निखिलेषु च ।
खेटकेषु च सर्वेषु सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥ १४७ ॥

इत्युक्त एष नगरोपगतः सुराणां
स्वस्वप्रभागविहितः पदसन्निवेशः ।
ब्रूमो विभागमधुना गृहदेवतानां
सम्यक् शुभाशुभफलप्रविभागयुक्तम् ॥ १४८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

पुरनिवेशो दशमोऽध्यायः ॥

अथ वास्तुत्रयविभागो नामैकादशोऽध्यायः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभक्ते नवधा ततः ।
मध्ये महाद्युतिर्ब्रह्मा विधेयो नवभिः पदैः ॥ १ ॥

तस्मादनन्तरं प्राच्यां षट्पदः कीर्तितोऽर्यमा ।
आग्नेयकर्णे सवितृसावित्रौ पदिकावुभौ ॥ २ ॥

---

१. 'धुरं दानाश्रि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ब्रह्मणोऽनन्तरं याम्ये विवस्वान् षट्पदाश्रितः ।
नैर्ऋते पदिकौ कर्णे जयेन्द्रौ कथिताविभौ ॥ ३ ॥

षट्पदः स्यात् ततो मित्रः काष्ठायां पत्युरम्भसः ।
कर्णेऽपरोत्तरे यक्ष्मा रुद्रश्च पदिकावुभौ ॥ ४ ॥

षड्भिः पदैस्ततः सौम्ये निश्चलः पृथिवीधरः ।
आपस्तथापवत्सश्च पदिकावीशदिग्गतौ ॥ ५ ॥

इत्यन्तःसंश्रया देवाः प्रोक्ता ब्रूमो बहिःस्थितान् ।
ज्ञेयं प्रदक्षिणं तेषां स्थानं पूर्वोत्तरादितः ॥ ६ ॥

अग्निस्तदनु पर्जन्यो जयन्तश्चेन्द्र एव च ।
रविः सत्यो भृशश्चेति नभस्तस्मात् ततोऽनिलः ॥ ७ ॥

पूषाख्यो वितथाख्यश्च गृहक्षतयमावथ ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्ततः ॥ ८ ॥

दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलेश्वरः ।
असुरः शोषनामा च पापयक्ष्मा ततः परम् ॥ ९ ॥

रोगो नागश्च मुख्यश्च भल्लाटः सोम एव च ।
चरकोऽथादितिर्दैत्यमातेति पददेवताः ॥ १० ॥

वह्नेर्वायोः पितृणां च व्याधेश्चैव क्रमाद् बहिः ।
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ॥ ११ ॥

पदभोगोऽस्ति नैतासां स्थानमेव हि केवलम् ।
पदभोगमथ ब्रूमो बहिःस्थानां नभःसदाम् ॥ १२ ॥

तत्राष्टौ द्विपदाधीशा जयन्तो भृश एव च ।
वितथो भृङ्गसुग्रीवशोषमुख्यास्तथादितिः ॥ १३ ॥

एभ्यः शेषा बहिर्ये तु ते स्युः पदभुजः सुराः ।
एकाशीतिपदे प्रोक्तो देवतानां पदक्रमः ॥ १४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ।
भवेच्छतपदो वास्तुर्ब्रूमोऽत्राप्यमरस्थितिम् ॥ १५ ॥

---

१. 'ईशरत' ख. पाठः । २. '(जलो द्विपः ?) जलाधिपः' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्विरष्टगुणितं मध्ये पदमेकं पितामहः ।
भुङ्क्ते शतपदे वास्तौ चतुर्गुणितमर्यमा ॥ १६ ॥

विवस्वतोऽथ मित्रस्य तद्वच्च पृथिवीभृतः ।
भोगमिच्छन्ति वै तेषामर्यम्ण इव सूरयः ॥ १७ ॥

सवित्राद्यापवत्सान्ता ये च नोक्ताः सुरोत्तमाः ।
यथैकाशीतिके तद्वत् तेषां भोगः पदाष्टकम् ॥ १८ ॥

अग्न्यन्तरिक्षपवना मृगश्च पितरोऽपिच ।
रोगोऽदितिस्तथाध्यर्धपदभाजो बहिः स्थिताः ॥ १९ ॥

चतुर्विंशतिरुक्ता ये पर्जन्याद्याः सुरोत्तमाः ।
अदित्यन्ता द्विपदिकास्ते शेषं प्राक् प्रसाधितम् ॥ २० ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पूर्ववद् भाजितेऽष्टभिः ।
चतुःषष्टिपदो वास्तुश्चतुःषष्ट्या पदैर्भवेत् ॥ २१ ॥

अस्मिन् पदानि चत्वारि भुनक्त्यन्तः पितामहः ।
अर्यमाद्याः सुराश्चात्र द्वे द्वे मध्यगताः पदे ॥ २२ ॥

मध्येऽष्टौ बाह्यतोऽष्टौ ये स्थिताः कर्णेषु चाष्टसु ।
ये देवाः सर्व एवात्र ते पदार्धभुजः स्मृताः ॥ २३ ॥

पर्जन्योऽथ भृशः पूषा भृङ्गदौवारिकौ तथा ।
शोषनागादितिश्चान्ताः स्युरध्यर्धपदस्पृशः २४ ॥

जयन्तादिषु[३] बाह्येषु चरकान्तेषु कीर्तिता ।
प्रत्येकं षोडशस्वत्र सुरेषु द्विपदस्थितिः ॥ २५ ॥

सिरां वह्निपदादूर्ध्वं नयेत् पितृपदान्ततः ।
बाह्याशानिर्गतां चैनां रोगनामानमानयेत् ॥ २६ ॥

द्विनाम्नः प्रापयेद् भृङ्गं भृङ्गात् सुग्रीवमानयेत् ।
ततोऽदितिं तां गमयेद् द्विनामानं प्रवेशयेत् ॥ २७ ॥

---

१. 'रः क्षयः ।', २. 'स्तैः' क. पाठः । ३. 'द्विनामादि' ख. पाठः ।

'द्विनामादिष्वि'ति पाठे द्विनामशब्दो जयन्तपर्यायः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सौराद् याम्यं पदं नीत्वा वारुणं प्रापयेत् ततः ।
नयेत् पदं ततः सौम्यं तत आदित्यमानयेत् ॥ २८ ॥

भृशादानीय वितथं शोषाख्यं वितथादथ ।
शोषान्मुख्यं समानीय नयेत् तस्मात् पुनर्भृशम् ॥ २९ ॥

ये विभागाः समुद्दिष्टा यथासङ्ख्येन तैरिह ।
यज्ञामरनृणां वास्तुं समस्तं विभजेत् सुधीः ॥ ३० ॥

देवैः सर्वैरप्यमीभिर्विशोकः प्रीत्युत्कर्षादित्थमालोक्यतेऽसौ ।
कृत्स्नानेषोऽप्यब्जपत्रायताक्षः पश्यत्येतान् स्फारितेनेक्षणेन ॥ ३१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

वास्तुत्रयविभागो नाम एकादशोऽध्यायः ॥

अथ नाड्यादिसिरादिविकल्पो नाम द्वादशोऽध्यायः।

अथाभिधीयते[1] वास्तुः कनीयान् षोडशास्पदः ।
पदैः षोडशभिः स स्यात् तत्र देवान् प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥

भुङ्क्ते मध्ये स्थितो मुख्यः पदमेकं सुरोत्तमः ।
क्लृप्तं पदचतुर्भागैश्चतुर्भिश्चतुराननः ॥ २ ॥

पदार्धभागभोक्तारश्चत्वारोऽमी सुरोत्तमाः ।
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रश्च क्ष्माधरोऽपि च ॥ ३ ॥

सवित्राद्यापवत्सान्ता येऽष्टौ कोणेषु वेधसः ।
चतुर्भागभुजस्ते स्युस्त्रिदशास्तपनत्विषः ॥ ४ ॥

चतु[3](र्थी?र्व्वी)शादिकोणेषु ये स्थिताः क्रमशः सुराः ।
अष्टभागभुजस्तेऽष्टौ विनिर्दिष्टा मनीषिभिः ॥ ५ ॥

ये तथादितिपर्यन्ताः पर्जन्याद्याः सुरोत्तमाः ।
तेऽष्टौ चतुर्भागभुजो विद्वद्भिरिह कीर्तिताः ॥ ६ ॥

---

१ 'रुख्यां' क. पाठः । २ 'थो विधी', ३. 'तुष्पष्टीशादि' (?)ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चरकान्ता जयन्ताद्या ये बाह्यस्थितयोऽमराः ।
भोगोऽर्धपदिकस्तेषां षोडशानामपि स्मृतः ॥ ७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे त्रयस्त्रिंशद्विभाजिते ।
अन्त्यपङ्क्तिद्वयं सार्धं चरक्याद्यर्थमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

अन्तरे वीथिकामर्धपदिकामुत्सृजेत् ततः ।
मध्ये तु सप्तविंशत्या भागैर्वास्तु विभाजयेत् ॥ ९ ॥

एकोनत्रिंशता युक्तं पदानां शतसप्तकम् ।
यद् भवेत् तत्र गर्भे स्यादेकाशीतिपदः स्वभूः ॥ १० ॥

अष्टादशपदाश्चाष्टौ चापप्रभृतयः पृथक् ।
अर्यमाद्यं चतुःपञ्चाशत्पदं स्याच्चतुष्टयम् ॥ ११ ॥

ईशादयस्त्वदित्यन्ता बाह्या नवपदाः सुराः ।
देशानां सन्निवेशेऽसौ साहस्रो वास्तुरुच्यते ॥ १२ ॥

अथोच्यते वृत्तवास्तुर्वृत्तप्रासादहेतवे ।
एकश्चतुःषष्टिपदभागः शतपदोऽपरः ॥ १३ ॥

अष्टधा भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तरान् ।
चतुरः परिधीन् कुर्यान्मध्यवृत्तं द्विभागिकम् ॥ १४ ॥

स्याद् बहिर्वृत्तवलयमष्टाविंशतिभागिकम् ।
तदन्तर्वृत्तवलयमष्टाष्टांशोज्झितं क्रमात् ॥ १५ ॥

एवं कृते भवेन्मध्ये ब्रह्मणस्तच्चतुष्पदम् ।
इत्थं चतुःषष्टिपदो वृत्तवास्तुरुदाहृतः ॥ १६ ॥

दशधा भाजिते वृत्तविष्कम्भे भागिकान्तराः ।
कार्याः परिधयः पञ्च मध्ये वृत्तं द्विभागिकम् ॥ १७ ॥

बहिस्थं वलयं तस्य भजेत् षट्त्रिंशता ततः ।
शेषं चतुःषष्टिपदस्थित्या स्याच्छतवास्तुनि ॥ १८ ॥
देवतापदसङ्क्षिप्तिरनयोश्चतुरश्रवत् ।
एवं कार्यवशात् कार्या वास्तवोऽन्येऽपि धीमता ॥ १९ ॥

---

१. 'न्ते पङ्क्तित्रयं' क. पाठः । २. 'स्तयोः श' ३. 'त्तरः' ख. पाठः । ४. 'वृत्तविष्कम्भे विभक्ते भा' ५. रात् , ६. 'स्याद्वृत्तवा' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

त्र्यश्रे षडश्रे चाष्टाश्रे षोडशाश्रे च वृत्तवत् ।
वृत्तायतेऽर्धचन्द्रे च वास्तौ पदविभाजनम् ॥ २० ॥

एक एव पुमानेषु बहुधा परिकल्पितः ।
सर्वस्मिन्नपि संस्थाने विभक्ते लक्षयेत् ततः ॥ २१ ॥

शरीरं वास्तुपुंसोऽस्य गुणदोषा भवन्ति यत् ।
मुखं मूर्धा ततः श्रोत्रे दृक्तात्वोष्ठरदाः क्रमात् ॥ २२ ॥

वक्षः कण्ठः स्तनौ नाभिर्मेढ्मुष्कावथो गुदम् ।
बाहू प्रबाहू पाणी स्फिगूरुजङ्घं पदद्वयम् ॥ २३ ॥

कल्पयेदेवमेतेन स भवेत् पुरुषाकृतिः ।
सिरावंशानुवंशाश्च सन्धयः सानुसन्धयः ॥ २४ ॥

मर्माण्यथ महावंशा लक्ष्या वास्तुशरीरगाः ।
सिराः कर्णगता याः स्युस्ता नाड्यः परिकीर्तिताः ॥ २५ ॥

पदस्य षोडशो भागस्तत्प्रमाणं प्रकीर्तितम् ।
महावंशौ प्राक्प्रतीच्यौ याम्योदीच्यौ च मध्यगौ ॥ २६ ॥

प्रमाणं पञ्चमो भागः पदस्योदाहृतं तयोः ।
वंशास्तेऽस्मिन् समुद्दिष्टा रेखा याः स्युर्मुखायताः ॥ २७ ॥

यास्तिर्यगायता रेखास्तेऽनुवंशाः प्रकीर्तिताः ।
सम्पाता ये स्युरेतेषां मर्म तत् संप्रचक्षते ॥ २८ ॥

उपमर्माणि तान्याहुः पदमध्यानि यानि हि ।
भागोऽष्टमोऽथ दशमो द्वादशः षोडशोऽपिच ॥ २९ ॥

पदतो मानमिष्टं स्याद् वंशादीनामनुक्रमात् ।
वंशाष्टकस्य यः सन्धिः स सन्धिरिति कीर्तितः ॥ ३० ॥

ये पुनः स्युस्तदङ्गानां प्रोक्तास्ते चानुसन्धयः ।
बालाग्रतुल्यं सन्धीनां प्रमाणं परिचक्षते ॥ ३१ ॥

तदर्धमनुसन्धीनां प्रमाणं समुदीरितम् ।
यत्नेनैतानि सन्त्यज्य वास्तुविद्याविशारदः ॥ ३२ ॥

---

१. 'ष्ट', २. 'गा' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्रव्याणि प्रयतो नित्यं स्थपतिर्विनिवेशयेत् ।
महावंशस्य नाक्रान्तिं कुर्याद् द्रव्येण केनचित् ॥ ३३ ॥

इतरेषु पुनर्द्रव्यं मध्यवंशेषु सन्त्यजेत् ।
महावंशसमाक्रान्तौ भवेत् स्वामिवधो ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

वर्षेण तपनाद् भीतिं वंशानां पीडनाद् विदुः ।
उपमर्माणि रोगाय मर्माणि कुलहानये ॥ ३५ ॥

उद्वेगायार्थनाशाय सिराश्च स्युः प्रपीडिताः ।
कलिः स्यात् सन्धिविद्धेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु ॥ ३६ ॥

तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत् ॥ ३६ 1/2 ॥

ज्ञात्वा सिराः सानुसिराश्च नाडीवंशानुवंशानपि वास्तुदेहे ।
यत्नेन मर्माणि फलानि चैषां वेधं त्यजेद् यस्तमुपैति नापत् ॥ ३७ 1/2 ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

नाडीवंशानुवंशानां सिरानुसिरामर्मानुमर्मवेधविकल्पो नाम

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ मर्मवेधस्त्रयोदशोऽध्यायः ।

एकाशीतिपदो यः स्यात् तथा शतपदश्च यः ।
चतुःषष्टिपदो यश्च वास्तुरत्र त्रिधोदितः ॥ १ ॥

यद् येन विभजेत् तेषु तदिदानीं प्रचक्ष्महे ।
यानि मर्माणि चैतेषां कथ्यन्त इह तान्यपि ॥ २ ॥

वर्णिनां भवनादीनि निवेशा राजवेश्मनाम् ।
एकाशीतिपदेनेन्द्रस्थानं च विभजेत् सुधीः ॥ ३ ॥

प्रासादा विविधास्तद्वद् विचित्राश्चात्र मण्डपाः ।
तान् मापयेच्छतपदप्रविभागेन बुद्धिमान् ॥ ४ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

यः पुनः स्याच्चतुःषष्टिपदस्तेन विभाजयेत् ।
नरेन्द्रशिबिरग्रामखेटादि नगरादि च ॥ ५ ॥

अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद् बाह्यतश्च ये ।
तेषां स्थानानि मर्माणि सिरा वंशाश्च तेषु तु ॥ ६ ॥

मुखे हृदि च नाभौ च मूर्ध्नि च स्तनयोस्तथा ।
मर्माणि वास्तुपुंसोऽस्य षण्महान्ति प्रचक्षते ॥ ७ ॥

वंशानुवंशसम्पाताः पदमध्यानि यानि च ।
देवस्थानानि तान्याद्ये पदषोडशकान्विते ॥ ८ ॥

देवस्थानानि सम्पाताश्चतुःषष्टिपदे पुनः ।
तथैकाशीतिपदिके पदान्तशतिकेऽपि च ॥ ९ ॥

चतुर्ष्वपि विभागेषु सिरा याः स्युश्चतुर्दिशम् ।
मर्माणि तानि चोक्तानि द्वारमध्यानि यानि च ॥ १० ॥

भित्तिविस्तृतमध्येन यद्वा मध्येन दारुणः ।
मर्म यत् पीड्यते येन गृहे तत्रोच्यते फलम् ॥ ११ ॥

द्वारैर्वा भित्तिभिर्वापि मर्मणां परिपीडनात् ।
दौर्गत्यं गृहिणः प्राहुः कुलहानिमथापि वा ॥ १२ ॥

भवेत् स्वामिक्षयः स्तम्भैस्तुलाभिः स्त्रीपरिक्षयः ।
स्नुषावधो जयन्तीभिर्बन्धुनाशश्च सञ्ज्ञकैः ॥ १३ ॥

मर्मस्थानगतैः कार्यैर्भर्तुः कायो निपीड्यते ।
सुहृद्विश्लेषमिच्छन्ति सन्धिपालैश्च तद्विदः ॥ १४ ॥

नागपाशैर्धनोच्छेदो नागदन्तैः सुहृत्क्षयः ।
कपिच्छकैश्च मर्मस्थैः प्रेष्याणां क्षयमादिशेत् ॥ १५ ॥

षड्दारुकाण्यनुसिरागवाक्षालोकनानि च ।
मर्ममध्योपगान्येतान्यावहन्ति धनक्षयम् ॥ १६ ॥

द्वारद्रव्यतुलास्तम्भनागदन्तगवाक्षकैः ।
द्वारमध्यादितैः रोगकुलपीडाधनक्षया(ः?न्) ॥ १७ ॥

---

१. 'कार्यैर्भ' अ. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नृपदण्डभयं पत्युः पीडनं च प्रचक्षते ।
द्वारमध्येषु पट्टदारुमध्येष्वपि च सूरयः ॥ १८ ॥

कर्णद्रव्यादिभिर्विद्धेष्वेतदेव फलं विदुः ।
शय्यानुवंशविहिता गृहिणां कुलनाशिनी ॥ १९ ॥

क्षयावहा नागदन्ता भर्तुः शय्याविलानगाः ।
वातायनेनाथ स्तम्भैर्ये विद्धा नागदन्तकाः ॥ २० ॥

ते शस्त्रभीतिदा भर्तुर्येद्वा चौरभयप्रदाः ।
द्रव्यधान्यविनाशाय शोकाय कलहाय च ॥ २१ ॥

गृहमध्यगतं द्वारं भवेत् स्त्रीदूषणाय च ।
द्रव्येणान्यतरेणापि महामर्म निपीडितम् ॥ २२ ॥

भवेत् सर्वस्वनाशाय गृहिणो मरणाय च ।
अंशुकाश्चोर्ध्ववंशाश्च तुम्बिकाः सेन्द्रकीलकाः ॥ २३ ॥

पुरप्रासादगेहानां वेधेऽप्येते न दोषदाः ॥ २३ [1/2] ॥
इत्थं सुरक्षितिपवर्णगृहाश्रितोऽयं
भेदः पदेष्वखिलमर्मगतो व्यधश्च ।
उक्तः पृथक्पृथगमुष्य फलं च सम्यग्
ब्रूमोऽथ वास्तुपुरुषाङ्गविभागमत्र ॥ २४ [1/2] ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

मर्मवेधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ पुरुषाङ्गदेवतानिघण्ट्वादिनिर्णयश्चतुर्दशोऽध्यायः ।

देवतानां पदैरित्थं संविभक्तैः पृथग्विधैः ।
स्थपतिः प्रयतः कुर्याद् वास्तुमित्थं पुमाकृतिम् ॥ १ ॥

शिरस्तस्याग्निरुद्दिष्टं दृष्टिर्दित्यम्बुदाधिपौ ।
जयन्तश्चादितिश्चास्य कर्णौ वायुर्मुखे स्थितः ॥ २ ॥

---

१. 'नि', २. 'क्षयावहान' क. पाठः । ३. 'मर्माणि पीडित ।', ४. 'वा' ख. पाठः । ५. 'श्चार्ध्ववंशास्तु तु' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अर्कः स्याद् दक्षिणे वामे भुजे सोमः प्रतिष्ठितः ।
महेन्द्रचरकौ सापवत्सावस्योरसि स्थितौ ॥ ३ ॥
स्तनेऽर्यमा दक्षिणे स्याद् वामे च पृथिवीधरः ।
यक्ष्मा रोगश्च नागश्च मुख्यो भल्लाट इत्यमी ॥ ४ ॥
दक्षिणेतरमेतस्य बाहुं देवाः समाश्रिताः ।
सत्यो भृशो नभो वायुः पूषा चेत्यथ दक्षिणम् ॥ ५ ॥
पञ्चापि बाहुमेतस्य संश्रितास्त्रिदिवौकसः ।
सावित्रसवितारौ च रुद्रशक्तिधरावपि ॥ ६ ॥
चत्वारोऽमी क(लाधि?फोणि)स्थाः करयोर्हृदि च स्वभूः ।
वितथोकःक्षतौ पार्श्वे दक्षिणेऽस्य व्यवस्थितौ ॥ ७ ॥
वामे पुनः स्थितावस्य देवौ शोषासुराभिधौ ।
मित्राभिधो विवस्वांश्च द्वावप्युदरमाश्रितौ ॥ ८ ॥
मेढ्रमध्यस्थितावस्य सुराविन्द्रजयाभिधौ ।
यमश्च वरुणश्चोर्वोः क्रमाद् दक्षिणवामयोः ॥ ९ ॥
गन्धर्वभृङ्गौ समृगौ जङ्घां सव्यामथेतराम् ।
द्वास्थसुग्रीवपुष्पाख्याः संश्रिताः पितरोऽङ्घ्रिगाः ॥ १० ॥
एकाशीतिपदस्येशदिग्विभागाश्रितं शिरः ।
माहेन्द्रीसंश्रितं विद्याच्चतुःषष्टिपदस्य तु ॥ ११ ॥
एकाशीतिपदाज्जातो वास्तुः शतपदाभिधः ।
यः षोडशपदः स स्याच्चतुष्षष्टिपदोद्भवः ॥ १२ ॥
मध्ये य एव देवानां स्थितो ब्रह्माब्जसंभवः ।
स सहस्राननोऽचिन्त्यविभवो जगतां प्रभुः ॥ १३ ॥
योऽयं वह्निरिहोक्तः स सर्वभूतहरो हरः ।
पर्जन्यनामा यश्चायं वृष्टिमानम्बुदाधिपः ॥ १४ ॥
जयन्तस्तु द्विनामाख्यः कश्यपो भगवानृषिः ।
महेन्द्रस्तु सुराधीशो दनुजानां विमर्दनः ॥ १५ ॥
आदित्यं पुनरिच्छन्ति विवस्वन्तमहस्करम् ।
सत्यो भूतहितो धर्मो भृशः कामोऽथ मन्मथः ॥ १६ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

योऽन्तरिक्षः स्मृतो देवस्तन्नभः समुदाहृतम् ।
मारुतो वायुरुद्दिष्टः पूषा मातृगणः स्मृतः ॥ १७ ॥
अधर्मो वितथाख्यः स्यात् कलेरङ्गतिमः सुतः ।
गृहक्षतः पुनर्योऽत्र स चन्द्रतनयो बुधः ॥ १८ ॥
प्रेताधिपो मतः श्रीमान् यमो वैवस्वतश्च यः ।
गन्धर्वो भगवान् देवो नारदः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥
भृङ्गराजमिहेच्छन्ति राक्षसं निर्ऋतेः सुतम् ।
यो मृगोऽस्मिन्ननन्तः स स्वयंभूर्भव इत्यपि ॥ २० ॥
पितरस्तु स्मृता देवाः पितृलोकनिवासिनः ।
स्मृतो दौवारिको नन्दी प्रमथानामधीश्वरः ॥ २१ ॥
आदिः प्रजापतिः स्रष्टा[1] मनुः सुग्रीव ईरितः ।
पुष्पदन्तस्तु विनतातनयः स्यान्महाजवः ॥ २२ ॥
वरुणः पाथसां नाथो लोकपालः स कीर्तितः ।
असुरो राहुरर्केन्दुमर्दनः सिंहिकात्मजः ॥ २३ ॥
शोषस्तु भगवानेष सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ।
पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो रोगस्तु कथितो ज्वरः ॥ २४ ॥
भुजङ्गमानामधिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः ।
त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽत्र विश्वकर्माभिधश्च सः ॥ २५ ॥
चन्द्रो भल्वाट § इत्युक्तः कुबेरः सोमसंज्ञितः ।
चरको व्यवसायाख्यः श्रीरिहादितिसंज्ञिका ॥ २६ ॥
दितिरत्रोच्यते शर्वः शूलभृद् वृषभध्वजः ।
हिमवानपि इत्युक्त आपवत्स उमा स्मृता ॥ २७ ॥
आदित्यस्त्वर्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते ।
* देवी गङ्गाव विद्वद्भिः सवितेति प्रकीर्तिता ॥ २८ ॥
मृत्युः शरीरहर्तासौ विवस्वानिति स स्मृतः ।
जयाभिधस्तु वज्रीति स्यादिन्द्रो बलवान् हरिः ॥ २९ ॥

---

१. 'ब्रह्मा म' क. पाठः ।

§ 'भल्लाट' इति प्राक् पाठः ।

* इत आरभ्यार्धपञ्चकं ख. पुस्तके न पठ्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

मित्रो हलधरो माली रुद्रश्चन्द्रो महेश्वरः ।
राजयक्ष्मा [illegible] शोषः शिखिश्चो[illegible] प्रकाशते ॥ ३० ॥
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
रक्षोगणविदा [illegible] देवतानुचरीविदुः ॥ ॥ ३१ ॥
इत्येष वास्तुदेवानां निघण्टुः परिकीर्तितः ।
क्षो मूर्ध्नि [illegible] स्यात् [illegible] कुरु पः ॥ ३२ ॥
घः कण्ठे हृदये चः स्यात् [illegible] नाभिदेशगः ।
रेफो वस्तौ [illegible] मो [illegible] * (पुष्प[illegible]) जानुनी ॥ ३३ ॥
नकार ऊरुणी जानु [illegible] पिण्डिकाश्रितः ।
(ई?ड)कारो [illegible] नकारोऽङ्घ्रितले स्मृतः ॥ ३४ ॥
उक्तानि वास्तुपुरुषस्य यथाप्रदिष्टमङ्गानि वास्तुपददैवतनामधेयाः ।
वर्णाश्च वास्तुवपुषि [illegible] पोडशेन पुरोऽथ दैवतबलेन पुरे [1]निवेशम् ॥ ३५ ॥

इति महाराजाधिराज[illegible]भोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

पुरुषाङ्गदेवतानिघण्ट्वादिनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

कृते पुरनिवेशेऽथ चतुःपरिखवप्रके ।
नियुक्तपरिखासालगोपुराट्टालकेऽपि च ॥ १ ॥
विभक्तरथ्ये परितः प्रविभाजितचत्वरे ।
क्रमादन्तर्बहिःक्लृप्तदेवतायतनस्थितौ ॥ २ ॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे प्राग्द्वाराभ्युन्नतेऽथवा ।
यशःश्रीविजयाधानि यत्र पद्माधिष्ठितम् ॥ ३ ॥
यथावर्णक्रमायातं चतुरस्रं [illegible] शुभम् ।
पुरमध्यादपरतोदिक्स्थं कुर्यान्नृपालयम् ॥ ४ ॥

---

१. 'म' क. पाठः । [illegible] (?)' ख. पाठः ।
३. 'निवासम्' क. पाठः । ४. '[illegible]' ख. पाठः ।

---

* 'पुष्यकावि'ति क. पाठः, 'पुत्रकावि'ति ख. पाठश्चाशुद्धौ । ग. पुस्तके तु पत्रं लुप्तम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

दुर्गेषु भूवशात् कार्यं यद्वा दिक्ष्वपरास्वपि ।
विवस्वद्भूधरार्यम्णां कार्यमन्यतमे पदे ॥ ५ ॥

त्रिचत्वारिंशता युक्ते ज्येष्ठं स्याद् द्वे धनुःशते ।
मध्यं शतं तु द्वाषष्टिः शतं साष्टकमन्तिमम् ॥ ६ ॥

ज्येष्ठे पुरे विधातव्यं ज्येष्ठं राजनिवेशनम् ।
मध्यमे मध्यमं कार्यं कनिष्ठं च कनीयसि ॥ ७ ॥

प्राकारपरिखागुप्तं चारुकान्ति समन्ततः ।
तमङ्गभ्रमनिर्यूहसुदृढाट्टालकान्वितम् ॥ ८ ॥

एकाशीत्या पदैर्भक्तं विधेयं नृपमन्दिरम् ।
राजमार्गं समाश्रित्य वास्तुद्वारमुदङ्मुखम् ॥ ९ ॥

युक्तस्थानयैव कर्तव्यमन्यदिक्संश्रयेऽपि च ।
भल्लाटपदवर्त्यस्य गोपुरद्वारमिष्यते ॥ १० ॥

तत्पुरद्वारविस्तारोच्छ्रायसम्मितमिष्टदम् ।
महेन्द्रं द्वारमिच्छन्ति निविष्टस्य महीधरे ॥ ११ ॥

वैवस्वते पुष्पदन्तमर्यम्णि च गृहक्षतम् ।
अन्येष्वेषामपरतः प्रदक्षिणपदेष्वथ ॥ १२ ॥

अन्यान्यपि स्वासु दिक्षु द्वाराण्येवं प्रकल्पयेत् ।
आभिमुख्ये च सर्वेषां शस्यन्ते गोपुराणि च ॥ १३ ॥

तदीयनगरद्वाराद् विंशत्यंशोज्झितानि वा ।
पक्षद्वाराणि सुग्रीवे जयन्ते मुख्यनाम्नि च ॥ १४ ॥

वितथेऽथ भ्रमांस्तद्वद् विदधीत प्रदक्षिणान् ।
वास्तौ विभक्ते पुरवत् क्लृप्तेऽमरपदैर्व्रजेः ॥ १५ ॥

तत्र मंत्रपदस्थाने निवेशायावनीपतेः ।
प्रासादः प्राङ्मुखः कार्यो यथावत् पृथिविञ्जयः ॥ १६ ॥

श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रं मुक्तकोणमथापरम् ।
यमिच्छेन्नृपतिः कुर्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ १७ ॥

१. 'व्रजेत् ।' ख. पाठः । २. 'वीजयः' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

शालापरिक्रमोपेतकर्मान्तैरपिचान्वितम् ।
तत्र प्राच्यां भवेद् गेहमादित्यपदसंश्रितम् ॥ १८ ॥

धर्माधिकरणं सत्ये व्यवहारेक्षणाय च ।
भृशे च कोष्ठागारं स्यादम्बरे मृगपक्षिणाम् ॥ १९ ॥

अग्नेः ककुभमाश्रित्य कार्यं वार्योमहानसम् ।
सभाजनाश्रयं पूष्णि विदध्याद् भोजनास्पदम् ॥ २० ॥

सावित्रे वाद्यशाला स्यात् सवितृस्थाश्च वन्दिनः ।
चर्माणि वितथे कुर्यात् नयोग्यान्यायुधानि च ॥ २१ ॥

स्वर्णरूप्यादिकर्मान्तान् विदधीत गृहक्षते ।
याम्ये दक्षिणतो गुप्तिं कोष्ठागारं च कल्पयेत् ॥ २२ ॥

प्रेक्षासङ्गीतकानि स्युर्गन्धर्वे वासवेश्म च ।
कार्या वैवस्वते शाला रथानां दन्तिनां तथा ॥ २३ ॥

पश्चिमोत्तरभागस्थां वापीमपिच कारयेत् ।
वा(यो?यु)सुग्रीवपदयोर्गन्धर्वस्य च बाह्यतः ॥ २४ ॥

कुर्यादन्तःपुरस्थानं प्राकारवलयावृतम् ।
कुर्यात् तद्गोपुरद्वारमुदगास्यं जयाभिधे ॥ २५ ॥

कार्यः स्थपतिना चैव प्रासादश्चापराङ्मुखः ।
क्रीडादोलालयान् भृङ्गे कुमारीभवनं तथा ॥ २६ ॥

नृपान्तःपुरमिच्छन्ति मृगे पित्र्ये त्ववस्करम् ।
नृपस्त्रीणामुपस्थानगृहमिन्द्रपदे विदुः ॥ २७ ॥

सुग्रीवपदसंसक्तमरिष्टागारमिष्टदम् ।
द्वास्थसुग्रीवपि(त्र्ये?ञ्यां)श्च पश्चाद्वागे मनोहरा ॥ २८ ॥

विधेयाशोकवनिका स्नानधारागृहाणि च ।
लतामण्डपसंयुक्ताः स्युरत्रैव लतागृहाः ॥ २९ ॥

दारुशैलाश्च वाप्यश्च पुष्पवीथ्यः सुकल्पिताः ।
पुष्पदन्ते भवेद् य(त्त?न्त्र)कर्मान्तः पुष्पवेश्म च ॥ ३० ॥

---

१. 'णः' ख. पाठः । २. 'कार्य', ३. 'स्था', ४. 'ले', ५. 'दन्तः क' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वरुणस्य पदे कुर्याद् वापीपानगृहाणि च ।
स्यात् कोष्ठागारमसुरे शोषे स्यायुधमन्दिरम् ॥ ३१ ॥

भाण्डागारं तु रौद्राख्ये विदध्यात् स्थपतिः स्थिरे ।
उलूखलशिलायन्त्रभवनं पापयक्ष्मणि ॥ ३२ ॥

दारुकर्मान्तमप्याहुः शेषे भागे स्वभावि ।
स्याद्दीपवेश्माधिष्ठानं रोगे दिति नभस्वतः ॥ ३३ ॥

नागानां कल्पते स्थानं पदे नागस्य सूरिभिः ।
भवन्ति मुख्ये व्यायामनाट्यचित्रगृहाणि च ॥ ३४ ॥

गवां स्थानं तथा क्षीरगृहं भल्लाटनामनि ।
उदक्प्रदेशे सौम्यस्य पुरोधःस्थानमिष्यते ॥ ३५ ॥

राज्ञोऽभिषेचनं चात्र दानाध्ययनकान्तयः ।
चामरच्छत्रयोश्च स्थानमन्त्रवेश्म च भूधरे ॥ ३६ ॥

कार्यिणां चात्र कार्याणि स्थितः पश्येन्नराधिपः ।
विधवा मन्तुःस्थानादुत्तरं पार्श्वमाश्रिता ॥ ३७ ॥

महीधरपदस्यैव यथावद् दक्षिणामुखी ।
कार्या सर्वत्र चाश्वानां शाला राज्ञो यथागृहम् ॥ ३८ ॥

त्रिशालो दक्षिणेन स्याद् वासश्च विषाणिनाम् ।
वेश्मानि राजपुत्राणां विदध्याच्चरकाभिधे ॥ ३९ ॥

अत्रैव विद्याधिगमशालाश्चैषां निवेशयेत् ।
नृपस्य मातुरदितिस्थाने कुर्यान्निवेशनम् ॥ ४० ॥

पृथगेव शिबिकाश्वशालागृहं विदुः ।
नृपस्त्रीणां शस्तं स्यादपि सद्मकल्पनाः ॥ ४१ ॥

अभिषेचनकं स्थानमिहैव स्याद् दिशाधिनाम् ।
आपवत्सपदे हंसक्रौञ्चसारसनामताः ॥ ४२ ॥

स्युः कुब्जवामनाः स्वच्छसलिलाः सलिलाशयाः ।
पितृव्यमातुलादीनां कार्यं दितिपदे गृहम् ॥ ४३ ॥

---

१. 'राजाभि' क. पाठः । २. 'न्त्रि' ख. पाठः । ३. 'नभिह च' क. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

अन्येषामपि चात्रैव सामन्तानां महीपतेः ।
ऐशान्यामनलस्थाने वोच्छ्रितस्तम्भवेदिकम् ॥ ४४ ॥

कार्यं देवकुलं चारु सुश्लिष्टमणिकुट्टिमम् ।
पर्जन्यस्य पदे होराज्योतिर्विद्गृहमिष्यते ॥ ४५ ॥

जये सेनापतेर्वेश्म विधेयं विजयप्रदम् ।
द्वारं प्राकारमाश्रित्य पदेऽर्यम्णः प्रशस्यते ॥ ४६ ॥

प्रागद्क्षिणाश्रितं शस्त्रकर्मान्तं शस्त्रमल च ।
विमुञ्चेद् ब्रह्मणः स्थानमिन्द्रध्वजयुतं नृणाम् ॥ ४७ ॥

तत्राशुभानि वेश्मानि निवेशाश्चासुखावहाः ।
गवाक्षस्तम्भशोभिन्यो विधेयाश्चानुकामतः ॥ ४८ ॥

सभा यथादिक्प्रभवा नृपवेश्माभिगुप्तये ।
सर्वत्र नृपतेः सौधान् नृपसौधस्य सम्मुखा ॥ ४९ ॥

पश्चाद्भागाश्रिता यद्वा शाला कार्या विषाणिनाम् ।
इत्यास्पदं सुरपदास्पदकल्पमाद्य-
मेतद् यथावदनुतिष्ठति यः सदैव ।
स क्ष्मामिमां भुजबलक्षपितारिपक्षः
सप्ताम्बुराशिरशनां नृपतिः प्रशास्ति ॥ ५०[1/2] ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

राजनिवेशो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ वनप्रवेशो नाम षोडशोऽध्यायः ।

प्राग्वोदग्वापि गेहार्थे द्रव्यं विधिवदानयेत् ।
गन्तव्यमेव धिष्ण्येषु* मृदुक्षिप्रचरेषु च ॥ १ ॥

---

१. 'त्र सु' क. पाठः ।

---

* धिष्ण्येषु नक्षत्रेषु ।

"Aho Shrut Gyanam"

उपवास्यं च तेष्वेवच्छेद्यं भेद्यं च दारुणैः ।
प्रवेशनं स्थिरैः कार्यमारम्भः शस्यते चरैः ॥ २ ॥

गत्वा शुभे शुचौ देशे निवेशं कारयेत् ततः ।
तस्मिन्निवेश्य कर्मान्तमन्नपानेन तर्पयेत् ॥ ३ ॥

पुष्टतुष्टपरीवारः क्षपायां समुपोषितः ।
गृहयोग्यं परीक्षेत न्यस्तशस्त्रस्ततोऽङ्घ्रिपम् ॥ ४ ॥

पुरश्मशानग्रामाध्वह्रदचैत्याश्रमोद्भवान् ।
क्षेत्रोपवनसीमान्तर्विषमस्थलनिम्नजान् ॥ ५ ॥

क[1]म्लतिक्तलवणास्वत्रनीषु तथोद्गतान् ।
श्वभ्रावृतान् स्थिरोर्वीषु सम्भूतांश्च त्यजेद् द्रुमान् ॥ ६ ॥

सम्यक् संलक्ष्य वृक्षाणां वर्णस्नेहत्वगादिकम् ।
विजानीयाद् वयस्तेषां बालान् वृद्धांश्च सन्त्यजेत् ॥ ७ ॥

शतानि त्रीणि वर्षाणां सारद्रुमवयः स्मृतम् ।
गृह्णीयात् षोडशादूर्ध्वं सार्धत्रिशतावधेः ॥ ८ ॥

वयसः परिणामेन निर्वीर्यत्वं यथा नृणाम् ।
प्रोक्तं तद्वद् द्रुमाणां च स्यात् तथा छिद्रपत्रता ॥ ९ ॥

भङ्गुराः सुषिरास्ते स्युः सकोलाक्षाः खरत्वचः ।
तस्मादिमांस्त्यजेद् वृक्षांस्तथा चैवोर्ध्वशोषिणः ॥ १० ॥

वक्रान् रूक्षानवल्लुष्टान् दुःस्थितानपि च द्रुमान् ।
वर्जयेद् भग्नशाखांश्च श्येकशाखान्वितांस्तथा ॥ ११ ॥

अन्यैरधिष्ठितान् विद्युत्पातवातसरित्क्षतान् ।
ग्रन्थि[2]निर्युक्तदानांश्च भ्रमराहिकृताश्रयान् ॥ १२ ॥

संसृष्टानेकतो भ्रष्टान् मधुभिर्वल्लिभिर्वृतान् ।
मांसामेध्याशनैस्तद्वद् दूषितानपि पक्षिभिः ॥ १३ ॥

लूतातन्त्वावृतान् वन्यसत्त्वैरुद्घृष्टान् गजक्षतान् ।
घुन्नतोऽतिबृहत्स्कन्धांश्चिद्रभूतांस्तथाध्वनः ॥ १४ ॥

---

१. 'ताशनिक्ष' ख. पाठः । २. 'भि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अकाले पुष्पफलिनो रोगैरपि च पीडितान् ।
वासभूतानुलूकानां त्यजेदन्यानपीदृशान् ॥ १५ ॥

खदिरो बीजकः सालो मधूकः शाकशिंश (पों?पे) ।
सर्जार्जुनाञ्जनाशोकाः कद्रो रोहिणीतरुः ॥ १६ ॥

विकङ्कतो देवदारुः श्रीपर्णीपादपस्तथा ।
कुटुम्बिनाममी प्रोक्ताः पुष्टिदा जीवदास्तथा ॥ १७ ॥

वृक्षाणां लक्ष्यते येषां भारवारिसहिष्णुता ।
ते यथायोग्यमन्येऽपि शस्यन्ते गृहकर्मणि ॥ १८ ॥

कर्णिकारधवप्लक्षकपित्थविषमच्छदाः ।
शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधचम्पकाः ॥ १९ ॥

निम्बाम्रकोविदाराक्षव्याधिघाताश्च गर्हिताः ।
गृहकर्मणि नेष्टास्ते यतस्तेऽनिष्टदायिनः ॥ २० ॥

नेष्टाः कण्टकिनः स्वादुफलाः क्षीरद्रुमाश्च ये ।
सुगन्धयश्च ये तद्वद् ध्रुवं तेषु पशुक्षयः ॥ २१ ॥

सत्त्वप्रमाणच्छाया तु नियतं दृश्यते यदा ।
द्रुमच्छाया तदा ग्राह्या तत्प्रमाणस्तु स द्रुमः ॥ २२ ॥

नक्षत्रं लक्षयेद् वृक्षे पूर्वस्यां दिशि तत्क्षितेः ।
स्याद् भस्याद्यक्षरं यस्य तत्र जातं तमादिशेत् ॥ २३ ॥

क्षेम्यं तं स्वामिनो वृक्षं ज्ञात्वा साधकमेव च ।
अग्रन्थिकोटरं स्निग्धमृजुं सारसमन्वितम् ॥ २४ ॥

पीनस्कन्धं हरित्पत्रं वृत्तं चाभ्यर्च्य पादपम् ।
द्विजान् सन्तर्प्य च स्वस्ति वाच्यं च स्थपतिस्ततः ॥ २५ ॥

पक्कापक्वामिषैस्तद्वद् भूतभक्तैः सुरासवैः ।
गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च बलिं दद्यान्निशागमे ॥ २६ ॥

अपक्रामन्तु भूतानि यानि वृक्षाश्रितानि हि ।
कल्पनं वर्तयिष्यामि क्रियतां वासपर्ययः ॥ २७ ॥

---

१. 'राख्या विधेयास्ते च', २. 'मृक्षं गा', ३. 'वा' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

धन्यः शिवः पुष्टिकरः प्रजावृद्धिकरो भव ।
स्वस्ति (ते?च)न्द्रानिलयमाः सूर्यरुद्रानलास्तथा ॥ २८ ॥
दिशो नद्यस्तथा शैलाः पान्तु त्वामृषिभिः सह ।
जल्पेद् यो मानुषगिरा कम्पते वाभिमन्त्रितः ॥ २९ ॥
स त्याज्यः स्यात् तथा म्लानप्रवालकुसुमश्च यः ।
ततो भास्करमालोक्य वृक्षं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥
स्वस्तिवाक्येन विप्राणां छेत्ता स्थित्वोदगाननः ।
प्राङ्मुखो वा तरुं छिन्द्याच्छस्त्रैः क्षौद्रार्द्रितानन्नैः ॥ ३१ ॥
शाखिनश्छिद्यमानस्य जायते यद्यसृक्स्रुतिः ।
कम्पनं वा ध्वनिर्वापि मृत्युः स्याद् गृहिणस्तदा ॥ ३२ ॥
यद्वा दधिमधुक्षीरघृतानि स्रवति द्रुमः ।
छिद्यमानस्तदा विद्याद् बन्धव्याधीन् कुटुम्बिनः ॥ ३३ ॥
अतीव यस्य स्रवति श्यामः स्नेहान्वितो रसः ।
सुगन्धिः स्वल्पमधुरः कषायः स प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
प्राच्यां शुभस्तरोः पात उदीच्यां कर्मसाधकः ।
याम्यप्रत्यङ्निपाते तु शान्तिं कृत्वा द्रुमं त्यजेत् ॥ ३५ ॥
ज्ञातितः स्यात् तदा भीतिर्यदान्यं मर्दयेत् पतन् ।
दूरं दलति यो मू(लं?ले) छिन्नो वा धरणीरुहः ॥ ३६ ॥
कूजत्यतीव वायुश्च स्मृतः सोऽथ शुभप्रदः ।
खरोष्ट्रयोः शृगालानां दर्शनं भुजगस्य वा ॥ ३७ ॥
छेदे स्यात् कर्मविघ्नाय निगडैर्बन्धनाय वा ।
हलचक्रपताकाब्जध्वजच्छत्रादिदर्शनम् ॥ ३८ ॥
श्रीवृक्षवर्धमानादिदर्शनं वा शुभप्रदम् ।
उत्क्षिप्यते यदिच्छेदात् तदर्द्धिः स्यात् कुटुम्बिनः ॥ ३९ ॥
सर्वतः परिहानिः स्याच्छिन्नश्चाक्षिप्यते यदि ।
एकवृक्षे यथोद्दिष्टलक्षणोत्क्षेपदर्शने ॥ ४० ॥
शेषान् दोषविनिर्मुक्तान् पादपानुपलक्षयेत् ।
धीरस्तं कल्पयेत् सम्यगनुलोमार्जवं तरुम् ॥ ४१ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

छिन्द्यार्चं[1] शुभभागार्धं[2]दशभागाधिकं कृतम् ।
तुञ्जीसाद्यवमध्यश्च[3](?)सगर्भो धरणीरुहः ॥ ४२ ॥

ज्ञेयानि मण्डलान्यस्य त(त्क्षणोच्छे?क्षणे छे)दनेऽपि च ।
मञ्जिष्ठाभे विदुर्भेकं कपिलाभे च मूषकम् ॥ ४३ ॥

पीतभासि तथा गोधां सर्पं दीर्घसितायते ।
गुडच्छाये मधु भवेत् कृकलासस्तथारुणे ॥ ४४ ॥

गृहगोधा कपोताभे गौधेरो घृतमण्डभे ।
रसाञ्जनाभे शङ्खाभे कमलोत्पलभासि च ॥ ४५ ॥

धौतासियष्टिवर्णे च मण्डले जलमादिशेत् ।
आकारो यस्य सर्पस्य वर्णो वा संप्रदृश्यते ॥ ४६ ॥

तं सर्पगर्भितं वृक्षमादिशेदविचारयन् ।
तस्करेभ्यो भयं क्षौद्रे सलिले सलिलाद् भयम् ॥ ४७ ॥

विद्यात् सर्पे विषाद् भीतिं पाषाणे भयमग्नितः ।
अजाविगोमहिष्युष्ट्ररासभादिनिपीडितम् ॥ ४८ ॥

गोधागौधेरमण्डूककृकलासैश्च गर्भिते ।
मूषके पुनरिच्छन्ति मरणं वास्तुवेदिनः ॥ ४९ ॥

अमुनैव वदन्त्यन्ये गृहपीडां मनीषिणः ।
क्षेमेण यद्यविघ्नः स्यादसङ्गश्चागमो यदि ॥ ५० ॥

वनान्तरे तदा क्षेमं सुभिक्षं च समादिशेत् ॥ ५०$\frac{1}{2}$ ॥

अर्घदानविधिना विधानविद् द्रव्यमागतमिहार्चयेद् गृही ।
प्रत्युपेतं[4]कुलिशायुधध्वजं द्रव्यमुज्ज्वलमुतावनीपतिः ॥ ५१$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

वनप्रवेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥

---

१. 'त्तु' क. पाठः । २. 'गार्धे', ३. 'तुञ्जी स्याद्यवम(?)', ४. 'त्य' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ इन्द्रध्वजनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

सुराणामर्थसिद्ध्यर्थं वधाय च सुरद्रुहाम् ।
यथा शक्रध्वजोत्थानं प्राह ब्रह्मा तथोच्यते ॥ १ ॥

भगवन्तमथाम्भोजसंभवं वचसांपतिः ।
प्रोवाच कथमिन्द्रेण जेतव्यास्त्रिदशद्विषः ॥ २ ॥

सोऽब्रवीत् सर्वरत्नानां ध्वजं कुरुत सङ्गताः ।
तं चाभिचारिकैर्मन्त्रैरुद्वहन्तोऽभिमन्त्रितम् ॥ ३ ॥

स्थितं चोपरि यन्त्रस्य सम्यक् पक्षिशतान्वितम् ।
अग्रतो देवसैन्यस्य नयन्तो जेष्यथ द्विषः ॥ ४ ॥

सहस्रधारमप्येकमन्यं रिपुकुलान्तकम् ।
दिव्यरूपमयं प्रादाद् ध्वजमिन्द्राय दुर्धरम् ॥ ५ ॥

वीर्यप्रवर्धनी चेष्टिरेतदर्थं विधीयते ।
कर्मणानेन निःशेषाञ् शक्रः शत्रूञ् जयेदिति ॥ ६ ॥

जयैषी तमथ क्षिप्रमसृजच्चेतसा ध्वजम् ।
यन्त्रस्थितं स येनाजावमोहयदरीन् हरिः ॥ ७ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ।
अलञ्चक्रुस्तमालोक्य मरुतश्च विभूषणैः ॥ ८ ॥

तेजो वीर्यं वपुश्चेष्टां बलमप्येष पश्यताम् ।
अहरच्छत्रुसैन्यानां तेजस्वी तरसा ध्वजः ॥ ९ ॥

तमभ्यर्च्य सुराधीशः शत्रून् बलवतोऽप्यसौ ।
त्रिरात्रेणाजयद् युद्धे कुलिशेन बलाद् बली ॥ १० ॥

ततः प्रीतस्तमृक्षेऽसौ वैष्णवे द्वादशे तिथौ ।
त्रैलोक्यराज्यं प्राप्याभ्यषिञ्चद् बलनिषूदनः ॥ ११ ॥

स सर्वलोकमभ्यर्च्य सर्वलोकाभिपूजितः ।
ध्वजमभ्यर्च्य तुष्टाव वाक्यैर्वृत्रनिषूदनः ॥ १२ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

ततस्तमन्तिके वीक्ष्य ध्वजं प्रोवाच वासवः ।
इन्द्रध्वजाख्यया लोकाः करिष्यन्ति तवार्चनम् ॥ १३ ॥

वीक्षमाणा निमित्तानि भूमिपालाश्च शाश्वतः ।
ततः प्रभृत्यसौ लोके सर्वलक्षणसंभृतः ॥ १४ ॥

वरप्रदानादिन्द्रस्य नृपैः शक्रध्वजोऽर्च्यते ॥
दुर्गमायतनं वह्निशरणं वेदिकाः कृताः ॥ १५ ॥

विचित्राः स्थालिकापाका भक्ष्यपानानि यानि च ।
एतान्यायतनात् प्राक् स्युर्यद्वान्यानि प्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥

विजेतुं यदि वाञ्छास्ति दुर्धर्षान् द्वेषिणो रणे ।
तेजो बलं यशश्चाप्तुं तदैन्द्रं कारयेद् ध्वजम् ॥ १७ ॥

सेनायां वा पुरे वापि प्रतिष्ठाप्य पुरन्दरम् ।
विजयार्थं महीपालैरभिप्रशमनाय च ॥ १८ ॥

यथा शक्रध्वजोत्थानविधानं जगतीभुजः ।
करिष्यन्ति तथा सम्यक् कार्त्स्न्येन प्रतिपाद्यते ॥ १९ ॥

वनादुपाहृतं द्रव्यमथ प्राग्विधिना सुधीः ।
पाद्यार्घ्यादिभिरभ्यर्च्य गन्धैर्माल्यैरलङ्कृतम् ॥ २० ॥

द्विजान् संपूज्य च शुचौ देशे सम्यक्समाहितः ।
पूर्वाग्रमुत्तराग्रं वा प्रयत्नादवतारयेत् ॥ २१ ॥

प्रागुदग् वा पुरस्याथ स्थपतिः कर्मवानपि ।
कारयेत् सर्वयन्त्राणि ध्वजपूर्वाणि शिल्पिभिः ॥ २२ ॥

श्रेष्ठं द्वात्रिंशता हस्तैर्विंशत्या युतयाष्टभिः ।
मानं स्यान्मध्यमं तस्य चतुरन्वितयाधमम् ॥ २३ ॥

मूलविस्तृतिरायामादङ्गुलार्धं करेकरे ।
विष्कम्भोऽग्रे च मूलार्धात् तत्र्यंशार्धं वाखिलेष्वपि ॥ २४ ॥

ध्वजमूलाष्टमांशोनं विस्तारात् कुम्भमिष्यते ।
विस्तारार्धेन च स्थूलं स्थूलत्वत्रिगुणायतम् ॥ २५ ॥

१. 'जाख्यया' ख. पाठः । २. 'काक्षताः', ३. 'रेभिः', ४. 'र्थानि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ध्वजविस्तारबहलं साङ्घ्रिबाहल्यविस्तृतम् ।
भ्रमपीठं विधातव्यं सार्धायामं शुभावहम् ॥ २६ ॥

सम्मितो ध्वजकुष्येण वेधः स्याद् भ्रमपीठगः ।
कुष्यकोट्यधिकौ[1]वृत्तावक्षौ कोटिद्वयायतौ ॥ २७ ॥

कार्यावङ्घ्री भ्रमस्थूलौ भ्रमविस्तृतिविस्तृतौ ।
तद्युक्तिवेधे तावेत(वि?द्वि)स्तृतेर्द्विगुणोच्छ्रितौ ॥ २८ ॥

ध्वजायतिचतुर्भागात् पीठमत्र प्रकल्पयेत् ।
मल्लप्रतिष्ठितं मध्ये प्रान्तयोः स्तम्भधारितम् ॥ २९ ॥

तत्पीठस्तम्भनीयाभ्यां द्वाराभ्यामन्वितं दृढम् ।
याम्योत्तरप्रतिक्षोभं प्राङ्मुखं सुदृढार्गलम् ॥ ३० ॥

केतुव्यासार्धविस्तारं तद्दैर्घ्याष्टांशकोच्छ्रितम् ।
विस्तारसदृशायामं मध्ये स्याद् वज्रिणो गृहम् ॥ ३१ ॥

मल्लश्च पीठिकाङ्घ्री च बाहू स्तम्भविनिर्गतौ ।
शक्रमाता कुमार्यश्च ध्वजविस्तृतिविस्तृताः ॥ ३२ ॥

निम्नभागाश्च सर्वेषां स्वविस्तृतिचतुर्गुणाः ।
कार्या वा पञ्चगुणिताः सप्त (का?वा) मूलदेश(कं?तः) ॥ ३३ ॥

कन्यानामुदयः प्रोक्तो यः ष(ष्ट्यो?)ष्ठांशस्त्रिसंगुणः ।
इन्द्रमाता तु सर्वाभ्यः स्यात् तदष्टांशतोऽधिका ॥ ३४ ॥

वेधः स्वविस्तरैः सप्तभागे स्यात् कन्यकोदयात् ।
निर्वेधश्चतुरश्रः स्याल्लकटस्य समाहितः ॥ ३५ ॥

निर्वेधावस्य चोर्ध्वाधः सप्तांशान्तरवर्तिनौ ।
कार्यौ सूचीव्यधाव[2]न्यौ सूचीमानप्रमाणतः ३६ ॥

कन्याव्यासत्रिभागेन सूची विस्तारतो भवेत् ।
पादोनबहला चारुदारुजा दृढसंहिता ॥ ३७ ॥

कुमारीव्याससंयुक्ता द्विगुणा लकटायतिः ।
एतद्बाह्यान्तरं ज्ञात्वा यन्त्रं संयोजयेत् ततः ॥ ३८ ॥

---

१. 'को वृत्ता कक्षौ', २. 'त्या वा' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तयोरधस्तदर्धेन मृगाल्यौ सूचिविस्तृतौ ।
क्षेत्रस्य लेखितं कार्यं सम्बन्धे सूचिकन्ययोः ॥ ३९ ॥

साङ्घ्रिकेतनमूलार्धं लकटे विस्तृतायती ।
अक्षाभ्यां योजयेत् सम्यग् दृढं बाह्वक्षवेधयोः ॥ ४० ॥

पञ्चानामपि तुल्यैव कन्यानां स्यात् प्रकल्पना ।
कृत्वानुपूर्व्या यन्त्राणि स्थापयेदखिलान्यपि ॥ ४१ ॥

आश्विने मासि पक्षे च धवले प्रतिपत्तिथौ ।
स्थिरोदयैर्ग्रहैः सौम्यैर्वीक्षिते त्वाष्ट्रभेऽपिच ॥ ४२ ॥

पौरजानपदैः सर्ववादित्रध्वनितेन च ।
यन्त्राण्युत्क्षिप्य यष्टिं च कर्मस्थानान्नयेज्जलम् ॥ ४३ ॥

चित्रप्रतिसराकीर्णां यष्टिं तत्राज्यलेपिताम् ।
चूर्णैः सर्वौषधीभिश्च स्थपतिः स्नापयेत् स्वयम् ॥ ४४ ॥

जलाशयात् समुत्तार्य नृणां कलकलस्वनैः ।
प्रागग्रां स्थापयेद् दारुहस्तिन्योः प्राक्समुन्नताम् ॥ ४५ ॥

अहतैर्सितवासोभिराच्छाद्याच्र्य स्रगादिभिः ।
विक्षिप्य च बलिं दिक्षु द्विजातीन् स्वस्ति वाचयेत् ॥ ४६ ॥

त्रिसन्ध्यं पूजितां तत्र सर्वप्रकृतिभिस्ततः ।
पञ्चाहं वासयेद् यष्टिं गुप्तां चापधरैर्नरैः ॥ ४७ ॥

तस्मिन्नेवाह्नि यन्त्राणि सर्वाण्यपिच यष्टिवत् ।
स्नातान्याच्छादितानीन्द्रस्थानदेशं प्रवेशयेत् ॥ ४८ ॥

सूत्रितेऽथ ध्वजस्थाने यष्टेरष्टांशदैर्घ्यतः ।
तदर्धविस्तृते दिक्स्थे समे प्रागायते शुभे ॥ ४९ ॥

विभक्तेऽत्र विभागानामेकाशीत्या ततः क्रमात् ।
विन्यस्तास्वथ सर्वासु देवतासु यथातथम् ॥ ५० ॥

प्राचि मध्ये मैत्रपदे तन्मध्यान्मरुतो दिशि ।
मल्लं निम्नप्रमाणेन पादकोणे निवेशयेत् ॥ ५१ ॥

---

१. 'क्षि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भृङ्गमुख्यपदद्वन्द्वमध्ययोर्वायुकोणयोः ।
न्यस्येत् स्तम्भौ तयोः पीठीं मल्ले च विनिवेशयेत् ॥ ५२ ॥
पीठिका निर्गता बाहुयुग्मात् तत्राग्रयोगतः ।
स्तम्भिन्यौ रोपयेद् ग्राह्यं पृथक्पदयुगं श्रिते ॥ ५३ ॥
प्रतिक्षोभाविह द्वौ द्वौ बाहुद्वितयमाश्रितौ ।
बाह्यतः प्रान्तपदयोर्मित्रयोर्विनिवेशयेत् ॥ ५४ ॥
प्राच्यां मल्लाग्रतो ज्ञात्वा शक्रस्योर्ध्वगतिं क्रमात् ।
योजयेद् भ्रमणोपेतौ भ्रमपादावभङ्गुरौ ॥ ५५ ॥
मल्लात् पश्चिमदिग्भागे वरुणस्याश्रितां पदम् ।
भद्रां निवेशयेन्निम्नमानतः शक्रमातरम् ॥ ५६ ॥
स्युः पर्जन्यान्तरिक्षद्वार्य(क्ष्माऽक्ष्म)णां पदमाश्रिताः ।
क्रमान्नन्दोपनन्दाख्यजयाख्यविजयाभिधाः ॥ ५७ ॥
विन्यस्तास्वथ सर्वासु कुमारीषु विभागशः ।
तयस्त्रयः प्रतिक्षोभा योज्या दार्ढ्याय बाह्यतः ॥ ५८ ॥
निक्षिपन्नखिलं द्रव्यं भावयेत् पददेवताः ।
प्राप्नोति तत्तदाख्यां तद्द्रव्यं पूजां च तद्गताम् ॥ ५९ ॥
पीठीपृष्ठसमं कन्यापार्श्वयोरुभयोरपि ।
कुर्यादनुसरद्वन्द्वं कीलकैर्बद्धमायसैः ॥ ६० ॥
संश्रित्यानुसरद्वन्द्वं पीठीं चोपरि सङ्ग्रहात् ।
बध्नीयात् कीलकैर्लोहैर्यन्त्रनिश्चलताकृते ॥ ६१ ॥
यन्त्रकर्मणि निर्वृत्त इति शास्त्रविधानतः ।
प्रवेशयीत स्वस्थाने त्रिदशाधिपमैन्द्रभे ॥ ६२ ॥
स्नातस्य विधिवद् वस्त्रच्छन्नस्यालेपितस्य च ।
श्रीखण्डाद्यैः सुरभिभिः कुसुमैरर्चितस्य च ॥ ६३ ॥
रोहिण्यादिमुहूर्तेषु त्रिषु मैत्रेऽथ वज्रिणः ।
प्रवेशमभिनन्दन्ति करणेष्वर्चितेषु च ॥ ६४ ॥

---

१. 'न्द्वं मध्याभ्यां वायु' ख. पाठः । २. 'स्वाग्र', ३. 'तिक्रमः', ४. 'तः', ५. 'नादयेत्' क. पाठः । ६. 'ख्यानां द्र' ख. पाठः । ७. 'तानु' क. पाठः । ८. 'ठ' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्थपतिर्वा पुरोधा वा शुचिः स्नातः समाहितः ।
गन्धमाल्यार्चितान् विप्रांस्तर्पयेद् दक्षिणादिभिः ॥ ६५ ॥

ततो मङ्गलघोषेण वादित्रनिनदेन च ।
पुण्याहजयशब्दैस्तमुत्क्षिपेयुः समाहिताः ॥ ६६ ॥

अलङ्कारभृतः पौराः प्रहृष्टमनसोऽखिलाः ।
नीरुजो बलिनः शक्ताः प्रकृत्यभिमताश्च ये ॥ ६७ ॥

स्तुवीरन् पुण्यमनसः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
वन्देरन् वन्दिनश्चैनं सेवेरन् गणिका अपि ॥ ६८ ॥

प्रविशन्तं निजं स्थानमनुगच्छेन्नराधिपः ।
सुराधिपं बलामात्यपौरजानपदान्वितः ॥ ६९ ॥

प्रोद्यत्कलकलारावसुस्वराः पुरुषा यदि ।
उत्क्षिपेयुः प्रहृष्टा वा वहेयुर्वा सुराधिपम् ॥ ७० ॥

तदा भवति भूपालो जयी नन्दन्ति च प्रजाः ।
राष्ट्रे सुखं पुरे हर्षो भवेन्नश्यन्ति चेतयः ॥ ७१ ॥

मुञ्चत्युत्थापितः कृच्छ्राद् यदि शय्यां स गौरवात् ।
तदा नृपतिरभ्येति महतीं विमनस्कताम् ॥ ७२ ॥

स्खलन्तो दुःखिता दीना निःश्वसन्तः पदे पदे ।
वैचित्त्यभाजो गच्छेयुर्देशहानिस्तदा ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

भूमौ यदैकदेशेन हसितः(?)पतति ध्वजः ।
न सुभिक्षं न च क्षेमो न राज्ञो विजयस्तदा ॥ ७४ ॥

दीर्णे भग्नेऽथ पतिते कृत्स्ने चास्मिन् समुद्धृते ।
स्यान्नृपस्यात्रनिच्छेदः सुतध्वंसोऽथवा मृतिः ॥ ७५ ॥

वस्त्रालङ्कृतिमाल्यानां हरणात् पतनादुत ।
तादृशद्रव्यविध्वंसः पौराणां भवति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

पुरं भवति निःशब्दं निष्प्रभं वा प्रवेशने ।
समुच्छ्रये वा शक्रस्य तदा तन्नाशमृच्छति ॥ ७७ ॥

---

१. 'च' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

शक्रं स्वस्थानमानीतं शीघ्रं सुखमविघ्नतः ।
प्राग्वत् प्रदक्षिणं न्यस्येत् प्रागग्रं शयने निजे ॥ ७८ ॥
कुर्यात् तत्रैव नक्षत्रे शय्यास्थस्यामरेशितुः ।
भ्रमे कुंष्ये च संयोगं यथाभागविकल्पितम् ॥ ७९ ॥
कुष्ये संयोज्यमानश्चेद् ध्वजो निपतति क्षितौ ।
तदा नरपतेः स्थानभ्रंशो भवति निश्चितः ॥ ८० ॥
कुष्ययोगे यदा शक्रो वामतः परिवर्तते ।
तदा स्यात् स्थपतेर्मृत्युर्भवेद् भङ्गश्च दक्षिणे ॥ ८१ ॥
स्ववेधं प्रतिपद्येत तद्यष्टिर्यदि कृच्छ्रतः ।
प्रमादिनस्तदा राज्ञो जायते व्यसनं महत् ॥ ८२ ॥
निष्कुष्य योजितः शक्रध्वजो विघटते यदि ।
विश्लिष्यति तदा सन्धिः सामन्तैः सह भूपतेः ॥ ८३ ॥
स्फुटेद् भज्येत वा कुष्ये योज्यमानोऽथ सर्वतः ।
तदा भङ्गे नृपव्याधिः स्फुटनादङ्गनावधः ॥ ८४ ॥
अविदीर्णमपर्यस्तमव्यङ्गमविलम्बितम् ।
यथावन्न्यासमायाति योगं चेद् वासवध्वजः ॥ ८५ ॥
धनभृत्याङ्गनापत्यैः सामन्तैश्चान्वितोऽनुगैः ।
निरातङ्को बलाङ्गश्च वृद्धिमेति तदा नृपः ॥ ८६ ॥
यत्नतो रक्ष्यमाणस्य शय्यास्थस्यैव वज्रिणः ।
तस्याङ्गान्यखिलान्येव कुटन्यादीनि योजयेत् ॥ ८७ ॥
ऐन्द्रं बलाकं यक्षेशं सर्पमादं दिगाह्वयम् ।
मयूरं चेन्द्रशीर्षं च पिटकाष्टकमित्यदः ॥ ८८ ॥
स्वप्रमाणेन कर्तव्यं स्पष्टरूपसमन्वितम् ।
तदाख्याश्चान्तरेष्वेषां सन्धयो वस्त्रनिर्मिताः ॥ ८९ ॥
मूलादन्वग्रमायातैः स्ववंशैर्विदलैर्दृढैः ।
गुणैश्च वेष्टयेदेनं घनैरशिथिलैर्ध्वजम् ॥ ९० ॥

१. 'कुष्ये' ख. पाठः । २. 'कुष्यायो', ३. 'मवल' क. पाठः । ४. 'कु' ख. पाठः । ५. 'जा', ६. 'स्वेष्ट', ७. 'दाक्षाश्चा' क. पाठः । ८. 'तैस्तं वं' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

साङ्घ्रिणा ध्वजनाहेन सत्र्यंशेनाथ विस्तृतिः ।
विधेया शक्रपिटकस्योच्छ्रयस्तु तदर्धतः ॥ ९१ ॥

अस्मिन्नष्टौ दिशः कृत्वा वंशव्यवहिते ततः ।
न्यस्येद् दिगीशांश्चतुरस्तस्योपरि यथादिशम् ॥ ९२ ॥

पञ्चमांशगते कुर्याद् वज्रिणः पिटके कृते ।
शेषाण्यप्यष्टभागोनान्यस्मिन् न्यस्येद् यथाक्रमम् ॥ ९३ ॥

बलाकादीनि विस्तृत्या चरणोनानि [1]चोच्छ्रितौ ।
स्ववर्णवन्ति वृत्तानि रामणीयकवन्ति च ॥ ९४ ॥

भङ्गपातविपर्या(र्सो?स)सिद्धयः पिटकोद्भवाः ।
पीडार्त्तिमृत्यवेऽत्यर्थमेकैकस्य प्रकीर्तिताः ॥ ९५ ॥

शुद्धान्तामात्यचित्तानां बलस्य यशसोऽपि च ।
वसुमत्याश्च धाम्नां च नृपते राष्ट्र(म?प)स्य च ॥ ९६ ॥

केतुषड्भागविस्तारा रज्जवोऽष्टौ सुवर्तिताः ।
विधेयाः स्युर्ध्वजायामत्रिगुणायतयो दृढाः ॥ ९७ ॥

छादितं छ(वि?दि)भिः [3]पूर्वं कुट्टनीसहितं शुभम् ।
यत्नेनासन्नदिवसे विदध्यादमरध्वजम् ॥ ९८ ॥

अर्केन्दुग्रहताराङ्कं वेणुगुल्मेन्द्रशीर्षकम् ।
साष्टकण्ठगुणं दण्डसूत्रादर्शान्वितं शुभम् ॥ ९९ ॥

ससस्यफलपुष्पाढ्यं शुभवस्त्रमलङ्कृतम् ।
दृढमन्वितमष्टाभिः सन्तताभिश्च रज्जुभिः ॥ १०० ॥

ध्वजपट्टं विदध्याच्च चित्रं सुरचितं तथा ।
निमित्तार्थं च लोकानां शोभाहेतोर्ध्वजस्य च ॥ १०१ ॥

सपत्तनपुरारामगन्धर्वत्रिदशासुरम् ।
निखिलं जगदालेख्यमस्मिन्नद्रिद्रुमाकुलम् ॥ १०२ ॥

ध्वजाग्रे रश्मिभिर्नद्धं (स?सु)विन्यस्तं च भूतले ।
विन्यसेत् तमसम्मूढमधोभागसमाश्रितम् ॥ १०३ ॥

---

१. 'वो' ख. पाठः । २. 'सात्', ३. 'पूर्णे कुट्टिनी' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रमोदगीतवादित्रनटनर्तकसंयुतः ।
तदग्रे जागरः कार्यः समस्तामेव तां निशाम् ॥ १०४ ॥

पुरोहितस्ततो भास्वत्युदिते प्रयतेन्द्रियः ।
अग्नेः परिग्रहं कुर्यान्मूलस्य प्रागुदग्दिशि ॥ १०५ ॥

कृतोपलेपनं तस्मिन्नुल्लेखाभ्युक्षणैस्ततः ।
संस्कृत्यास्तीर्य दर्भांश्च ज्वालयेत् तत्र पावकम् ॥ १०६ ॥

तत्राज्यपात्राण्याज्यं च गन्धांश्च कुसुमानि च ।
द्रव्याणि वाचनीयानि समिधश्च पलाशजाः ॥ १०७ ॥

सौवर्णौ स्रुक्स्रुवाविन्द्रभक्तं च बलयोऽपिच ।
इत्येतत्सर्वमाहृत्य जुहुयात् पावकं ततः ॥ १०८ ॥

पुत्रदारपशुद्रव्यसैन्ययुक्तस्य भूपतेः ।
विजयावाप्तिजनकैर्मन्त्रैः शान्तिविधायिभिः ॥ १०९ ॥

सुस्वनः सुमहार्चिश्च स्निग्धश्चेद्धोऽपिच स्वयम् ।
कान्तिमान् सुरभिर्जिघ्रन् होतारं शस्यतेऽनलः ॥ ११० ॥

तप्तकाञ्चनसच्छायो लाक्षाभः किंशुकच्छविः ।
प्रवालविद्रुमाशोकसुरगोपसमद्युतिः ॥ १११ ॥

ध्वजाङ्कुशगृहच्छत्रयूपप्राकारतोरणैः ।
सदृशार्चिः प्रशस्तोऽग्निर्माङ्गल्यैरपरैस्तथा ॥ ११२ ॥

स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो विधूमो विपुलोऽनलः ।
सुभिक्षक्षेमदः प्रोक्तो दीप्यमानश्चिरं तथा ॥ ११३ ॥

धूम्रो विवर्णः परुषः पीतो वा नीलकोऽथवा ।
विच्छिन्नो भैरवरवो वामावर्त्तशिखोऽल्पकः ॥ ११४ ॥

मन्दार्चिर्द्युतिमुक्तोऽसृग्वसागन्धः स्फुलिङ्गवान् ।
धूमावृतः सफेनश्च हुतभुग् न जयावहः ॥ ११५ ॥

दर्भाणां संस्तरं वह्निर्होमाङ्गान्यपराणि वा ।
हूयमानो दहति चेद्धानिस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

---

१. 'न्धिः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

होमे वोत्सर्पयेत् पीठं दह्यमानो(?)यदाग्निना ।
भूम्येकदेशनाशः स्याल्लाभः स्यादुपकर्षणात् ॥ ॥ ११७ ॥

सर्वतो वाप्यगाधो यः स वर्धयति पार्थिवान् ।
यां दिशं यान्ति च ज्वालास्तस्यां विजयमादिशेत् ॥ ११८ ॥

दुर्वर्णाशुचि दुर्गन्धि मक्षिकाखुविडम्बितम् ।
आज्यं राज्यच्छिदे प्राहुर्हूयते यच्च भस्मनि ॥ ११९ ॥

हीनाधिकप्रमाणाश्च विदीर्णा घुणभक्षिताः ।
वातरुग्णद्रुमोत्थाश्च समिधोऽर्थक्षयावहाः ॥ १२० ॥

सगर्भाश्च सपुष्पाश्च विच्छिन्नाग्रास्तृणान्विताः ।
कुर्वन्त्युपद्रवं दर्भा दुष्प्रलूनाश्च ये तथा ॥ १२१ ॥

दुष्टानि पांसुकीर्णानि कीटजर्जरितानि च ।
बीजानि बीजनाशाय स्युरपुष्टानि यानि च ॥ १२२ ॥

माल्यं विगन्धि प्रम्लानं न पीतं न सितं च यत् ।
कीटैः खण्डितपीतं च न जयाय न वृद्धये ॥ १२३ ॥

विस्रावीण्युद्धतान्युग्रखण्डितस्फुटितानि च ।
दुर्भिक्षरोगकारीणि प्राहुः पात्राणि सर्पिषः ॥ १२४ ॥

अशुचौ पतिते च स्यान्मक्षिकाकीटदूषिते ।
बलौ च शक्रभक्ते च क्षुन्मारः केशभाजि च ॥ १२५ ॥

यथोदितान्यरूपाणि सर्पिरादीन्यनुक्रमात् ।
भवन्ति राष्ट्रपुरयोर्भयाय निखिलान्यपि ॥ १२६ ॥

वितीर्य गन्धमाल्यादीन् देवताभ्यो यथादिशम् ।
पुरोधाः स्थपतिर्वाथ प्रीतचित्तः क्षिपेद् बलिम् ॥ १२७ ॥

ध्वजनैर्ऋतदिग्भागे द्विजमुख्यानुपस्थितान् ।
शीलवृत्तयुतान् भूरिगन्धमाल्यैः स्वलङ्कृतान् ॥ १२८ ॥

वृद्धान् षट्कर्मनिरतान् सुहृदो वेदपारगान् ।
मनःप्रियान् पूर्णगात्रान् समर्थान् सर्वतः शुचीन् ॥ १२९ ॥

---

१. 'केशैश्चैव विदूषिते', २. 'ल्यैरल' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

शुक्लाम्बरान् दर्शनीयान् गौरप्रायान् बलान्वितान् ।
अमुण्डाजटिलाक्लीवा(न्?)दीक्षितान् व्याधिताकृशान् ॥ १३० ॥

यथेष्टं दक्षिणाभिस्तान् संयोज्याष्टशतेन वा ।
साक्षतैः प्रीतमनसः कुसुमैः स्वस्ति वाचयेत् ॥ १३१ ॥

शक्रं ते चाष्टभिः कुम्भैः सुदृढैर्वारिपूरितैः ।
स्वर्चितैरभिषिञ्चेयुर्मूले चोत्कृष्टमण्डलैः ॥ १३२ ॥

स्तुतैर्वैजयिकैर्मन्त्रैः स्तुतिभिश्च द्विजोत्तमैः ।
राज्यमाघोषयेदेतैरात्मना च महीपतिः ॥ १३३ ॥

कुर्वीत सर्वबन्धानां मोक्षं हिंसां समुत्सृजेत् ।
दोषान् जनपदस्यापि दशाहं विषहेत वै ॥ १३४ ॥

सुवासा भूषितः स्नातः सदाचारप्रयत्नवान् ।
ध्वजोच्छ्रायं शुचिर्भूपः सबलः प्रतिपालयेत् ॥ १३५ ॥

सोपवासः शुचिः स्नातः प्रयतो विजितेन्द्रियः ।
कृताञ्जलिपुटश्चेमं मन्त्रं स्थपतिरुच्चरेत् ॥ १३६ ॥

ओं नमो भगवति वागुले सर्वविटप्रमर्दनि स्वाहा ।

सुरासुराणां सङ्ग्रामे प्रवृत्ते त्वं यथोत्थितः ।
तथा नृपस्य देवेन्द्र! जयायोत्तिष्ठ पूजितः ॥ १३७ ॥

स्तुत्वेति स्थपतिस्तस्य कृत्वा चानुप्रदक्षिणम् ।
कारयेद् देवराजस्य ध्वजदण्डसमुच्छ्रयम् ॥ १३८ ॥

स्वलङ्कृतैः सितस्वच्छमाल्याम्बरविलेपनैः ।
पौरैर्जानपदैस्तद्वत् प्रयतैः परिचारकैः ॥ १३९ ॥

सालिङ्गझल्लरीशङ्खनन्दिडिण्डिमगोमुखैः ।
हृष्टैरन्यैश्च वादित्रैर्वाद्यमानैर्महास्वनैः ॥ १४०

गायद्भिश्च नटद्भिश्च गायनैर्नटनर्तकैः ।
हृष्टोत्कृष्टोद्धतध्वानैर्गजस्यन्दनवाजिभिः ॥ १४१ ॥

१, 'ण्डान् ज', २. 'लान् क्ली', ३. 'घा', ४. 'अ' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तैश्च वादित्रनिनदैस्तैश्च पुण्याहनिस्वनैः ।
दृढरज्जुभिराकृष्टं श्रवणे ध्वजमुच्छ्रयेत् ॥ १४२ ॥

यत्नेनोत्थाप्यमानस्य तस्योच्छ्रायगतस्य च ।
नृपक्षिवाहनादीनां निमित्तान्यवलोकयेत् ॥ १४३ ॥

कुटनीनिहिताभोगं पताकादर्पणोज्ज्वलम् ।
चिलपट्टस्फुटाटोपमर्केन्दुगुणभूषणम् ॥ १४४ ॥

अस्रस्तमाल्यालङ्कारमशीर्णच्छत्रमस्तकम् ।
अकम्पितमदीर्णाङ्गमदिग्भ्रष्टं सुरेश्वरम् ॥ १४५ ॥

सममूर्ध्वसमश्लिष्टमनवक्षतमद्रुतम्[1] ।
अविलम्बितविभ्रान्तमृजुमार्गसमुद्गतम् ॥ १४६ ॥

इत्थं शक्रध्वजोत्थानं कृतं राज्ञो जयावहम् ।
पौरजानपदानां च क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् ॥ १४७ ॥

यदा शक्रध्वजः प्राचीमुच्छ्रितः प्रतिपद्यते ।
तदा मन्त्रिगणक्षत्रनृपप्राग्वासिवृद्धिदः ॥ १४८ ॥

आग्नेयीं ककुभं याते वर्धन्ते वह्निजीविनः ।
प्रारब्धकार्यनिष्पत्तिरयत्नाच्चोपजायते ॥ १४९ ॥

दक्षिणां दिशमायाते केतने नमुचिद्विषः ।
तदा स्युर्वैश्यलोकस्य पूजाधान्यधनर्द्धयः ॥ १५० ॥

सर्वाशासंपदः श्रेष्ठा जायन्ते नैर्ऋताश्रिते ।
न स्याद् गर्भो वृथा तद्वद् वधबन्धभयं न च ॥ १५१ ॥

श्रिते प्राचेतसीमाशामस्मिन् शूद्रजयो भवेत् ।
क्षुत्तृष्णाग्निभयं न स्याद् वृष्टिरिष्टा च जायते ॥ १५२ ॥

द्रुमसस्यफलर्द्धिः स्यात् केतौ वायोः श्रिते दिशम् ।
चतुष्पदविवृद्धिश्च रोगोच्छित्तिश्च जायते ॥ १५३ ॥

चतुर्णामपि वर्णानां सम्पत् स्यात् सौम्यदिग्गते ।
विशेषात् सा द्विजेन्द्राणां तथा सिध्यन्ति चाध्वराः ॥ १५४ ॥

---

१. 'सुमश्लिष्टमनवक्षतमद्भुतम्' ख. पाठः । २. 'न्तं नृपमा' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ऐशीमाशां श्रिते धर्मपरो भवति पार्थिवः ।
वृद्धिर्जनपदस्य स्यात् तथा पाषण्डिनामपि ॥ १५५ ॥

यदि किञ्चिद् व्रजेत् पूर्वं रज्ज्वाकृष्टः शतक्रतुः ।
विजिगीषोर्नरेन्द्रस्य तदा यात्रा प्रसिध्यति ॥ १५६ ॥

प्रतिष्ठां लभते भूमौ भ्रमं भित्त्वा यदि ध्वजः ।
सशैलकाननामुर्वीं तदा जयति पार्थिवः ॥ १५७ ॥

दिक्सर्पणे फलं प्रोक्तमित्यव्यङ्गस्य वज्रिणः ।
विपरीतं तदेवोक्तं व्यङ्गस्य निखिलं पुनः ॥ १५८ ॥

यदि स्वलङ्कृतः पूर्वं योज्यमानः शतक्रतुः ।
उत्क्षिप्तो रज्जुयन्त्रेण स्तोकमर्धे स्थितोऽपि वा ॥ १५९ ॥

शय्यायां यदि वा भूमावुत्सङ्गे वा पतत्यसौ ।
तदा नृपं राजदारान् कुमारं वा विनाशयेत् ॥ १६० ॥

उत्थितोऽर्धोत्थितो वापि यदि क्षुभ्यति कम्पते ।
स्थानान्तरं व्रजेद् वापि सञ्चरेद् वा कथञ्चन ॥ १६१ ॥

विगृह्यते तदा भूपो भ्रश्यति[1] स्थानतोऽपि वा ।
भयाज्जनपदो वास्य चलत्येव न संशयः ॥ १६२ ॥

आकृष्टासु यदाष्टासुच्छिद्यते[2] कापि रज्जुषु ।
अमात्यमरणं तत् स्यादेकैकांशेन निश्चितम् ॥ १६३ ॥

मूलमध्याग्रभागे वा प्रोच्छ्रितो यदि भज्यते ।
पौरसेनापतिनृपान् क्रमशो हन्त्यसौ तदा ॥ १६४ ॥

छत्रार्कवेणुगुल्मेन्द्रशीर्षकण्ठगुणा यदि ।
पतन्ति भूमाविन्द्रो वा तदा हन्ति महीपतिम् ॥ १६५ ॥

नृपो वधमवाप्नोति तैर्भग्नैः पतितैर्धुतैः[3] ।
अभग्नैर्विधुतैरेतैः[4] क्षयं व्रजति साधनम् ॥ १६६ ॥

क्रमशो हन्युरादर्शवैजयन्तीन्दुतारकाः ।
पतन्त्यो दक्चमूनाथपुरोधःस्त्रीर्महीपतेः ॥ १६७ ॥

---

१. 'श्यते', २. 'भिद्यते', ३. 'द्रु' ४. 'द्रुतै' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

माल्यैर्विभूषणैर्यानैः शस्त्रवस्त्रफलाशनैः ।
यान्ति केतुच्युतैरेतै राज्ञस्तान्येव संक्षयम् ॥ १६८ ॥

शीर्यते शक्रपिटकं कूटेभ्यः शक्रवेश्म वा ।
यस्यां ककुभि तत्राहुर्हानिं पूर्वे विपश्चितः ॥ १६९ ॥

भङ्गे मृणालीलकटाक्षार्गलानामनुक्रमात् ।
पीडा सञ्जायते वेश्यानृपतिश्रेष्ठिरक्षिणाम् ॥ १७० ॥

भग्ना भ्रमाक्षपादैर्वा मल्लमातृकुमारिकाः ।
राष्ट्रं हन्युर्नरेन्द्रस्य प्रियामातृसुतान् क्रमात् ॥ १७१ ॥

निर्घातोऽशनिरुल्का वा ध्वजे यदि पतेत् तदा ।
अनावृष्टिभयं राज्ञः पराजयमथादिशेत् ॥ १७२ ॥

कुर्वन्ति मक्षिकाः शक्रे मधुच्छत्रं समुच्छ्रिते ।
यस्मिंस्तत्र द्विषद्रोधं षण्मासाच्चादिशेत् पुरे ॥ १७३ ॥

मक्षिका वा खगा वा चेद् भ्रमेयुः पार्श्वतो हरेः ।
प्रदक्षिणा बहिस्थानमासाद्याहुस्तदा मृतिम् ॥ १७४ ॥[1]

गृध्रश्येनकपोताश्चेल्लीयन्ते शक्रमूर्धनि ।
तदा कुर्वन्ति दुर्भिक्षविग्रहक्षितिपक्षयान् ॥ १७५ ॥

यदि केतौ निलीयन्ते कुररोलूकवायसाः ।
राज्ञः क्रमात् तदा हन्युर्मन्त्रिपुत्रपुरोधसः ॥ १७६ ॥

मयूरो यदि वा हंसः समाश्रयति वासवम् ।
समस्तलक्षणोपेतस्तदा स्यान्नृपतेः सुतः ॥ १७७ ॥

चक्री बलाका हंसी वा यदि केतौ निलीयते ।
तदा नरपतिर्भार्यामवाप्नोत्यतिसुन्दरीम् ॥ १७८ ॥

खगैः सुवृष्टिर्जलजैः सुभिक्षं स्यात् फलाशिभिः ।
विष्ठाशिभिश्च[2] दुर्भिक्षं भीतिः स्यात् पिशिताशिभिः ॥ १७९ ॥

यदि चित्रपटन्यस्ताः सुरयक्षोरगोत्तमाः ।
विचित्राकृतिभिर्युक्ता वाहनायुधभूषणैः ॥ १८० ॥

---

१. 'नमासमाहुस्तदितिरा मृ' (?) ख. पाठः । २. 'स्तु' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अष्टौ च ककुभो मूर्ताः प्रनृत्ताश्चाप्सरोगणाः ।
सग्रहास्तारका मेघाः स्फीता नद्यस्तथाब्धयः ॥ १८१ ॥
वाप्यः पङ्केरुहच्छन्ना हंसवन्ति सरांसि च ।
फलपुष्पावतंसानि वनान्युपवनानि च ॥ १८२ ॥
देवतायतना(न्याद्य?न्यट्ट)गोपुराणि पुराणि च ।
भवनान्यतिशुभ्राणि शयनासनवन्ति च ॥ १८३ ॥
प्रहृष्टाः पार्थिवा भृत्या बलवाहनशालिनः ।
पौरा जानपदा लोकाः क्रीडाभाजः कुमारकाः ॥ १८४ ॥
चत्वारो मुदिता वर्णा नटनर्तकशिल्पिनः ।
सगोत्रजलतागुल्मद्रुमौषधिभृतो नगाः ॥ १८५ ॥
मृगपक्षिगणाः शस्ता मङ्गलान्यखिलानि च ।
विचित्रापानवसुधाः फलभक्षाश्च पक्षिणः ॥ १८६ ॥
यथानिवेशं शोभन्ते तदा देशे पुरेऽपि च ।
क्षेमारोग्यसुभिक्षाणि जयं राज्ञश्च निर्दिशेत् ॥ १८७ ॥
एतेषां कुट्टने पाते छेदे नाशेऽथवा हृतौ ।
प्लोषे वाप्यशुभं वाच्यं यथायोनि यथादिशम् । १८८ ॥
स्थिते वा पतिते वापि चित्रपट्टे भुवस्तले ।
उपप्लवो नरेन्द्रस्य भवेज्जनपदस्य च ॥ १८९ ॥
राजते यद्यलङ्कारः सकलो यावदुत्सवम् ।
अनस्तोऽविप्लुतश्चोर्वीं तदा कृत्स्नां जयेन्नृपः ॥ १९० ॥
नटनर्तकसङ्घेषु प्रनृत्यत्सु पठत्सु[2] च ।
शुभे शुभं समादेश्यमितरस्मिन्नशोभनम् ॥ १९१ ॥
ये वर्गाः सम्प्रहृष्यन्ति मङ्गल्या गजवाजिनः ।
सुवेषचेष्टालङ्कारोः शुभं तेष्वादिशेद् ध्रुवम् ॥ १९२ ॥
अमङ्[3]ल्यैषिणो ये स्युर्विकृता दीनचेतसः ।
पुरुषा योषितो वापि निर्दिशेत् तेषु वैशसम् ॥ १९३ ॥

---

१. 'राज्ये विनि', २. 'त्स्वपि' क. पाठः । ३. 'ङ्गल्यैषि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रभिन्नकरटा नागा बृहन्तस्तोयदा इव ।
अदीनाश्च स्वतन्त्राश्च नृपतेर्विजयावहाः ॥ १९४ ॥

आलिखन्तः खुरैः क्षोणीं दक्षिणैर्हृष्टचेतसः ।
हेषमाणा हयाश्चापि शंसन्ति नृपतेर्जयम् ॥ १९५ ॥

सतडिद्गर्जिताम्भोदा वृष्टिश्चेज्जायते तदा ।
महीपतेर्जयं विद्यात् सुभिक्षं क्षेममेव च ॥ १९६ ॥

अथार्धरात्रे सम्प्राप्ते रोहिण्यां दशमेऽहनि ।
शक्रस्य पातमिच्छन्ति मुनयः प्रतिवत्सरम् ॥ १९७ ॥

ततः समाजे निर्वृत्ते शक्रकेतौ प्रतिष्ठिते ।
गन्धतोयैश्च पुष्पैश्च विदधीताम्बुसेचनम् ॥ १९८ ॥

अमेध्यैर्वस्त्रखण्डैर्वा भस्मकेशास्थिकर्दमैः ।
यदा क्रीडन्ति मनुजा दुर्भिक्षं जायते तदा ॥ १९९ ॥

विप्राः प्राच्यां विल(म्पेऽम्बे)युः पतन्तं वासवध्वजम् ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यमन्यथा स्याद् विपर्ययः ॥ २०० ॥

अप्राङ्गोक्तो ध्वजाङ्गे यो विशेषः सोऽथ कथ्यते ।
पुरे ब्रह्मपुरात् प्राच्यामिन्द्रस्थानं विधीयते ॥ २०१ ॥

मात्राशयेन हस्तेन प्रमाणं तस्य कीर्तितम् ।
चतुःषष्टिसमायामं चतुरश्रं समन्ततः ॥ २०२ ॥

एकाशीतिपदेनैव भजेत् क्षेत्रं विभागतः ।
क्षेत्रस्यार्धेन कुर्वीत ध्वजायामं प्रमाणतः ॥ २०३ ॥

ततो वृद्धिर्विधातव्या हस्ते हस्तेऽङ्गुलं बुधैः ।
अर्धाङ्गुलं वा वृद्धिः स्याद् ध्वजस्येन्द्रस्य कुत्रचित् ॥ २०४ ॥

तावद् वृद्धिर्विधातव्या यावत् क्षेत्रसमोऽङ्गुलैः ।
ततः प्रमाणमाद्यं यत् तत् पुनर्विनियोजयेत् ॥ २०५ ॥

प्रमाणमङ्गुलैः केतोः स्याच्चत्वारिंशता मितम् ।
तस्य संवत्सरे वृद्धिः कर्तव्या द्व्यङ्गुलैर्बुधैः ॥ २०६ ॥

---

१. 'शत', २. 'म्बुसेचनम्' ख. पाठः । ३. 'प्राक्तेर्विल' ख, 'प्राच्यां विलुपे' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ब्रह्मस्थाने च कुर्वीत ब्रह्मावर्त्तं[1] विचक्षणः।
ब्रह्मणोऽनन्तरं प्राच्यां भवेद् दैवतमर्यमा ॥ २०७ ॥

तत्र यन्त्रस्य पादौ स्तः समुच्छ्रायेण षट्[2]प(मौ?दौ)।
तस्यैव पश्चिमे भागे मित्रो भवति देवता॥ २०८ ॥

ततः प्रभृति यन्त्रस्य ++ वेधो नतो भवेत्।
पूर्वापरं च निम्नं स्यादेष यन्त्रविधिः स्मृतः ॥ २०९ ॥

यन्त्रस्य पश्चिमे भागे वरुणो दैवतं भवेत्।
वरुणस्य पदान्ते च वंशस्थे द्वे कुमारिके॥ २१० ॥

खानिले(?)चतुरो हस्तान् दशहस्तोच्छ्रिते च ते।
रुद्रस्थाने च कर्तव्या कुमारी सुप्रतिष्ठिता॥ २११ ॥

सोमयोगे चतुर्थी स्यादापभागे च पञ्चमी।
षष्ठी च सवितुर्भागे यमभागे च सप्तमी॥ २१२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे इन्द्रध्वजनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥

अथ नगरादिसंज्ञा नामाष्टादशोऽध्यायः।

नगरं मन्दिरं दुर्गं पुष्करं साम्परायिकम्।
निवासः सदनं सद्म क्षयः क्षितिलयस्तथा॥ १ ॥

यत्रास्ते नगरे राजा राजधानीं तु तां विदुः।
शाखानगरसंज्ञानि ततोऽन्यानि प्रचक्षते॥ २ ॥

शाखानगरमेवाहुः कर्वटं नगरोपमम्।
ऊनं कर्वटमेवेह गुणैर्निगम उच्यते॥ ३ ॥

ग्रामः स्यान्निगमादूनो ग्रामकल्पो[3] गृहस्त्वसौ।
गोकुलावासमिच्छन्ति गोष्ठमल्पं तु गोष्ठकम्॥ ४ ॥

---

१. 'त्र्य', २. 'न्द्रसंपदाध्या', ३. 'कल्पगृह' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

उपस्थानं भवेद् राज्ञां यत्र तत् पत्तनं विदुः ।
बहुस्फीतवणिग्युक्तं तदुक्तं पुटभेदनम्[1] ॥ ५ ॥

विधाय कुटिका यत्र पत्रशाखातृणोपलैः ।
पुलिन्दाः कुर्वते वासं पल्ली स्वल्पा तु पल्लिका ॥ ६ ॥

नगरं वर्जयित्वान्यत् सर्वं[2] जनपदः स्मृतः ।
नगरेण समं कृत्स्नं राष्ट्रं देशोऽथ मण्डलम् ॥ ७ ॥

आवासः सदनं सद्म निकेतो मन्दिरं मतम् ।
संस्थानं निधनं धिष्ण्यं भवनं वसतिः क्षयः ॥ ८ ॥

अगारं संश्रयो नीडं गेहं शरणमालयः ।
निलयो लयनं वेश्म गृहमोकः प्रतिश्रयः ॥ ९ ॥

गृहस्योपरिभूमिर्या हर्म्यं तत् परिकीर्तितम् ।
तस्यारोहणमार्गो यः सोपानं तत् प्रचक्षते ॥ १० ॥

कोष्ठकैर्यत्र रचितं स्थूणयोरधिरोहणम् ।
सा निःश्रेणिरिति प्रोक्ता सोपानैर्विपुलैः पदैः ॥ ११ ॥

स्मृतः काष्ठविटङ्कोऽसौ यत् काष्ठैः संवृतं गृहम् ।
सुधालिप्ततलं हर्म्यं सौधं स्यात् कुट्टिमं च तत् ॥ १२ ॥

वर्षाभयेन या छन्ना तालशौकदलादिभिः[3] ।
स्मृताभिगुप्तिरन्तस्था सर्वोपरि गृहस्य सा ॥ १३ ॥

वातायनं तु भित्तीनामवलोकनमुच्यते ।
लघुर्वातयनो यः स्यादवलोकनकं हि तत् ॥ १४ ॥

हर्म्यस्य मध्ये यच्छिद्रं स उलोक इति स्मृतः ।
हर्म्यप्राकारकः स स्यात् कण्ठो हर्म्यतलस्य यो ॥ १५ ॥

वितर्दिकाष्ठमाला स्यात् सर्वतश्छेदमूलगा ।
तत्स्तम्भेषु मृगा ये तु ते स्युरीहामृगा इति ॥ १६ ॥

निर्यूहो हर्म्यदेशाद् यः काष्ठानामुपनिर्गमः ।
वलीकमिति विज्ञेयं काष्ठं छेदाद् विनिर्गतम् ॥ १७ ॥

---

१. 'दकम्', २ 'को', ३. 'शाल्द' क. पाठः । ४. 'हर्म्यः प्रा' ख. पाठः
५. '०ठो', ६. 'यः', ७. 'श्छद', ८. 'शामका' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

[1]छन्नैश्चतुर्भिः पार्श्वैर्यत् तच्चतुश्शालमुच्यते ।
त्रिभिस्त्रिशालं तत् प्राहुर्द्वाभ्यां तत् स्याद् द्विशालकम् ॥ १८ ॥
एकशालकमेकेनच्छन्नेन गृहमुच्यते ।
गृहमेकं तु यच्छन्नं [2]सर्वं शालेति सा स्मृता ॥ १९ ॥
शालानां यत् पुनर्मध्यं वापी पुष्करिणी च सा ।
संछन्ना (चाऽसा)पि यस्य स्यात् तद् गर्भगृहमुच्यते ॥ २० ॥
गृहे महाजनस्थानं त्रिकुड्यं यत् प्रकल्पितम् ।
उपस्थानं तदत्राहुः स्याच्चोपस्थानकं लघु ॥ २१ ॥
प्रासादस्तु स एव स्यादल्पा प्रासादिका स्मृता ।
दीर्घप्रासादिका यासौ वलभीत्यभिधीयते ॥ २२ ॥
शालाग्रे वलभी या स्यादलिन्देति वदन्ति ताम् ।
शालां विना तु वलभी [3]वलभेति निगद्यते ॥ २३ ॥
अल्पाल्पास्तु चतुष्कुड्या ये तेऽपवरका मताः ।
गृहे चाभ्यन्त[4]रस्थानं शुद्धान्त इति कीर्त्यते ॥ २४ ॥
प्रतोलीं तां विदुर्लोकाः सुरङ्गामिव यां वसेत् ।
सा कक्षेत्युदिता तज्ज्ञैर्यद्वस्थान्तरं गृहे ॥ २५ ॥
यदुपस्थानकं नाम ये चापवरकास्तथा ।
ते कोष्ठका या तु कण्ठा कुड्यं भित्तिश्रयश्च सा ॥ २६ ॥
[5]भक्तशाला भवेद् या तु तन्महानसमुच्यते ।
यच्छन्नं द्वारदेशे तु तमाहुर्द्वारकोष्ठकम् ॥ २७ ॥
प्रवेशनमिति प्राहुर्द्वारनिर्गमनं तथा ।
जलनिर्गमनस्थानं विज्ञे[6]यमुदकभ्रमः ॥ २८ ॥
भवनस्याङ्गणं यत्तु तदाहुर्भवनाजिरम् ।
वनाजिरं वनमही स्वाश्रमाजिरमाश्रमे ॥ २९ ॥
उत्तरोदुम्बरस्याधः श्लिष्टां मध्ये च [7]कुड्ययोः ।
तज्ज्ञास्तां देहलीत्याहुः कपाटाश्रयमेव च ॥ ३० ॥

---

१. 'छि', २. 'सर्वशा' क. पाठः । ३. 'भ्येति विधीयते' ख. पाठः । ४. 'रे', ५. 'भुक्तिशा' क. पाठः । ६. 'य उद', ७. 'पिण्डयोः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कपाटं द्वारपक्षः स्यात् कपाटपुटमेव च ।
पक्षः पिधानो वरणो द्वारसंवरणं तथा ॥ ३१ ॥

कपाटं संपुटस्ते द्वे (?) कपाटयुगलं च तत् ।
कलिका द्वारबन्धार्था या स्यात् तामर्गलां विदुः ॥ ३२ ॥

सा स्यादर्गलसूचीति यदि दीर्घा प्रमाणतः ।
पुराणां सा तु परिघः कलिङ्गो गजवारणम् ॥ ३३ ॥

छिद्रैर्गवाक्षप्रतिमैश्छिद्रितं सर्वतस्तु यत् ।
फलकं तद् गवाक्षः स्याज्जालमित्यपि कथ्यते ॥ ३४ ॥

हर्म्यद्वारे गृहद्वारे तथा हर्म्यावलोकने ।
प्राकारान्तरपृष्ठे तु या च प्रासादिका भवेत् ॥ ३५ ॥

पार्श्वयोरुभयोरेषां फलकद्वयमुच्छ्रितम् ।
उपर्युपरि संक्षिप्तमर्धचन्द्रद्वयाकृति ॥ ३६ ॥

आनने द्वे यथा चास्मिन् श्लिष्टैस्त्र्यैर्महाधरैः ।
तयोरुपरि सन्धौ च तारकाकृति मण्डलम् ॥ ३७ ॥

तत् तोरणमिति प्रोक्तं यच्च तेन परिष्कृतम् ।
सुवर्णतोरणं च स्यान्मणितोरणमेव च ॥ ३८ ॥

पुष्पतोरणमप्येतत् क्रियते पुष्पकादिभिः ।
तोरणाग्रे ठकारो यः सिंहकर्णः स उच्यते ॥ ३९ ॥

नाम्ना संयमनानीति गृहसञ्चारभूमयः ।
गृहस्य पार्श्वे यत्रास्मिंस्तत् तत्संयमनं विदुः ॥ ४० ॥

भित्तेर्यद्वाथ दारूणां तरङ्गाग्रवदानतम् ।
मरालपाली सा हर्म्या(त्) प्रणाली निर्गमोऽम्भसः ॥ ४१ ॥

स च प्राकार इत्युक्तः कण्ठः स्याद्ङ्गणस्य यः ।
द्वारस्यँ तु समीपं यत् प्रद्वारं तदिहोच्यते ॥ ४२ ॥

---

१. 'नावरणे द्वा' क. पाठः । २. 'कथ्यते', ३. 'ह्वा' ख. पाठः । ४. 'यावनं', ५ 'दाननम्' क. पाठः । ६. 'भित्तिसामान्यं बाह्यं परिसरो मतः । विस्तीर्णमुच्छ्रितां यली' (?) ख. पाठः । ७. 'स्य च समीपे यत्' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

यदिष्टकचितं मूले द्वारस्य भवति स्थलम् ।
दीर्घं वा ह्रस्वमथवा तदास्थलकमिष्यते ॥ ४३ ॥

मूत्रभूमिरमेध्येति[1] वर्चस्कोऽवस्करस्तथा ।
गृहाच्च भित्तिसामान्यं बाह्यं परिसरो मतः ॥ ४४ ॥

विस्तीर्णमुच्छ्रितं यत् स्याद् वेश्म सोऽट्ट उदाहृतः ।
संक्षिप्तमेतदेवोक्तं तज्ज्ञैरट्टालकाख्यया ॥ ४५ ॥

तदेवात्यन्तसंक्षिप्तमट्टालीति निगद्यते ।
अट्टाली या तु नात्युच्चा तामत्राट्टालिकां विदुः ॥ ४६ ॥

एकनाडीगतच्छिद्रैः काष्ठनालैः परिश्रितम्[2] ।
यत्र काष्ठप्रणालीति[3] छदपृष्ठेऽम्बु धावति ॥ ४७ ॥

स्तम्भशीर्षकरूपाणि काष्ठमूलाश्रितानि च ।
सुषिराणि प्रयत्नेन काष्ठनाडीमुखान्तरैः(?) ॥ ४८ ॥

रूपाणामथ तेषां तु स्तननासामुखाक्षिभिः ।
नानास्थानस्थितानां च वृषवानरदंष्ट्रिणाम् ॥ ४९ ॥

कृतसूक्ष्मान्तरच्छिद्रैः प्रवर्षति समन्ततः ।
तद् धारागृहमित्युक्तं धारागारादिनामभृत् ॥ ५० ॥

कांस्यैर्लोहैस्तथा पट्टैर्निर्मृष्टादर्शनिर्मलैः ।
निचिता यस्य भित्तिः स्यात् तद् दर्पणगृहं विदुः ॥ ५१ ॥

पक्षद्वारं तदत्राहुर्यन्महाद्वारतोऽपरम् ।
यत् प्राकाराश्रितं द्वारं पुरे तद् गोपुरं विदुः ॥ ५२ ॥

निर्गताश्चोच्छ्रिताश्चैव प्राकारस्यान्तरान्तरा ।
उपका(ल्या?र्या) इति प्रोक्ताः क्षामाश्चाट्टालका मताः ॥ ५३ ॥

चयप्राकारशालाः स्युः पुरीसंवरणाभिधाः ।
प्राकारादनुपालास्तु प्राकार उपनिष्कलाः(?) ॥ ५४ ॥

क्रीडागृहं यदारामे तदुद्यानं प्रचक्षते ।
नीरेऽम्भसो जलोद्यानं जलवेश्माम्बुमध्यगम् ॥ ५५ ॥

---

१. 'मौत्रभूमिरमे भ्रान्तो व', २. 'स्कृतम्' ख. पाठः । ३. 'भिः' क. पाठः ।
४. 'धावपि', ५. 'ज्युः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

क्रीडागृहं यदत्रोक्तं क्रीडागारं तदुच्यते ।
विहारभूमिराक्रीडभूमिरित्यभिधीयते ॥ ५६ ॥

देवधिष्ण्यं सुरस्थानं चैत्यमर्चागृहं च तत् ।
देवतायतनं प्राहुर्विबुधागारमित्यपि ॥ ५७ ॥

छन्नं भवेद् यत्तु महाजनस्य स्थानं सभा सा कथिता च शाला ।
गवां पुनर्मन्दिरमत्र गोष्ठमाचक्षते वास्तुनिवेशविज्ञाः ॥ ५८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
नगरकर्वटग्रामगृहायतनसंज्ञा नामाष्टादशोऽध्यायः ॥

अथ चतुःशालविधानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

ब्रूमो नृपचमूनाथवर्णिनां भवनान्यथ ।
प्रशस्तान्यप्रशस्तानि कृत्स्नान्यपि यथाक्रमम् ॥ १ ॥

वेश्मनामेकशालानां शतमष्टाधिकं स्मृतम् ।
द्वापञ्चाशद् द्विशालानां त्रिशालानां द्विसप्ततिः ॥ २ ॥

चतुःशालानि वेश्मानि यानि तेषां शतद्वयम् ।
पञ्चाशच्चाधिका षड्भिर्विज्ञातव्या मनीषिभिः ॥ ३ ॥

सहस्रं पञ्चशालानां स्यात् तथा पञ्चविंशतिः ।
षट्शालानां षण्णवतिः स्यात् सहस्रचतुष्टयम् ॥ ४ ॥

अष्टाङ्गे त्वेकशालस्य भेदाः पञ्चाशदीरिताः ।
द्विशालानां तु सर्वेषां प्रभेदाः शतपञ्चकम् ॥ ५ ॥

शतं शतं च प्रत्येकं त्रिशालानामुदाहृतम् ।
द्विचत्वारिंशदधिकं चतुःशालैशताष्टकम् ॥ ६ ॥

द्विनवत्युत्तराण्येवं शतानि दश सप्त च ।
षोडशैव सहस्राणि षोडशोना चतुःशती ॥ ७ ॥

---

१. 'तु' ख. पाठः । २. 'प्रोक्तमष्टाधिकं शतम्' क. पाठः । ३. 'ला' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वेश्मानि सप्तशालानि भवन्ति परिसङ्ख्यया ।
पञ्चषष्टिसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥ ८ ॥

गृहाणामष्टशालानां षट्त्रिंशदपरा भवेत् ।
लक्षद्वयं सहस्राणि द्विषष्टिः शतमेव च ॥ ९ ॥

गृहाणां नवशालानां चत्वारिंशच्चतुर्युता ।
दशलक्षसहस्राणि चत्वारिंशत् तथाष्ट च ॥ १० ॥

शतानि दशशालानां पञ्च षट्सप्ततिस्तथा ।
गृहद्वितययोगेन संयुक्ताख्यानि विंशतिः ॥ ११ ॥

गृहद्वितययोगेन द्वात्रिंशदिह वेश्मनाम् ।
दशपञ्च तथान्यानि भवन्ति हलकान्यपि ॥ १२ ॥

गृहमालाथ सङ्घट्टो गृहनाभिर्गृहाङ्गणम् ।
उद्भिन्नं भिन्नकर्णं च निलीनं प्रतिपादितम् ॥ १३ ॥

अन्यानि चाष्टभेदानि भवन्त्युत्तमवर्णिनाम् ।
लक्षणं नाम संस्थानं चैतेषां प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥

वर्णिनां स्याच्चतुःशालं मितं द्वात्रिंशता करैः ।
सेनापतेश्चतुःषष्टिस्तद्वदेव पुरोधसः ॥ १५ ॥

श्रेष्ठमष्टशतं राज्ञामेतानि तु यथाक्रमम् ।
चतुःषडष्टहान्या स्युः पञ्चमं च पृथक् पृथक् ॥ १६ ॥

विशोधयेत् कनीयोभिर्मध्यमानि यथाक्रमम् ।
नरेन्द्रपुरुषाणां स्युर्वेश्मान्येतानि वृद्धये ॥ १७ ॥

गृहाणि शोधयेत् प्राग्वज्ज्यायांस्यपि च मध्यमैः ।
भवन्त्येतानि भूपानां रतिकोशप्रतिश्रयाः ॥ १८ ॥

दशांशयुक्तो विस्तारादायामो विप्रवेश्मनाम् ।
अष्टषट्चतुरंशाढ्यः क्षत्रादित्रयवेश्मनाम् ॥ १९ ॥

यो विस्तारः स एव स्यादायामोऽस्मिन् यथाक्रमम् ।
विट्शूद्रयोः स्यादाधिक्यं मध्ये ज्येष्ठे च सद्मनि ॥ २० ॥

---

१. 'च' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कर्णसूत्राद् बहिः स्तम्भान् न्यसेत् सर्वान् प्रयत्नतः ।
धाम्नां षोडशहस्तानां पञ्चानां चतुरुत्तरा ॥ २१ ॥

वृद्धिः शालास्तु तेषां स्युश्चतुरंशेन विस्तृताः ।
शालाव्यासार्धतोऽलिन्दः सर्वेषामपि वेश्मनाम् ॥ २२ ॥

तस्याः षोडशहस्ते स्यात् पञ्चमांशद्वयेन वा ।
सप्तमांशत्रयेण स्याद् द्वयोरपरवेश्मनोः ॥ २३ ॥

अन्त्ययोर्हस्तयोः स स्याच्चतुर्भिर्नवमांशकैः ।
पञ्चभिः षड्भिरेभिश्च सार्धैः साङ्घ्रिनगैः करैः ॥ २४ ॥

दैर्घ्यं स्याद् दशभिः सार्धैः शालायाः षोडशादिषु ।
निवेशदशमांशो यः स युतः सप्तभिः करैः ॥ २५ ॥

शालाया विस्तरः प्रोक्तः श्रेष्ठानामिह वेश्मनाम् ।
अलिन्दमानं प्रागेव प्रोक्तं निखिलवेश्मनाम् ॥ २६ ॥

यच्छालालिन्दयोः शेषं भवेद् गर्भगृहं हि तत् ।
मूषावच्छिन्नमिच्छन्ति शालादैर्घ्यं विपश्चितः ॥ २७ ॥

शालाव्यासप्रमाणा स्यात् सर्वेषामवकोसिमा ।
दिशासु भवने शाला विदिशाकर्णसामयः(?) ॥ २८ ॥

कर्णशाला (त?तु) या प्रोक्ता सा च ज्ञेयावकोस्मिमा ।
अलिन्दशालयोर्मध्ये या स्यान्मूषेति सा स्मृता ॥ २९ ॥

*पूर्वद्वारं नियम्यादावादिमूषा तदुत्तरा ।
मूषा भद्रा इति प्राहुस्तत्संख्यामवधारयेत् ॥ ३० ॥

यावन्मूषं भवेद् वेश्म तावद् भद्रं तदुच्यते ।
भद्राभद्रे शक्रदिक्स्थे सौम्यासौम्ये यमाश्रिते ॥ ३१ ॥

शान्ताशान्ते प्रतीचीस्थे सौम्यदिक्स्थे शिवाशिवे ।
अलिन्दा इति केऽप्याहुर्मूषा इत्यपरे विदुः ॥ ३२ ॥

---

१. 'स्यां' क. पाठः । २. 'साङ्घ्रि' ख. पाठः । ३. 'विच्छि', ४. 'मा', ५. 'न्मूखेति', ६. 'खा' क.पाठः । ७. 'सां' ख. पाठः ।

* 'पूर्वद्वारमियं यावदादिमूषा' इति पाठः स्यात् ।

"Aho Shrut Gyanam"

भद्रा इति जगुः केचिदन्ये परिसरा इति ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ता(ष्टौ?ष्ट)क्रमेण याः ॥ ३३ ॥
मूषास्तासां प्रवहणासंज्ञाः स्युर्वेश्मनामिह ।
तासामाद्याः प्रशस्ताः स्युरप्रशस्तास्ततः पराः ॥ ३४ ॥
नामतो गुणतश्चैव शुभाशुभफलोदयात् ।
अष्टावादौ गुरून् न्यस्येत् ततश्चाद्यगुरोरधः ॥ ३५ ॥
लघुं न्यस्येत् ततः शेषान् विदधीत यथोपरि ।
गुरुभिः पूरयेदादिं यावत् स्युर्लघवोऽखिलाः ॥ ३६ ॥
§ आद्यपङ्क्तौ गुरुश्चैको लघुश्चैको यथाक्रमम् ।
अतः परं तु द्विगुणाः प्रतिपङ्क्ति भवन्त्यमी ॥ ३७ ॥
मूषाभेदाश्चतुःशाले षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ।
अलिन्दवीथीप्रग्रीवनिर्यूहकगवाक्षकैः ॥ ३८ ॥
तमङ्गभद्रविन्यासरचनाभिरनेकधा ।
अपरस्परसंबाधात् संवृतैर्विवृतैरपि ॥ ३९ ॥
गृहभेदाः प्रसूयन्ते येषां संख्या न विद्यते ।
यत्संबद्धचतुश्शालमभूषालिन्दकं हि तत् ॥ ४० ॥
एकभद्रादिगेहानां ब्रूमो नामान्यतः परम् ।
यान्येकलघुकक्षाणि प्रस्तारे तानि तद्विदः ॥ ४१ ॥
कथयन्त्येकभद्राणि क्रमसंख्याविभागतः ।
प्रागायतं प्राग्विलग्नं जयं संयमनप्रियम् ॥ ४२ ॥
प्रतीच्यं प्रासविन्यासं सुभद्रं कलहोत्तरम् ।
अष्टौ तान्येकभद्राणि द्विभद्राण्यभिदध्महे ॥ ४३ ॥

---

१. 'गाः सं', २. 'यः' क. पाठः । ३. 'अष्टधादौ' ख. पाठः । ५. 'बद्धं च' क. पाठः ।

---

§ 'आद्यपङ्क्तौ प्रथमायामावलौ एको गुरुः, तस्याधस्तादपरो लघुः कर्तव्यः । एवं यथाक्रमं प्रस्तारसंख्याकमित्यालिखेत् । तद्यथा — चतुर्गुरुप्रस्तारे षोडश गुरुलघवः । ततस्तदग्रतो द्वौ गुरू द्वौ लघू इति एकैकस्याधो न्यसेत् । तदग्रतोऽपि चत्वारो गुरवश्चत्वारो लघवः । ततोऽपि अष्टौ गुरवः अष्टौ लघवः । एवं प्रतिपङ्क्ति द्विगुणान् गुरुलघून् न्यसेत् । अयमपरः प्रस्तारः ।' इति टिप्पणमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

पूर्वोत्तरोत्तरं पूर्वाद् भद्रादिह विधानतः ।
स्यातां प्राग्मेलकाद्यद्वत् पूर्वाद्या दक्षिणा परे(?) ॥ ४४ ॥

ईरं सुनीथमाग्नेयं [3]द्वीपमाप्यं सुसंयमम् ।
अर्धचैमभं व्याकोशं नैर्ऋतं वृषभं विनम् ॥ ४५ ॥

काव्यं विपासमानीरं कान्तं सौभं विपश्चिमम् ।
गवयं श्रीवहं श्लिष्टं गणं भीममयोगमम् ॥ ४६ ॥

वर्तं चलं शठं क्रान्तमित्यष्टात्रिंशको गणः ।
द्विभद्राणां समाख्यातस्त्रिभद्राणामतः परम् ॥ ४७ ॥

ऐन्द्रं विलोममायामं वधमेकाक्षमन्तिकम् ।
प्रकाशं पैत्रमायस्तं भद्रं मान्तं प्रसाधकम् ॥ ४८ ॥

क्षेमं विघातमायातं कान्तं चित्रं द्विमन्दिरम् ।
सुदक्षिणं भयं श्लिष्टं प्रमोदं व्यायतं वियत् ॥ ४९ ॥

आप्यं सुनागं नागेन्द्रमीरितं शोभनं घनम् ।
प्रस्तोत्तरं कर्कं कर्णं कुष्टं कान्तं क्रमागतम् ॥ ५० ॥

द्विशस्तं द्विभयं प्रोक्तं चक्रं मलयमायतम् ।
वनं भारं सुगाराख्यमागारं वीरमेव च ॥ ५१ ॥

व्यायाममायुतं तद्वद् व्याहृतं च ततः परम् ।
दुर्गमं क्षोभसंज्ञं च कृत्रिमं क्षोभणं तथा ॥ ५२ ॥

चारुरुच्याभिधानं च ध्रुवं कथमिति क्रमात् ।
षट्पञ्चाशत् त्रिभद्राणि चतुर्भद्राण्यतः परम् ॥ ५३ ॥

कृतमर्चायनं पौष्णमुद्धतं मिश्रमुत्सुकम् ।
विघ्नं विपक्षमाहूतं रुचकं वर्धनं पृथु ॥ ५४ ॥

* कलहं छलमायास्यं तिनाभं स्वस्तिकं स्थिरम् ॥ ५५ ॥

---

१. 'प्राक्षेलिका' ख. पाठः । २. 'तमा' क. पाठः । ३. 'दीप्यं वाप्यसु', ४. 'कव्यं विकाशमा', ५. 'तम्', ६. 'मान्तकम्' ख. पाठः । ७. 'क्षेमं', ८. 'अप्यं', ९. 'मसं', १०. 'ध्रुक्' क. पाठः । ११. 'चल' ख. पाठः ।

---

* वक्ष्यमाणलक्षणश्लोके तु कलभमिति पठ्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

शरलं द्विगुणं नाथं चित्रं भ्रान्तं विधारणम् ।
साधारणं नतं त्र्यंशमृपं रोगं विशेषणम् [§] ॥ ५६ ॥
प्रतीच्यं त्रिसमं स्वैरं सुप्रतीकं नलं क्षपम् ।
व्यासमाक्रीडनं व्यर्थमीशानं सुखमव्ययम् ॥ ५७ ॥
मगधं क्षिप्रमागस्त्यमेकोजं द्विजं विहम् ।
पर्कं विलोममुदण्डं मुण्डं मातङ्गमाखिलम् [‡] ॥ ५८ ॥
खर्वं पिनाकमुद्यन्तं विशिखं प्रसभं रजम् ।
(चुरु?रुच)कं (स?सै)फलं वामं वर्धनं धावनं सहम् ॥ ५९ ॥
चयं सेव्यं कलं तीर्णं चतुर्भद्राणि सप्ततिः ।
पञ्चभद्राण्यथोच्यन्ते षट्पञ्चाशदनुक्रमात् ॥ ६० ॥
कानलं लोलुपं जिह्मं प्रगल्भं लाङ्गिनं जिनम् ।
सुजयं विजयं यायं जयं आर्तं जपं तपम् ॥ ६१ ॥
जमं वरं चरं वैरं [†] विशिपं सुप्रभं प्रभम् ।
प्रतीक्षं क्षेमिणं युक्तं शान्तं खेलं विनोदनम् ॥ ६२ ॥
सन्दोहं विप्रदोहं च विद्रुतं सततं ततम् ।
व्याकुलं लीनमालीनं विचित्रं लम्बनं खरम् ॥ ६३ ॥
शेखरं विबुधं चैत्रं व्यासक्तं संपदं पदम् ।
त्रिशिखं चतुरं प्रातं सुस्थितं दुःस्थितं स्थितम् ॥ ६४ ॥
चक्रं वक्रं लयं लाभं संपर्कं मूलमव्ययम् ।
अष्टाविंशतिरन्यानि षड्भद्राणि निबोधत ॥ ६५ ॥
किन्नरं कौस्तुभं हर्म्यं धार्मिकं निषधं वसु ।
साबीकं वामनं गौरमस्थिरं रुक्मिणं खलम् ॥ ६६ ॥
स्थिरं वालिशं धौमं त्रिपुष्टं मन्दिरं भवम् ।
अशोकं भास्वरं चौष्पं लातव्यं सुस्वनं मखम् ॥ ६७ ॥

१. 'क्षि' क. पाठः । २. 'न' ख. पाठः । ३. 'निषिधं' क. पाठः ।
४. 'खरम्', ५. 'वालिसं' ख. पाठः ।

§ लक्षणे तु विशोपणमिति पठ्यते । ‡ ख. पुस्तकेऽर्धमिदं लुप्तम् । + ख. पुस्तकदृष्ट-लक्षणपाठरीत्या तु विरोपमिति पाठ्यम् ।

वाजि नेत्रं भ्रमं घोषं सप्तभद्राण्यतः परम् ।
भाण्डीरं *वैसहं प्रस्थं प्रतानं वासुलं कटम् ॥ ६८ ॥
लक्ष्मीवासं सुगन्धान्तमष्टधैतानि नामतः ।
अन्यच्च सर्वतोभद्रमेकं भद्राभिरष्टभिः ॥ ६९ ॥
संप्रकल्प्यं चतुःशालं ब्रूमश्चैषां शुभाशुभम् ।
प्रदक्षिणा शुभा मूषा विपरीता विपर्यये ॥ ७० ॥
समवाये यथा भूयो जानीयात् साध्वसाधु च ।
तथाष्टावेकभद्राणि सप्तभद्राणि च क्रमात् ॥ ७१ ॥
द्विभद्राण्यष्टभिर्युक्ता षड्भद्राणि च विंशतिः ।
षट्पञ्चाशत् त्रिभद्राणि पञ्चभद्राणि चोन्नयेत् ॥ ७२ ॥
सप्ततिश्च चतुर्भद्राण्येकं भद्राभिरष्टभिः ।
एवं शतद्वयं पिण्डः षट्पञ्चाशच्च वेश्मनाम् ॥ ७३ ॥
भद्रैः पूर्वविधानेन चतुःशालाक्रियादिषु ।
मूषा स्यात् कुड्यजैस्तेषु चतुश्शालेषु वेश्मसु ॥ ७४ ॥
अनुवंशाश्रिते मूषे स्वस्तिके तत्पराङ्मुखे ।
मुखायते च पुरतो द्वे स्यातामवकोशिमे ॥ ७५ ॥
नोदङ्मुखः स कर्तव्यः कार्यः प्राग्जीवसंयुतः (?) ।
वर्धमाने तथा का(र्ये?र्यो) यथा प्राग्ग्रीवसंयुतः ॥ ७६ ॥
वर्धमाने तथा कार्ये द्वारमूषे मुखायते ।
मूषाया दक्षिणे स्यातां दीर्घवामेऽवकोसिमे ॥ ७७ ॥
नन्द्यावर्तगृहे सर्वा नन्द्यावर्ता भवन्ति ताः ।
द्वे(स्तरु?मू)षे रुचके स्यातामायते त्ववकोसिमे ॥ ७८ ॥
सर्वद्वारवहा मूषाः सर्वतोभद्रवेश्मनि ।
आदिमूषा भवेदेका गृहं प्रागायतं हि तत् ॥ ७९ ॥
द्वितीयया प्राग्विलग्नमेकया तदनन्तरम् ।
प्रदक्षिणेन वेश्मानि जयादीन्येकयैकया ॥ ८० ॥

---

१. 'सभं' क. पाठः ।

---

* लक्षणानुसाराद् वैसनमिति पाठ्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

मूषया स्युः क्रमादेवं कथ्यन्ते तत्फलान्यथ ।
धनमर्थविनाशश्च जयश्चैत्राशुभं सदा ॥ ८१ ॥

प्रीतिरुद्वेगकल्याणकलहाश्चाप्यनुक्रमात् ।
यत्र पूर्वे उभे मूषे तदीरं परिकीर्तितम् ॥ ८२ ॥

यत्र पूर्वा तृतीया च तत् ‡ सुनीतं गृहं विदुः ।
आग्नेये द्वितृतीये स्तो द्वीपे चाद्यचतुर्थके ॥ ८३ ॥

द्विचतुर्थ्यौ तथाचाप्ये त्रिचतुर्थ्यौ सुसंयमे ।
अर्धर्चे त्वाद्यपञ्चम्यौ द्वितीयेभे सपञ्चमी ॥ ८४ ॥

व्याकोशे च त्रिपञ्चम्यौ नैर्ऋते द्विशराभिधे ।
वृषभे प्रथमाषष्ठ्यौ द्विषष्ठ्यौ च तथा त्रिने ॥ ८५ ॥

काव्ये तृतीया षष्ठी च त्रिपासेऽब्धिरसाभिधे ।
आनीरे पञ्चमीषष्ठ्यौ साद्या कान्ते च सप्तमी ॥ ८६ ॥

सौभे[1] द्वितीयासप्तम्यौ त्रिसप्तम्यौ विपश्चिमे[2] ।
गवये सप्तमीतुर्ये श्रीवहे पञ्चसप्तमी ॥ ८७ ॥

सषष्ठी सप्तमी श्लिष्टे गणे पूर्वाष्टमी तथा ।
भीमेऽष्टमी द्वितीया च त्र्यष्टम्यौ चाप्ययोगमे ॥ ८८ ॥

वर्ते चतुर्थी षष्ठी च पञ्चमी चाष्टमी चले ।
षष्ठ्यष्टम्यौ शठे क्रान्ते सप्तमी चाष्टमीति च ॥ ८९ ॥

इत्यष्टाविंशतिः प्रोक्ता द्विभद्राणामिहौकसाम् ।
अथ ब्रूमस्त्रिभद्राणि तत्रैन्द्रं पुष्टिवर्धनम् ॥ ९० ॥

स्याद् याम्यपश्चिमद्वारमाद्यमूषात्रयान्वितम् ।
आद्या द्वितीया तुर्या च यस्य द्वारं विपश्चिमम् ॥ ९१ ॥

विलोमं नाम तद् वेश्म शूद्राणां पुष्टिवर्धनम् ।
आद्या तृतीया तुर्या स्यादायामे सर्वतोमुखे ॥ ९२ ॥

धधे द्वित्रिचतुर्थ्यः स्युर्द्वारं च स्यादुदग्दिशि ।
यत्र साद्ये द्विपञ्चम्यात्रैकाक्षं तदुदाहृतम् ॥ ९३ ॥

---

१. 'शोभे' क. पाठः । २. 'ते' ख. पाठः ।

---

‡ लक्ष्यानुसारात् तु सुनीथमिति पाठ्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

साद्ये यत्र द्विपञ्चम्यौ तत् प्रोक्तं गृहमन्तिकम् ।
यत्र स्युर्द्वित्रिपञ्चम्यः प्रकाशं सर्ववृद्धिकृत् ॥ ९४ ॥

पूर्वा चतुर्थीपञ्चम्यौ यत्र तत् पैत्रमुच्यते ।
पञ्चमी द्विचतुर्थ्यौ च यत्रायस्तं तदीरितम् ॥ ९५ ॥

त्रिचतुःपञ्चमीयुक्तं भद्रमाहुर्मनीषिणः ।
आद्या द्वितीया[1] षष्ठी च यत्र तत् प्रान्तशब्दितम् ॥ ९६ ॥

आद्या तृतीया षष्ठी च स्यात् प्रसाधकवेश्मनि ।
तद् भवेत् सर्वतोद्वारं तथा सर्वार्थसाधकम् ॥ ९७ ॥

द्वितीया च तृतीया च षष्ठी च क्षे[2]मनामनि ।
तस्य प्रत्यग्दिशि द्वारं शूद्रवर्गस्य चेष्टदम् ॥ ९८ ॥

षष्ठी चतुर्थी चाद्या च स्युर्विघातारुयवेश्मनि ।
षष्ठी द्वितुर्ये यस्मिंस्तदायातं दक्षिणामुखम् ॥ ९९ ॥

षट्चतुस्त्रियुतं कान्तं तत् स्यात् सर्वार्थसाधकम् ।
षट्पञ्चाद्या[3]न्वितं चिलं तच्च स्याद् याम्यदिङ्मुखम् ॥ १०० ॥

द्वितीयापञ्चमीषष्ठ्यो यस्मिन् स्युस्तद् द्विमन्दिरम् ।
यत्र त्रिपञ्चमीषष्ठ्यस्तद् वदन्ति सुदक्षिणम् ॥ १०१ ॥

चतुर्थीपञ्चमीषष्ठ्यो भये स्युस्तच्च वृद्धिकृत् ।
पूर्वाद्वितीयासप्तम्यो यत्र तच्छ्लिष्टसंज्ञितम् ॥ १०२ ॥

याम्यास्यमिदमिच्छन्ति शुभं सर्वार्थदं नृणाम् ।
साद्ये तृतीयासप्तम्यौ प्रमोदे परिकीर्तिते ॥ १०३ ॥

यत्र स्युर्द्वित्रिसप्तम्यस्तद् वेश्म व्यायतं स्मृतम् ।
यत्राद्या च चतुर्थी च सप्तम्यपि च तद् वियत् ॥ १०४ ॥

द्विचतुःसप्तमीमूषमाप्यं स्याद् दक्षिणामुखम् ।
त्रिचतुस्सप्तमीभिस्तु सुनागं वेश्म कीर्त्यते ॥ १०५ ॥

तच्च याम्यापरमुखं धनधान्यसुखप्रदम् ।
सप्तमी पञ्चमी पूर्वा मूषा नागेन्द्रसंज्ञिते ॥ १०६ ॥

---

१. 'तृती', २. 'क्षे', ३. 'द्योच्छ्रितं' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

मूषा द्विपञ्चसप्तम्यो याम्यं च मुखमीरिते ।
त्रिपञ्चसप्तमीमूषाशोभितं शोभनं भवेत् ॥ १०७ ॥

चतुर्थी पञ्चमी यत्र सप्तम्यपि च तद् घनम् ।
पूर्वा षष्ठी सप्तमी च स्मृता शस्तोत्तरे गृहे ॥ १०८ ॥

द्वितीयासप्तमीषष्ठ्यो यस्मिंस्तत् कफसंज्ञितम् ।
द्वारं वारुणमेतस्य हितं च स्याद् द्विजन्मनाम्॥ १०९ ॥

कर्णं स्यात् पश्चिमद्वारं त्रिषष्ठीसप्तमीयुतम् ।
चतुर्थीसप्तमीषष्ठ्यो मूषाः स्युः क्रुष्टसंज्ञिते ॥ ११० ॥

सप्तमीपञ्चमीषष्ठीयुक्तं क्रान्तं यशस्करम् ।
आद्याष्टमी द्वितीया च मूषा प्रोक्ता क्रमागते ॥ १११ ॥

आद्याष्टमी तृतीया च द्विशस्ते भवने स्मृताः ।
यत्राष्टमी त्रिद्वितीये द्विभयं तदुदाहृतम् ॥ ११२ ॥

आद्याष्टमी चतुर्थी च यत्र तच्चक्रसंज्ञितम् ।
तुर्याष्टमी द्वितीया च यत्र तन्मलयं विदुः ॥ ११३ ॥

तुर्याष्टमी तृतीया च यत्र तत् प्रोक्तमायतम् ।
आद्याष्टमी पञ्चमी च स्याद् यस्मिंस्तद् वनं स्मृतम् ॥ ११४ ॥

द्वितीया पञ्चमी मूषा यत्र स्यादष्टमी तथा ।
तद् भाराख्यमुदग्वक्त्रं शुभं विघ्नकृदन्यथा ॥ ११५ ॥

त्रिपञ्चम्यष्टमीभिस्तु सुगारं परिकीर्त्तितम् ।
यत्राष्टमी तदागारं चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ ११६ ॥

यस्मिन्नाद्याष्टमीषष्ठ्यो वीरं तदिह कीर्त्तितम् ।
षष्ठ्यष्टमी द्वितीया च गृहे व्यायामनामनि ॥ ११७ ॥

षष्ठ्यष्टमीतृतीयाभिर्मूषाभिः प्रोक्तमायुतम् ।
षष्ठ्यष्टमीचतुर्थ्यः स्युर्यत्र तद् व्याहृतं विदुः ॥ ११८ ॥

षष्ठ्यष्टमीपञ्चमीभिर्दुर्गमं व्याधिकृन्मतम् ।
आद्याष्टमीसप्तमीभिः संयुक्तं क्षोभमुच्यते ॥ ११९ ॥

द्विसप्तम्यष्टमीयुक्तं गृहं कृत्रिमसंज्ञितम् ।
त्रिसप्तम्यष्टमीभिस्तु मूषाभिः क्षोभणं भवेत् ॥ १२० ॥

"Aho Shrut Gyanam"

चारुरुच्यं चतुःसप्तम्यष्टमीभिः समन्वितम् ।
सप्तपञ्चम्यष्टमीभिर्युक्तं ध्रुवमिति स्मृतम् ॥ १२१ ॥

षट्सप्तम्यष्टमीयुक्तं कथं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
इत्युक्तानि त्रिभद्राणि शस्तान्येतेषु यानि च ॥ १२२ ॥

तानि नित्यं प्रयोज्यानि वर्णानां च मनीषिभिः ।
आद्याश्चतस्रो मूषाः स्युर्यत्र तत् कृतसंज्ञितम् ॥ १२३ ॥

सर्वद्विगुणकृत् पूर्वमत्यग्द्वारं नचान्यथा ।
आद्यास्तिस्रः पञ्चमी च यस्मिन्नर्चायनं हि तत् ॥ १२४ ॥

तद् भवेत् पश्चिमद्वारं गृहं सर्वगुणान्वितम् ।
यस्मिन्नाद्या द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥ १२५ ॥

तत् पौष्णं दक्षिणद्वारं सर्ववृद्धिकरं नृणाम् ।
(आ?द्या)द्यास्तिस्रस्तथाद्या च यस्मिंस्तद् गृहमुद्गतम् ॥ १२६ ॥

द्वारेण पश्चिमेनैतच्छस्यते दक्षिणेन वा ।
द्व्याद्याश्चतस्रो यत्र स्युस्तन्मिश्रं प्रीतिवर्धनम् ॥ १२७ ॥

प्रशस्तं क्षत्रियादीनां तस्य द्वाः प्राच्यपाचि वा ।
आद्यास्तिस्रस्तथा षष्ठी यस्मिन् मूषास्तदुत्सुकम् ॥ १२८ ॥

तच्छस्तं पश्चिमद्वारं विप्रादीनां जयावहम् ।
आद्या द्वितीया तुर्या च मूषा षष्ठी च यत्र तत् ॥ १२९ ॥

याम्यांप्रत्यङ्मुखं शस्तं त्रिघ्नं नाम कुलर्द्धिकृत् ।
आद्या तृतीया तुर्या च यस्मिन् षष्ठी च तच्छुभम् ॥ १३० ॥

विपक्षं नाम धाम स्याद् द्वारमस्य च पश्चिमम् ।
द्व्याद्यास्तिस्रो गृहे यस्मिन् मूषा षष्ठी च तच्छुभम् ॥ १३१ ॥

स्याद् याम्यपश्चिमद्वारमाहूतं नाम तद् गृहम् ।
आद्याद्वितीयापञ्चम्यो यत्र षष्ठी च तद् भवेत् ॥ १३२ ॥

रुचकं नाम याम्यप्राग्द्वारं सकलकामदम् ।
एकत्रिपञ्चषष्ठ्यः स्युर्यत्र तद्धमानकम् ॥ १३३ ॥

---

१. 'म्यप्र' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्ण्यस्य वृद्धिदम् ।
यत्र स्युर्द्वित्रिपञ्चम्यो मूषाः षष्ठी च तद्[1] गृहम् ॥ १३४ ॥

स्यात् पूर्वदक्षिणद्वारं प्रथितं पृथुसंज्ञया ।
यस्मिन्नाद्याचतुःपञ्चषष्ठ्यस्तत् कलभं विदुः ॥ १३५ ॥

गुणैरुपेतं सकलैरुदग्द्वारं निकेतनम् ।
द्विचतुःपञ्चमीषष्ठ्यो यस्मिंस्तच्छैल[2]मुच्यते ॥ १३६ ॥

दक्षिणं मुखमेतस्य पश्चिमं वा प्रशस्यते ।
चतस्रस्त्र्यादयो यस्मिन्नायास्यं तदुदीरितम् ॥ १३७ ॥

अप्रशस्तं वदन्त्येतत् तद्विदो भवनाधमम् ।
आद्यास्तिस्रः सप्तमी च मूषाः स्युर्यत्र तद् गृहम् ॥ १३८ ॥

त्रिनाभमुत्तरद्वारं शस्तं सर्वगुणान्वितम् ।
आद्याद्वितुर्यासप्तम्यो यत्र तत् स्वस्तिकं स्मृतम् ॥ १३९ ॥

प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चातुर्वर्ण्येऽपि शस्यते ।
आद्या[3]चतुर्थीसप्तम्यो मूषाः स्युर्यत्र वेश्मनि ॥ १४० ॥

तदिह स्थिरमित्युक्तं द्वारं चैतस्य दक्षिणम् ।
आद्यास्तिस्रः सप्तमी च यत्र तत् सरलं विदुः ॥ १४१ ॥

तद् भवेत् पश्चिमद्वारं सर्वदोषोज्झितं गृहम् ।
यत्राद्या च द्वितीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४२ ॥

द्विगुणं नाम तद् वेश्म द्वारं चास्य यथेप्सितम् ।
आद्यातृतीयापञ्चम्यः सप्तम्यपि च यत्र तत् ॥ १४३ ॥

नाद्यं नामातिशीलाद्यं(?)प्रशस्तं सर्वदेहिनाम् ।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी गृहे ॥ १४४ ॥

यत्र तच्चित्रनामेष्टद्वारं चित्रगुणैर्वृतम् ।
आद्याचतुर्थीपञ्चम्यो यत्र स्युः सप्तमी तथा ॥ १४५ ॥

तद् भ्रान्तं नाम पूर्वोदग्द्वारं भवनमृद्धिकृत् ।
यत्र द्वितीया तुर्या च स्यात् षष्ठी सप्तमी तथा ॥ १४६ ॥

---

१. 'त्र' क. पाठः । २. 'श्चल', ३. 'द्यान्विद्वुर्यास' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

विधारणं गृहं तत् स्यात् सर्वकामविवर्धनम् ।
तृतीया यत्र तुर्या च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥ १४७ ॥

तत् साधारणमित्याहुः सर्वद्वारं सुखावहम् ।
आद्या द्वितीया षष्ठी च सप्तमी यत्र तन्नतम् ॥ १४८ ॥

आद्या द्वितीया षष्ठी च[1] त्र्यंशे स्यात् सप्तमी तथा ।
द्वितीया च तृतीया च ऋषे षष्ठी च सप्तमी ॥ १४९ ॥

आद्या तुर्या च षष्ठी च रोगे स्यात् सप्तमी तथा ।
यत्र द्वितीया तुर्या च स्यात् षष्ठी सप्तमी च तत् ॥ १५० ॥

विशोषणं नाम गृहं दक्षिणोत्तरदिङ्मुखम् ।
तृतीया यत्र तुर्या च स्यात् षष्ठी सप्तमी गृहे ॥ १५१ ॥

प्रतीच्यमीप्सितद्वारं तद् गृहं सर्वकामदम् ।
यत्राद्यापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यस्त्रिसमं हि तत् ॥ १५२ ॥

प्रभूतवृद्धिदं वेश्म समस्तैरन्वितं गुणैः ।
द्वितीयापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यो यत्र वेश्मनि ॥ १५३ ॥

तदिह स्वैरमित्याहुर्धनधान्यसुखावहम् ।
तृतीयापञ्चमीषष्ठीसप्तम्यो द्वारमुत्तरम् ॥ १५४ ॥

पश्चिमं वा भवेद् यत्र सुप्रतीकं च वृद्धिकृत् ।
तुर्याद्याभिश्चतसृभिर्नलमुत्तरदिङ्मुखम् ॥ १५५ ॥

आद्याद्विश्यष्टमीभिः स्यात् सर्वरुग्भीतिकृत् क्षयम् † ।
व्यासे पूर्वा द्वितीया च स्याच्चतुर्थी तथाष्टमी ॥ १५६ ॥

आद्यातृतीयातुर्याः स्युराक्रीडे तद्वदष्टमी ।
आद्यास्तिस्रः क्रमाद् व्यर्थे मूषाः स्यादष्टमी तथा ॥ १५७ ॥

ईशानाख्ये स्युराद्याद्वित्रिपञ्चम्योऽष्टमी तथा ।
पूर्वाष्टमीत्रिपञ्चम्यो यस्मिंस्तत् सुखसंज्ञितम् ॥ १५८ ॥

तत् पूर्वदिङ्मुखं वृद्ध्यै जायते हानयेऽन्यथा ।
यत्र स्युरष्टमीद्वित्रिपञ्चम्यस्तदिहाव्ययम् ॥ १५९ ॥

---

1. 'च सप्तमी यत्र तन्नतम् ।' क. पाठः ।

---

† क्षयमिति लक्ष्ये पठितम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वारं यथेष्टमेतस्य वास्तुविद्याविदो जगुः ।
यस्मिन् पूर्वाष्टमीतुर्यापञ्चम्यो मगधं हि तत् ॥ १६० ॥

प्रागुदक्पश्चिमद्वारमिदं शंसन्ति सूरयः ।
यत्र द्वितुर्यापञ्चम्यो मूषाः स्युस्तद्वदष्टमी ॥ १६१ ॥

तत् क्षिप्रं नाम सुखकृद् यथेष्टं द्वारमिष्यते ।
त्रिपञ्चम्यष्टमीतुर्या आगस्त्ये पश्चिमामुखे ॥ १६२ ॥

द्वितीयाद्याष्टमीषष्ठ्यो यत्रैकोजं तदुच्यते ।
तृतीयाद्याष्टमीषष्ठ्यो यत्र तद् द्विगतं गृहम् ॥ १६३ ॥

द्वित्रिषष्ठ्योऽष्टमी चापि यस्मिंस्तल्लिँहमुच्यते ।
आद्यातुर्याष्टमीषष्ठ्यो यत्र तत् पर्कमुच्यते ॥ १६४ ॥

षष्ठ्यष्टमीद्वितुर्याभिः(?) स्याद् विलोमाभिधं गृहम् ।
षष्ठ्यष्टमीद्वितुर्याभिरुद्दण्डमिति कीर्तितम् ॥ १६५ ॥

यस्मिन्नाद्याष्टमीषष्ठीपञ्चम्यो मुण्डमेव तत् ।
द्विपञ्चम्यष्टमीषष्ठ्यो मूषा मातङ्गसंज्ञिते ॥ १६६ ॥

त्रिपञ्चम्यष्टमीषष्ठ्यो भवन्त्यस्खलनामनि § ।
तत् खर्वनाम तुर्याद्यास्तिस्रो यस्मिंस्तथाष्टमी ॥ १६७ ॥

आद्याद्वितीयासप्तम्यः पिनाके स्युस्तथाष्टमी ।
त्रिसप्तम्यष्टमीपूर्वा यत्रोद्यन्तं तदुच्यते ॥ १६८ ॥

अष्टमीद्वित्रिपञ्चम्यो यस्मिंस्तद् त्रिशिखं गृहम् ।
आद्याचतुर्थीसप्तम्यः प्रसभे स्युस्तथाष्टमी ॥ १६९ ॥

रजे द्वितुर्यासप्तम्यो मूषाः स्युस्तद्वदष्टमी ।
त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्या यत्र तद् रुचकं विदुः ॥ १७० ॥

प्राक्प्रत्यग्द्वारमेतस्य शूद्राणामतिवृद्धिदम् ।
सप्तम्याद्याष्टमी मूषा पञ्चम्यपि च सैफले ॥ १७१ ॥

वामे द्विपञ्चसप्तम्यो मूषा ज्ञेयास्तथाष्टमी ।
त्रिपञ्चसप्तम्यष्टम्यो यस्मिंस्तद् वर्धमानकम् ॥ १७२ ॥

---

§ इदमर्धं क. पुस्तके लुप्तम् । लक्षणवाक्यपाठानुसारेण पूर्वत्र लक्ष्यनिर्देशे अस्खलमिति पाठ्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

विशेषतो वृद्धिकरं वैश्यानामिति तद्विदः ।
चतुःपञ्चाष्टसप्तम्यो यस्मिंस्तद् धावनं भवेत् ॥ १७३ ॥

सप्तम्याद्याष्टमीषष्ठ्यो यत्र तत् सहमुच्यते ।
द्विसप्तषष्ठ्यष्टमीभिर्नृपाभिश्रयनं भवेत् ॥ १७४ ॥

षष्ठ्यष्टमीद्विसप्तम्यो (?) यस्मिंस्तत् सेव्यमीरितम् ।
यत्र तुर्याष्टमी षष्ठी सप्तमी चेति तत् कलम् ॥ १७५ ॥

तीर्णे षष्ठ्यष्टमीपञ्चसप्तम्यः सर्वकामदे ।
यत्राद्याः पञ्च तत् प्रोक्तं कानलं सर्वकामदम् ॥ १७६ ॥

एकद्वित्रिचतुःषष्ठ्यो यत्र तल्लोलुपं स्मृतम् ।
आद्यास्तिस्रः पञ्चषष्ठ्यौ यस्मिंस्तज्जिह्ममुच्यते ॥ १७७ ॥

भ्रगाले पञ्चमीषष्ठीतुर्यापूर्वाद्वितीयकाः ।
त्रितुर्यापञ्चमीषष्ठ्यः साद्याः स्युः सालिनाभिधे ॥ १७८ ॥

यत्र द्वित्रिचतुःपञ्चषष्ठ्यस्तज्जिनमुच्यते ।
एकद्वित्रिचतुर्थ्यः स्युः सुजये सप्तमीयुताः ॥ १७९ ॥

पञ्चमीसप्तमीद्वित्रिपूर्वाः स्युर्विजयाभिधे ।
यत्रैकद्विचतुःपञ्चसप्तम्यो यामनाम तत् ॥ १८० ॥

यत्रैकत्रिचतुःपञ्चसप्तम्यस्तज्जयं विदुः ।
मूषा द्वित्रिचतुःपञ्चसप्तम्यो (जा?ज्ञा)तसंज्ञिते ॥ १८१ ॥

आद्यास्तिस्रस्तथा षष्ठीसप्तम्यौ यत्र तज्जपम् ।
आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिः सप्तम्या च तपं विदुः ॥ १८२ ॥

षष्ठीत्रितुर्यासप्तम्यो ज(ये?मे)पूर्वान्विता मताः ।
द्वित्रितुर्यास्तथा षष्ठीसप्तम्यौ वैरसंज्ञिते ॥ १८३ ॥

चरं तद् यत्र पूर्वे द्वे पञ्चषट्सप्तमीयुते ।
*चैत्ये स्यात् सप्तमी षष्ठी पञ्चम्याद्या तृतीयका ॥ १८४ ॥

विरोषे द्वित्रिपञ्चम्यः स्यात् षष्ठी सप्तमी तथा ।
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तम्याद्या च सुप्रभे ॥ १८५ ॥

---

१. 'शुभं', २. 'पर' ख. पाठः ।

---

* क. पुस्तकदृष्टलक्ष्योद्देशरीत्या त्र 'वैरे' इति पाठ्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रभाख्ये द्विचतुःपञ्चषष्ठ्यः स्युः सप्तमी तथा ।
त्रिचतुःपञ्चसप्तम्यः षष्ठी च स्यात् प्रतीक्षके ॥ १८६ ॥
आद्याश्चतस्रो यत्र स्युः साष्टम्यः क्षमिणं हि तत् ।
स(ष?)पूर्वा द्वित्रिपञ्चम्यो युक्तनाम्नि तथाष्टमी ॥ १८७ ॥
शान्ते द्वितुर्यापञ्चम्यः पूर्वा स्यादष्टमी तथा ।
पूर्वात्रितुर्यापञ्चम्यः साष्टम्यश्चैतसंज्ञिते ॥ १८८ ॥
विनोदे द्वित्रिपञ्चम्यश्चतुर्थी चाष्टमी तथा ।
सन्दोहे त्वष्टमीषष्ठ्यौ तिस्रः पूर्वादिकास्तथा ॥ १८९ ॥
आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिरष्टम्या विप्रदोहकम् ।
षष्ठ्यष्टमीत्रितुर्याद्या यस्मिंस्तद् विद्रुतं विदुः ॥ १९० ॥
द्वित्रितुर्याष्टमीषष्ठ्यो यत्र तत् सततं मतम् ।
आद्याद्विपञ्चमीषष्ठ्यस्ततनाम्नि तथाष्टमी ॥ १९१ ॥
आद्यात्रिपञ्चमीषष्ठ्यो व्याकुले स्युस्तथाष्टमी ।
द्वित्रिपञ्चचतुष्षष्ठ्यो विज्ञेया लीनसंज्ञके ॥ १९२ ॥
तुर्याद्यापञ्चमीषष्ठ्य आलीने स्युस्तथाष्टमी ।
द्वितुर्यापञ्चमीषष्ठ्यो विचित्रे तद्वदष्टमी ॥ १९३ ॥
आद्याश्चतस्रो मूषाः स्युः साष्टम्यो लम्बनाह्वये ।
आद्यास्तिस्रोऽष्टमी तद्वत् सप्तम्यपि भवेत् खरे ॥ १९४ ॥
शेखरे सप्तमीतुर्याद्वितीयाद्यास्तथाष्टमी ।
विबुधे त्वष्टमी तुर्या तृतीयाद्याथ सप्तमी ॥ १९५ ॥
चैत्राख्ये ऽष्टमीतुर्यासप्तम्यः सतृतीयकाः ।
आद्याद्विपञ्चसप्तम्यो व्यासक्ताख्ये तथाष्टमी ॥ १९६ ॥
आद्यात्रिपञ्चसप्तम्यः साष्टम्यः सम्पदाभिधे ।
यत्र द्विव्यष्टमीपञ्चसप्तम्यस्तत् पदं विदुः ॥ १९७ ॥
तुर्याद्यापञ्चमी(षष्ठी)सप्तम्यस्त्रिशिखे तथा ।
द्विपञ्चम्यष्टमीतुर्यासप्तम्यश्चतुराभिधे ॥ १९८ ॥
त्रिसप्तम्यष्टमीतुर्यापञ्चम्यः प्रान्तनामनि ।
आद्याद्वितीयासप्तम्यः षष्ठ्यष्टम्यौ च सुस्थिते ॥ १९९ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

दुःस्थितं यत्र षष्ठ्याद्या चतुर्थी सप्तमी तथा ।
स्थितेऽष्टमीद्विसप्तम्यस्त्रिषष्ठ्यावपि च स्मृते ॥ २०० ॥

चक्रे षष्ठयष्टमीतुर्यासप्तम्याद्याः प्रकीर्तिताः ।
[1]वंक्रे द्वितीयासप्तम्यौ षष्ठ्यष्टम्यौ चतुर्थिका ॥ २०१ ॥

लघेऽष्टमीत्रिसप्तम्यस्तुर्याषष्ठ्यौ च कीर्तिते ।
पञ्चमीसप्तमीषष्ठ्यो लाभे पूर्वाष्टमी तथा ॥ २०२ ॥

द्विपञ्चसप्तम्यष्टम्यः षष्ठी संपर्कसंज्ञिते ।
त्रिपञ्चषष्ठीसप्तम्यो मूलनाम्नि तथाष्टमी ॥ २०३ ॥

स्युरष्टसप्तषट्पञ्चचतुर्थ्यस्त्र्यण्ययाभिधे ।
पूर्वाद्या यत्र पण्मुराः किन्नरं नाम तद् गृहम् ॥ २०४ ॥

यत्राद्याः मञ्च सप्तम्या सह तत् कौस्तुभं विदुः ।
पूर्वाद्वित्रिचतुःषष्ठीसप्तम्यो हर्म्यसंज्ञिते ॥ २०५ ॥

सप्तमी पञ्चमी षष्ठी द्वित्रिपूर्वाश्च धार्मिके ।
निषधे द्विचतुःपञ्चषष्ठ्याद्याः सप्तमी तथा ॥ २०६ ॥

त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तम्याद्याः स्युर्यत्र तद् वसु ।
साटीके त्रिचतुःपञ्चद्विषष्ठ्यः स्युस्तथाष्टमी ॥ २०७ ॥

यत्राद्यापञ्चसप्तम्यो वामनं नाम तद् विदुः ।
आद्याद्वित्रिचतुःषष्ठ्यः साष्टम्यो गौरनामनि ॥ २०८ ॥

आद्याद्व्यष्टमीषष्ठ्यः पञ्चमी चास्थिराभिधे ।
क्रमिणे त्रिचतुःपञ्चपूर्वाः षष्ठ्यष्टमी तथा ॥ २०९ ॥

खले पूर्वाष्टमीषष्ठीत्रितुर्याः पञ्चमीयुताः ।
विवरे त्रिचतुःपञ्चद्विषष्ठ्यः स्युस्तथाष्टमी ॥ २१० ॥

आद्याद्वित्रिचतुःसप्तम्यष्टम्यो बालिशाभिधे ।
पूर्वाष्टमीद्वित्रिसप्तपञ्चम्यो धामनामनि ॥ २११ ॥

त्रिपुष्टे द्विचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ।
मन्दिरे त्रिचतुःपञ्चसप्तम्याद्यास्तथाष्टमी ॥ २१२ ॥

---

१. 'नक्रे' ख. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

भवे द्वित्रिचतुःपञ्चम्यष्टम्यः सप्तमी तथा ।
अशोके द्वित्रिषट्सप्तम्यष्टम्यः पूर्वया सह ॥ २१३ ॥
भास्वरे द्विचतुःषष्ठ्यः सप्तम्याद्याष्टमीयुता ।
त्रिसप्तम्यष्टमीषष्ठीतुर्याद्याश्चौष्यसंज्ञिते ॥ २१४ ॥
द्वित्रितुर्याष्टमीषष्ठ्यो लातव्ये सप्तमी तथा ।
द्विसप्तम्यष्टमीषष्ठीपञ्चम्याद्याश्च सुस्वने ॥ २१५ ॥
त्रिपञ्चम्यष्टमीषष्ठीसप्तम्याद्यास्तथा मखे ।
द्वित्रिसप्ताष्टमीषष्ठीपञ्चम्यो वाजिसंज्ञिते ॥ २१६ ॥
नेत्रे पूर्वाचतुःपञ्चषट्सप्तम्योऽष्टमी तथा ।
भ्रमे स्युर्द्विचतुःपञ्चषट्सप्तम्योऽष्टमी तथा ॥ २१७ ॥
घोषे च त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तम्योऽष्टमी तथा ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तम्यो भवन्ति चेत् ॥ २१८ ॥
मूषास्तदानीं भाण्डीरमिति प्राहुर्निवेशनम् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषष्ठ्यो यत्र तथाष्टमी ॥ २१९ ॥
तद् वैसनमिति प्राहुर्वास्तुविद्याविदो गृहम् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टम्यो गृहे यदि ॥ २२० ॥
मूषा भवन्ति तद् विद्यात् प्रस्थमित्यभिधानतः ।
एकद्वित्रिचतुर्थ्यः स्युः षष्ठी सप्तम्यथाष्टमी ॥ २२१ ॥
यस्मिन् मूषास्तदत्राहुः प्रतानमिति मन्दिरम् ।
चतुर्थीवर्जिताभिः स्यान्मूषाभिर्वेश्म वासुलम् ॥ २२२ ॥
कटं तृतीयाहीनाभिर्विज्ञातव्यं निवेशनम् ।
मूषाभिरद्वितीयाभिर्लक्ष्मीवासमुदाहृतम् ॥ २२३ ॥
सुगन्धान्तमनाद्याभिरष्टाभिः सर्वभद्रकम् ।
इत्येकभद्रप्रभृतीनि वेश्मान्युक्तानि यावद्गृहमष्टभद्रम् ।
एतांश्चतुश्शालगृहप्रभेदान् यो वेत्ति पूजां स लभेत लोके ॥ २२४ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

चतुश्शालविधानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अथ निम्नोचादिफलानि नाम विंशोऽध्यायः ।

अग्रतःपृष्ठतःशब्दौ द्वारेण नियतौ गृहे ।
यतो द्वारं तदग्रं स्यात् पृष्ठं पृष्ठमुदाहृतम् ॥ १ ॥

द्रव्यायामोदर्यव्यासैः शाला यत्राधिका भवेत् ।
वामा वा दक्षिणा वापि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा ॥ २ ॥

हन्ति द्रव्याधिका द्रव्यमायामाभ्यधिका कुलम् ।
उच्छ्रायाभ्यधिका पूजां सन्ततिं विस्तराधिका ॥ ३ ॥

यस्य निम्ना भवेद् भूमिर्वामा दक्षिणकास्थला ।
बहुदोषं हि तद् वास्तु पुत्रपौत्रविनाशकम् ॥ ४ ॥

यस्य दक्षिणका निम्ना भूमिर्वामास्थला भवेत् ।
यत्नेनापि कृतं तत् स्याद् भर्तुरल्पफलोदयम् ॥ ५ ॥

पश्चिमेन भवेन्निम्ना भूमिः स्थूलतराग्रतः ।
यत्र तत् सर्ववर्णेषु सर्वकामप्रदं गृहम् ॥ ६ ॥

अग्रतश्च यदा हीनं पृष्ठतश्चोच्छ्रितं भवेत् ।
भवनं स्वामिनो ह्याशु विरागव्यसनाय तत् ॥ ७ ॥

सच्छत्रं च सकक्षं च तथैव सपरिक्रमम् ।
सप्रभं च समाख्यातं गृहमत्र चतुर्विधम् ॥ ८ ॥

बाह्योदकं च सच्छत्रं सकक्षमुभयोदकम् ।
सावश्यायं तु यद् वेश्म तद् विद्यात् सपरिक्रमम् ॥ ९ ॥

एकेनाप्यत्र मुखतः पृष्ठतः पार्श्वतोऽपि वा ।
सप्रभं स्यादलिन्देन लक्षणं तु पृथक्पृथक् ॥ १० ॥

एकोऽलिन्दस्तु कर्तव्यो मुखतो दक्षिणेन वा ।
मुखे राजप्रसादाय दक्षिणेऽर्थविवर्धनः ॥ ११ ॥

---

१. 'सा', २. 'द्वारे' ख. पाठः । ३. 'वृ' क. पाठः । ४. 'या' ख. पाठः । ५. 'प्रायो नि' ख. पाठः । ६. 'स्तु' क. पाठः । ७. 'स्याद्दक्षिणिका' ख. पाठः । ८. 'स्थ' क. पाठः । ९. 'त्स', १० 'ह्यालु', ११. 'स्याभ्यं' ख. पाठः । १२. 'एका' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वामतस्तु न कर्तव्य एकोऽलिन्दो न पृष्ठतः ।
वामतोऽर्थविनाशाय पृष्ठतो म्रियते गृही ॥ १२ ॥

यस्य स्यातामलिन्दौ द्वौ गृहस्योभयपार्श्वयोः ।
धनलाभं विजानीयात् तत्प्रवेशे कुटुम्बिनः ॥ १३ ॥

यस्य स्यातामलिन्दौ द्वावग्रतः पृष्ठतस्तथा ।
धनधान्यमवाप्नोति सौभाग्यं चापि तद्गृही ॥ १४ ॥

यस्य वा हलकालिन्दो मुखतो दक्षिणेन वा ।
राजप्रसादैस्तत्स्वामी धनधान्यैश्च वर्धते ॥ १५ ॥

वामतो हलकालिन्दो मुखतश्च कृतो यदि ।
राजदण्डभयं विद्यात् पत्नी चास्य विनश्यति ॥ १६ ॥

दक्षिणो हलकालिन्दः पश्चिमश्च कृतो यदि ।
ततः परापि वृद्धिः स्यात् सौभाग्यं च परं भवेत् ॥ १७ ॥

पृष्ठतो हलकालिन्दो वामतश्च कृतो यदि ।
कलत्रमरणं तत्र भवेद् दुर्भगतापि च ॥ १८ ॥

पृष्ठतो वामतश्चैव पुरतो दक्षिणेन वा ।
अलिन्दस्य कृतस्याथ वक्ष्यामोऽनुक्रमात् फलम् ॥ १९ ॥

पृष्ठतो दारनाशाय धनलाभाय दक्षिणे ।
अग्रे राजप्रसादाय वामतोऽर्थविनाशनः ॥ २० ॥

समापितं तु यद् वास्तु सर्वतः परिशोधितम् ।
स्वामिनस्तद् भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ २१ ॥

अर्जितं वर्धते तस्य वृद्धिश्च स्यान्नृपश्रिया ।
धर्मकामाश्च वर्धन्ते कीर्त्तिरायुर्यशो बलम् ॥ २२ ॥

नित्यं प्रक्रीडितजनं नित्यं सन्निहितश्रि तत् ।
नृत्यवादित्रगीतैश्च नित्यामोदं निरामयम् ॥ २३ ॥

तत्र नैकप्रकाराणि त्रिशालान्युपलक्षयेत् ।
प्रकारेषु च सर्वेषु निन्द्यौ याम्यापरोज्झितौ ॥ २४ ॥

---

१. 'नाशाय', २. 'र्चि', ३. 'न', ४. 'हितं म' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

एकस्मिन् स्वामिनो मृत्युरपरस्मिन् धनक्षयः ।
पूर्वोत्तरोज्झितौ धन्यौ संज्ञाश्चैषां प्रकारतः ॥ २५ ॥

स्युरुदक्पूर्वयाम्याप्यशालाहीनान्यनुक्रमात् ।
हिरण्यनाभसुक्षेत्रचुल्लीपक्षघ्ननामभिः ॥ २६ ॥

विनियोगो यथालिन्दमलिन्दव्यूहिरिच्छया ।
वेश्मान्यथ द्विशालानि कीर्त्यन्ते षड् यथाक्रमम् ॥ २७ ॥

दिक्कर्णेषु द्विशालानि तत्कर्णान्येषु निर्दिशेत् ।
संमुखे द्वे समेतानि षडेतान्युपलक्षयेत् ॥ २८ ॥

सिद्धार्थं दक्षिणाप्रत्यग् भवन्त्यत्रार्थसिद्धयः ।
यमसूर्यमुदक्प्रत्यक् तत्र मृत्युभयं सदा ॥ २९ ॥

प्रागुदीच्योस्तु दण्डः स्याद् दण्डस्तत्र सदा भवेत् ।
प्राग्याम्ययोस्तु वाताख्यं वास्तु तत् कलहोत्तरम् ॥ ३० ॥

उदग्दक्षिणसाम्मुख्ये द्विशालं काचवास्त्विति ।
तत्र ज्ञातिविरोधः स्यान्न तत् कुर्यात् कदाचन ॥ ३१ ॥

प्राक्प्रतीच्योस्तु साम्मुख्ये चुल्लीवास्तु विनिर्दिशेत् ।
तत्र वित्तक्षयो घोरः कदाप्येतन्न कारयेत् ॥ ३२ ॥

चतुश्शालं त्रिशालेन प्रान्तं प्राकारवर्तिना ।
पूर्वेण सप्तशालेषु मणिच्छन्द इति स्मृतम् ॥ ३३ ॥

अन्यानि चैवं त्रीण्याहुः प्रान्तमेव प्रदक्षिणम् ।
अपरं परिधानं च सपक्षमिति तानि च ॥ ३४ ॥

एकभित्ती तु शाले द्वे गृहसंघट्ट उच्यते ।
न तं कुर्यात् स हि सदा बन्धदोषवधप्रदः ॥ ३५ ॥

---

१. 'स्थि', २. 'र्त्तौ' ख. पाठः । ३. 'व', ४. 'स' क. पाठः । ५. 'कयवास्तत्रा', ६. 'स' ग. पाठः । ७. 'क्षि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

इत्युच्चनीचगृहभागफलं प्रदिष्ट-
मस्मिन्नलिन्दफलमप्यशुभं शुभं च ।
यद् द्वित्रिशालगृहलक्ष्म तदप्यमुष्मिन्
सामान्यतो द्वितययोगभवं च सम्यक् ॥ ३६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
निम्नोच्चफलच्छत्रादिसंज्ञालिन्दफलसद्वास्तुफलद्विशालत्रिशा-
लगृहसङ्कटलक्षणफलानि नाम विंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वासप्ततित्रिशाललक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वासप्ततेर्भूमस्त्रिशालानां यथाक्रमम् ।
अभिधानानि कार्त्स्न्येन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ १ ॥
मुख्यानि तेषु चत्वारि कथ्यन्ते तानि नामतः ।
हिरण्यनाभं सुक्षेत्रं चुल्ली पक्षघ्नमेव च ॥ २ ॥
हिरण्यनाभमुत्कृष्टं हीनमुत्तरशालया ।
तत् स्याद् धनप्रदं भर्तुः सुक्षेत्रं पूर्वया विना ॥ ३ ॥
सुक्षेत्रं लक्षणोपेतमृद्धिवृद्धिप्रदं विभोः ।
चुल्ली दक्षिणया हीना शालया वित्तनाशिनी ॥ ४ ॥
पक्षघ्नं पश्चिमाहीनं वैरकृत् कुलनाशनम् ।
अलिन्दयोगादेतेषां लघुप्रस्तारयोगतः ॥ ५ ॥
मूषायोगाच्च भेदाः स्युरष्टादश पृथक्पृथक् ।
जाम्बूनदं हिरण्याख्यं रुक्माख्यं हेमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥
कनकं काञ्चनं स्वर्णं सुवर्णं च ततः परम् ।
सन्तापसंज्ञं सारं च तथा चामीकराह्वयम् ॥ ७ ॥
तपनं तापनीयं च शातकुम्भमथापि च ।
हिरण्यनाभं कल्याणं भूषणं भूतिभूषणम् ॥ ८ ॥

---

१. 'भं', २. 'भूमिभू' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भेदा हिरण्यनाभस्येत्यष्टादश भवन्त्यमी ।
नागं सूर्यप्रभाख्यं च मत्तवारणकं तथा ॥ ९ ॥

चतुर्थं केसरीत्युक्तं वासवं चेन्द्रमेव च ।
हरिर्हंसं सारसा(ण्डं?ख्यं) कुञ्जरं तोयदं तथा ॥ १० ॥

मेघमालाभिधानं च धारासारं महोदरम् ।
कर्दमं नामतश्चान्यत् सुक्षेत्रं मकरं तथा ॥ ११ ॥

सुक्षेत्रानुगतान्याहुस्तथान्यद् धान्यपूरकम् ।
चुल्लीभेदानथ ब्रूमस्तेषामाद्यं भुजङ्गमम् ॥ १२ ॥

निर्जीवाख्यं विहङ्गं च नकुलं पन्नगाह्वयम् ।
शतच्छिद्रं च सर्पं च कोपसंज्ञं भगन्दरम् ॥ १३ ॥

उद्वेजनाख्यं सन्न्यासं निस्तोषं करुणाननम् ।
वारणं दारणं चुल्ली ककुदं कन्दरं तथा ॥ १४ ॥

इति चुल्लीप्रभेदेषु मन्दिराणि दशाष्ट च ।
ब्रूमः पक्षघ्नसंबद्धगृहनामानि सम्प्रति ॥ १५ ॥

राक्षसं *ध्वान्तसंहारं देवारि सुरदारुणम् ।
घोषणं व्याघ्रशार्दूले शोषणाख्यं विशोषणम् ॥ १६ ॥

मत्तदं च निरानन्दं शाकुनं विघ्ननिर्घृणे ।
रिपुसंहर्दपक्षघ्ने सुतघ्नं वैरिपूरणम् ॥ १७ ॥

इत्यष्टादश पक्षघ्नभेदाः प्रोक्ता यथाक्रमम् ।
हिरण्यनाभभेदेषु धन्यं जाम्बूनदं गृहम् ॥ १७ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिर्भूषाभिरुपलक्षितम् ।
यत्राद्याद्वित्रिपञ्चभ्यो हिरण्यं नाम तच्छुभम् ॥ १९ ॥

पञ्चम्याद्याद्वितुर्याभिः स्याद् रुक्मं रुक्मदं गृहम् ।
आद्यात्रितुर्यापञ्चम्यो यत्र तद्धेमसंज्ञितम् ॥ २० ॥

---

१. 'च', २. 'च्छत्रं' ३. 'न्ना', ४. 'त', ५. 'कु', ६. 'द्द', ७. 'ध्रात् परि' ख. पाठः । ८. 'अ' क. पाठः ।

---

* लक्षणे तु ध्वान्तसंघातमिति ख. पुस्तके पठ्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वित्रितुर्यापञ्चमीभिः कनकं कनकावहम् ।
साद्याभिर्द्वित्रिषष्ठीभिः काञ्चनं काञ्चनप्रदम् ॥ २१ ॥
आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिः स्वर्णं स्वर्णविवृद्धये ।
सुवर्णमाद्यात्रिचतुःषष्ठीभिः स्यात् सुवर्णदम् ॥ २२ ॥
स्याद् द्वित्रितुर्याषष्ठीभिः सन्तापं तापशान्तिकृत् ।
आद्याद्विपञ्चमीषष्ठ्यो यत्र तत् सारमुत्तमम् ॥ २३ ॥
चामीकरं त्रिषष्ठ्याद्यापञ्चमीभिर्गृहोत्तमम् ।
द्वित्रिषट्पञ्चमीभिः स्यात् तपनं नाम मन्दिरम् ॥ २४ ॥
षट्तुर्याद्यापञ्चमीभिस्तापनीयमुदाहृतम् ।
शातकुम्भं द्विषट्पञ्चचतुर्थीभिर्भवेद् गृहम् ॥ २५ ॥
हिरण्यनाभं त्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिरीरितम् ।
कल्याणमाद्यात्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिरुच्यते ॥ २६ ॥
षट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिर्भवेद् भूषणसंज्ञितम् ।
आद्याद्वित्रिचतुःपञ्चषष्ठीभि†र्भूतभूषणम् ॥ २७ ॥
अथ सुक्षेत्रभेदानां लक्षणान्यभिदध्महे ।
यत्राद्याद्वित्रितुर्याभिस्तन्नागं नाम मन्दिरम् ॥ २८ ॥
यत्राद्याद्वित्रिपञ्चम्यस्तत् सूर्यप्रभमुच्यते ।
आद्याद्वितुर्यापञ्चम्यो यत्र तन्मत्तवारणम् ॥ २९ ॥
आद्यात्रितुर्यापञ्चम्यो यत्र तद् केसरीं विदुः ।
वासवं पञ्चमीतुर्याद्वितीयाभिस्तदुच्यते ॥ ३० ॥
षष्ठ्याद्यात्रिद्वितीयाभिरिन्द्रमन्दिरमीरितम् ।
आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिर्हरिसंज्ञमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥
आद्यात्रितुर्याषष्ठीभिर्हंससंज्ञं निवेशनम् ।
षष्ठीद्वित्रिचतुर्थीभिः सारसं नामतो भवेत् ॥ ३२ ॥
आद्याद्विपञ्चषष्ठीभिः कथयन्तीह कुञ्जरम् ।
आद्यात्रिपञ्चषष्ठीभिर्विज्ञेयं तोयदं गृहम् ॥ ३३ ॥

† स्वर्ये तु भूतिभूषणमिति पठ्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

मेघमालं त्रिपट्पञ्चद्वितीयाभिरुदाहृतम् ।
धारासारं चतुःपञ्चषडाद्याभिर्भवेद् गृहम् ॥ ३४ ॥

द्विचतुःपञ्चषष्ठीभिर्महोदरमिति स्मृतम् ।
कर्दमं नाम षट्पञ्चत्रितुर्याभिर्भयावहम् ॥ ३५ ॥

षट्पञ्चतुर्याद्याभिः सुक्षेत्रं स्याद् धनप्रदम् ।
द्वित्रिषट्पञ्चतुर्याभिर्भवेद् प्रकरमृद्धिदम् ॥ ३६ ॥

आद्याभिश्च षडेताभि(?)र्विज्ञेयं धान्यपूरकम् ।
अष्टादशैते सुक्षेत्रगृहभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३७ ॥

आद्याद्वित्रिचतुर्थीभिर्मूषाभिः स्याद् भुजङ्गमम् ।
निर्जीवमाद्यापञ्चत्रिद्वितीयाभिर्निवेशनम् ॥ ३८ ॥

आद्याद्विपञ्चतुर्याभिर्व(ह्न्तीभिर्वि²दन्तीह त्रि)हङ्गमम् ।
पञ्चाद्यात्रिचतुर्थीभिर्मूषाभिर्नकुलं विदुः ॥ ३९ ॥

पञ्चद्वित्रिचतुर्थीभिः पन्नगं नामतो भवेत् ।
शतच्छिद्रं षडाद्या³त्रिद्वितीयाभिर्भवेद् गृहम् ॥ ४० ॥

आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिः सर्पमित्यभिधीयते ।
आद्यात्रिषट्चतुर्थीभिः कोपमित्यभिशङ्कितम् ॥ ४१ ॥

षट्चतुस्त्रिद्वितीयाभिर्भवेद् वेश्म सगन्दरम् ।
आद्याद्विपञ्चषष्ठीभिरुद्वेजनमुदाहृतम् ॥ ४२ ॥

सन्न्यासमाद्यापञ्चत्रिषष्ठीभिर्भवनाधमम् ।
द्वित्रिषट्पञ्चमीभिस्तु † निस्तोयमभिधीयते ॥ ४३ ॥

तुर्याद्यापञ्चषष्ठीभिः करुणाननमुच्यते ।
द्विचतुःपञ्चषष्ठीभिर्वारणं सुखवारणम् ॥ ४४ ॥

त्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिर्दारणं श्रीविदारणम् ।
चुल्ल्याद्यात्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिर्वित्तनाशनम् ॥ ४५ ॥

---

१. 'ह विह' ख. पाठः । २. 'भवेत्' क. पाठः । ३. 'द्याभिर्द्विती', ४. 'न्ना', ५. 'तुल्याद्या' ख. पाठः ।

---

† कक्ष्यपाठानुरोधेन निस्तोषमिति पाठ्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

षट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिः ककुदं नाम मन्दिरम् ॥
कन्दरं षट्चतुःपञ्चत्रिद्व्याद्याभिर्गृहाधमम् ॥ ४६ ॥

अथाष्टादश कथ्यन्ते भेदाः पक्षघ्नसंश्रयाः ।
तेषु राक्षसमाद्याद्वित्रिचतुर्थीभिरुच्यते ॥ ४७ ॥

पञ्चाद्याद्वितृतीयाभिर्ध्वान्तसंघातमीरितम् ।
पञ्चाद्याद्विचतुर्थीभिर्देवारीति निगद्यते ॥ ४८ ॥

आद्यात्रिपञ्चतुर्याभिर्विज्ञेयं देवदारुणम् ।
पञ्चत्रिद्विचतुर्थीभिर्घोषणं दुःखघोषणम् ॥ ४९ ॥

षडाद्याद्वितृतीयाभिर्व्याघ्रमित्यभिधीयते ।
आद्याद्वितुर्याषष्ठीभिः शार्दूलं स्यान्निवेशनम् ॥ ५० ॥

आद्यात्रितुर्याषष्ठीभिः शोपणं पुत्रशोषणम् ।
षट्तुर्याद्वितृतीयाभिर्विजानीयाद् विशोषणम् ॥ ५१ ॥

आद्याद्विपञ्चषष्ठीभिर्मत्तदं नाम मन्दिरम् ।
निरानन्दाख्यमाद्यात्रिपञ्चषष्ठीभिरुच्यते ॥ ५२ ॥

पञ्चषड्द्वितृतीयाभिः शाकुनं नामतो भवेत् ।
विघ्नमाद्याचतुःपञ्चषष्ठीभिर्विघ्नवर्धनम् ॥ ५३ ॥

निर्घृणं षट्चतुःपञ्चद्वितीयाभिरसौख्यकृत् ।
त्रिचतुःपञ्चषष्ठीभिर्वदन्ति रिपुसंहदम् ॥ ५४ ॥

षट्पञ्चतुर्यात्र्या(द्या)भिः पक्षघ्नं सुतनाशनम् ।
षट्पञ्चद्वित्रितुर्याभिः सुतघ्नं सुतसूदनम् ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चद्वित्रितुर्याद्या यत्र तद् वैरिपूरणम् ।
पक्षघ्नस्यानुगान्येवं गृहाण्यष्टादश क्रमात् ॥ ५६ ॥

चतुराद्यास्त्रिशालेषु मूषा बाह्या न चान्तरा ।
स्याद् विनाद्यां द्वितीयां च त्रिशालं पञ्चभद्रकम् ॥ ५७ ॥

बाह्यतः क्रममुत्सृज्य त्रिशालविधिरीरितः ।

१. 'पो' क. पाठः । २. 'के', ३. 'विद्याले वि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

हिरण्यनाभादिनिकेतनानां चतुष्टयस्यैवममी प्रकाराः ।
द्विसप्ततिः कृत्स्नतयोपदिष्टाः प्रत्येकमष्टादशभेदक्लृप्ताः ॥ ५८½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्वासप्ततित्रिशाललक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥

अथ द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

द्विशालानि द्विपञ्चाशत् स्युः शुभान्यशुभानि च ।
लक्षणानि क्रमात् तेषामिदानीं सम्प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥

सिद्धार्थं यमसूर्यं च दण्डाख्यं वातसंज्ञितम् ।
चुल्ली काचं च मुख्यानि द्विशालानि षडेव हि ॥ २ ॥

अनेकभेदभिन्नानि लघुप्रस्तारयोगतः ।
मूषाभेदक्रमेण स्युर्भेदाभेदक्रमेण तु ॥ ३ ॥

तथा निलीनकरणाद् वीथिकालिन्दमार्गतः ।
प्राग्ग्रीवादिविधानेन द्वैशाल्यादिविपर्ययात् ॥ ४ ॥

यथासम्भवमेतानि कथयामः समासतः ।
निर्वाहतश्च मूषाणामनिर्वाहाच्च नामतः ॥ ५ ॥

छन्दतो गुणतो रूपादशुभानि शुभानि च ।
हितार्थाय नरेन्द्राणां वर्णिनां लिङ्गिनामपि ॥ ६ ॥

हस्तिनी महिषी चेति द्वे शाले यत्र वेश्मनि ।
तत् सिद्धार्थमिति ज्ञेयं वित्तसम्पत्तिकारकम् ॥ ७ ॥

मृत्युदं महिषीगावीभ्यां भवेद् यमसूर्यकम् ।
दण्डं स्याच्छगलीगावीशालाभ्यां दण्डभीतिदम् ॥ ८ ॥

वातं करेणुच्छगलीयुक्तमुद्वेगकारकम् ।
महिष्यजाभ्यामुद्वेगकरी चुल्ली धनापहा ॥ ९ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

काचं करेणुगावीभ्यां सुहृत्प्रीतिविनाशनम् ।
एकमूषममूषं च न द्विशालेषु कारयेत् ॥ १० ॥

व्यत्यासात् काचचुल्ल्योश्च सर्वाभिस्तिसृभिस्तथा ।
चत्वार्याद्यानि भिद्यन्ते लघुप्रस्तारयोगतः ॥ ११ ॥

प्रत्येकमेकादशधा मन्दिराण्यभिधानतः ।
अन्ये चतुर्धा भिद्येते प्रत्येकं द्वे निवेशने ॥ १२ ॥

एषां मूषा भिदाभेदात् तद्वाद्यावाहहेतुकाः ।
वसुधारं भवेत् तेषामाद्यं सिद्धार्थकं ततः ॥ १३ ॥

कल्याणकं शाश्वतं च शिवं कामप्रदं तथा ।
श्रीदं शान्तं निष्कलङ्कं धनाधीशं कुबेरकम् ॥ १४ ॥

सिद्धार्थमनुजान्येवमेतान्येकादश क्रमात् ।
संहारं यमसूर्यं च कालं वैवस्वतं यमम् ॥ १५ ॥

करालं विकरालं च कबन्धं मृतकं शैबम् ।
यमसूर्यस्य भेदाः स्युः सद्मनो महिषं तथा ॥ १६ ॥

प्रचण्डचण्डे दण्डाख्यमुद्दण्डं काण्डकोटरे ।
विग्रहं निग्रहं धूम्रं निर्धूमं दन्तिदारुणम् ॥ १७ ॥

एकादशामी दण्डस्य भेदा दण्डभयप्रदाः ।
मरुत्पवनवाताख्यान्यनिलं सप्रभञ्जनम् ॥ १८ ॥

घनौघम्बुदविध्वंसि * प्रलयं कलहं कलिः ।
कलिचुल्ली च वातस्य भेदा उद्वेगदायकाः ॥ १९ ॥

रोगं चुल्ल्यनलं भस्म चुल्ल्या भेदचतुष्टयम् ।
काचस्य तु च्छलं काचं कुलघ्नं † च विरोधि च ॥ २० ॥

द्वापञ्चाशद् द्विशालानाममी भेदाः प्रकीर्तिताः ।
ब्रूमः साम्प्रतमेतेषां लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥

---

१. 'दत', २. 'कः।', ३. 'शिवम्', ४. 'मं', ५. 'नार्या' क. पाठः।
६. 'ल्लं' ख. पाठः।

---

* लक्षणश्लोके एतत्स्थाने रोगमिति पठ्यते। † लक्षणपाठरीत्या तु कुलहमिति पाठ्यम्।

"Aho Shrut Gyanam"

आद्याद्वितीये वहतो यत्र मूषे धनप्रदे ।
वसुधाराभिधानं तद् गृहं सर्वार्थकानुगम् ॥ २२ ॥

आद्यात्तृतीये वहतो यत्र सिद्धार्थकं हि तत् ।
सर्वोपद्रवनिर्मुक्तं सिद्धिकृच्चिन्तितार्थकृत् ॥ २३ ॥

द्वितृतीयं वहन्मूषं भवेत् कल्याणमृद्धिकृत् ।
वहदाद्यचतुर्थीकं शाश्वतं गृहमुत्तमम् ॥ २४ ॥

शिवं द्वितीयातुर्याभ्यां वहन्तीभ्यां सुखप्रदम् ।
कामदं त्रिचतुर्थीभ्यां भवेच्चिन्तितकामदम् ॥ २५ ॥

आद्याद्याभि(सु?स्तु) तिसृभिः स्त्रीप्रदं संप्रदं(?) प्रभोः ।
आद्याद्वितीयातुर्याभिः शान्तं शान्तिप्रदायकम् ॥ २६ ॥

आद्यात्तृतीयातुर्याभिर्निष्कलङ्कं समृद्धिकृत् ।
द्वितृतीयाचतुर्थीभिर्धनेशं धनवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः कुबेरं वित्तवृद्धिकृत् ।
यमसूर्यप्रभेदेषु ब्रूमो लक्ष्म फलानि च ॥ २८ ॥

आद्याद्वितीयामूषाभ्यां संहारं स्वामिनाशनम् ।
गृहमाद्यातृतीयाभ्यां मृत्युदं यमसूर्यकम् ॥ २९ ॥

द्वितृतीयं वहन्मूषं कालं योषिद्विनाशनम् ।
वैवस्वतं वहत्तुर्यप्रथमं रोगकारकम् ॥ ३० ॥

यमालयं द्वितुर्याभ्यां स्वामिनो यमदर्शनम् ।
करालं त्रिचतुर्थीभ्यां भर्तुः प्राणविनाशनम् ॥ ३१ ॥

आद्याभिस्तिसृभिः स्वामिनाशनं विकरालकम् ।
आद्याद्वितीयातुर्याभिः कबन्धं भर्तृनाशनम् ॥ ३२ ॥

आद्यात्तृतीयातुर्याभिर्भर्तृघ्नं मृतकालयम् ।
शैवं द्वित्रिचतुर्थीभिः स्वामिनो मरणप्रदम् ॥ ३३ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः स्वामिघ्नं महिषं विदुः ।
प्रचण्डं दण्डभेदेषु पूर्वया सद्वितीयया ॥ ३४ ॥

---

१. 'सिद्धार्थ' क. पाठः । २. 'दम्', ३. 'भितिसृ', ४. 'क' ख. पाठः । ५. 'द्वि' क. पाठः । ६. 'शर्म', ७. 'तुर्याभिः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

गृहमादौ विजानीयाद् भर्तुर्नृपभयप्रदम् ।
चण्डमाद्यातृतीयाभ्यां चण्डदण्डभयप्रदम् ॥ ३५ ॥

दण्डं स्याद् द्वितृतीयाभ्यां राजदण्डाय दारुणम् ।
उद्दण्डमाद्यातुर्याभ्यां स्वामिनो दण्डभीतिदम् ॥ ३६ ॥

काण्डं द्वितीयातुर्याभ्यां काण्डवच्छेदकारकम् ।
कोटरं त्रिचतुर्थीभ्यां स्वामिनो विग्रहावहम् ॥ ३७ ॥

प्रथमा(द्वि)तृतीयाभिर्विग्रहं वध[1]बन्धकृत् ।
आद्याद्वितीयातुर्याभिर्निग्रहं विग्रहावहम् ॥ ३८ ॥

आद्यातृतीयातुर्याभिर्धूम्रं सर्वधनापहम् ।
द्वितृतीयाचतुर्थीभिर्निर्धूमं धननाशनम् ॥ ६९ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिर्दन्तिदारुणमर्थहृत् ।
आद्याद्वितीयामूषाभ्यां वातभेदेषु मन्दिरम् ॥ ४० ॥

मरुत्संज्ञं भवेत् तत्र वसतां कलहः सदा ।
उद्वेगकारि पवनं तृतीयाद्योपलक्षितम् ॥ ४१ ॥

वाताख्यं द्वितृतीयाभ्यां सदा सन्तापकारकम् ।
सन्तापोद्वासकार्याद्यातुर्याभ्यामनिलं भवेत् ॥ ४२ ॥

प्रभञ्जनं द्वितुर्याभ्यां शोकसन्तापकारकम् ।
तृतीयया चतुर्थ्या च [2]धनायुद्वेगकारकम् ॥ ४३ ॥

आद्यया द्वितृतीयाभ्यां रोगं कार्यार्थनाशनम् ।
आद्याद्वितीया[3]तुर्याभिः प्रलयं चित्ततापकृत् ॥ ४४ ॥

आद्याद्वितीयातुर्याभिः कलहं कलहावहम् ।
द्वितृतीयाचतुर्थीभिः कलि[4]ः सन्तापकारकम् ॥ ४५ ॥

आद्याद्याभिश्चतसृभिः कलिचुल्ली धनापहा ।
रोगमाद्याद्वितीयाभ्यां चुल्लीभेदेषु शोकदम् ॥ ४६ ॥

---

१. 'बाध' ख. पाठः । २. 'घ(न)मु' क. पाठः । ३. 'मूषाभिः' ख. पाठः ।
४. 'लिद्य' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्याद् द्वितीयातृतीयाभ्यां चुल्ली वित्तविनाशनी।
वसुभ्रमनेलं[1] नाम त्रितुर्याभ्यां[2] निवेशनम् ॥ ४७ ॥

वित्तभ्रमाद्यातुर्याभ्यां भस्माख्यं स्वामिनः सदा।
उदङ्मुखाभ्यां मूषाभ्यां काचभेदेषु मन्दिरम् ॥ ४८ ॥

छलं नाम भवेन्नित्यं बन्धुवर्गापमानकृत्।
दक्षिणोत्तरमूषाणां पौरस्त्ये वहतो यदि ॥ ४९ ॥

† काश्चं नाम तदा वेश्म सज्जनानन्दकारकम्।
मूषाभ्यां दक्षिणाभ्यां स्यात् कुलहं[3] त्रिकुलक्षयम् ॥ ५० ॥

दक्षिणोत्तरमूषाणां पाश्चात्ये वहतो यदि।
‡ विरोधं नाम तद्वेश्म सर्वलोकविरोधकृत् ॥ ५१ ॥

उक्तान्येवं द्विपञ्चाशद् द्विशालानां समासतः।
एतानि मूषावहनप्रभेदात् फलप्रभेदाच्च निदर्शितानि।
द्विशालवेश्मान्यधुनैकशालान्युदाह्रियन्ते भवनानि सम्यक् ॥ ५२½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्विशालगृहलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ एकशाललक्षणफलादि नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।

गृहाणामेकशालानां वक्ष्यामो लक्षणान्यथ।
शस्तानां निन्दितानां च यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

विन्यसेच्चतुरः पूर्वं गुरून् वर्णान् यथाविधि।
एभ्य एव प्रसूयन्ते भेदाः षोडश वेश्मनाम्[4] ॥ २ ॥

---

१. 'नि', २. 'खी' क. पाठः। ३. 'लं हन्ति कु' ख. पाठः।
४. 'स्व' क. पाठः।

---

† लक्ष्यपाठानुरोधात् काचमिति पाठ्यम्। ‡ लक्ष्ये विरोधीति पठ्यते।

"Aho Shrut Gyanam"

गुरोरधो लघुं न्यस्येत् पूर्वं शेषं यथोपरि ।
गुरुभिः पूरयेत् पश्चाद् यावत् स्युर्लघवोऽखिलाः ॥ ३ ॥

विद्यादलिन्दान् सर्वेषु लघुस्थानेषु पण्डितः ।
सव्यावर्तं गृहमुखादेतांश्च विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

एषामलिन्दसंयोगाद् भवनानां पृथक् पृथक् ।
नामानि गुणदोषाश्च वक्ष्यन्तेऽनुक्रमादतः ॥ ५ ॥

ध्रुवं धन्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् ।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयम् ॥ ६ ॥

आक्रन्दं विपुलं चैव[1] विजयं गृहमुत्तमम् ।
ध्रुवे[2] जयमवाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत् ॥ ७ ॥

जये सपत्नाञ् जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः ।
खरमायासदं वेश्म कान्ते च लभते श्रियम् ॥ ८ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा वित्तस्य सम्पदः ।
मनोरमे मनस्तुष्टिर्गृहभर्तुः प्रकीर्तिता ॥ ९ ॥

सुमुखे राज्यसन्मानं दुर्मुखे कलहः सदा ।
क्रूरव्याधिभयं क्रूरे सुपक्षं गोत्रवृद्धिकृत् ॥ १० ॥

धनदे हेमरत्नादि गाश्चैव लभते पुमान् ।
क्षयं सर्वक्षयं गेहमाक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम् ॥ ११ ॥

आरोग्यं विपुले ख्यातिर्विजये सर्वसम्पदः ।
यदि धन्ये द्वितीयोऽपि मुखालिन्दः प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

तद् गृहं रम्यनामेह भर्तुः सौभाग्यकारकम् ।
मुखालिन्देन नन्दाख्यं द्वितीयेन सुयोजितम् ॥ १३ ॥

तच्छ्रीधरमिति ख्यातं तस्मिन् श्रीर्नित्यमाविशेत् ।
अलिन्दश्चेद् द्वितीयोऽपि कान्तस्यास्ये निवेश्यते ॥ १४ ॥

मुदितं तद् भवेद् भर्तुर्भूतिकृद् भवनोत्तमम् ।
सुमुखस्य यदालिन्दो वक्त्रेऽन्यो विनिवेश्यते ॥ १५ ॥

१. 'च'; २. 'ध्रुवम' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

वर्धमानं तदा तत् स्यात् स्वामिलक्ष्मीविवर्धनम् ।
क्रूरं युक्तं द्वितीयेन मुखालिन्देन मन्दिरम् ॥ १६ ॥
करालं तद् विजानीयाद् भर्ता तस्य विनश्यति ।
अलिन्देन द्वितीयेन धनदं योजितं पुनः ॥ १७ ॥
सुनाभं तद् भवेत् तस्मिन् पशून् पुत्रानवाप्नुयात् ।
आक्रन्दस्य पुरोभागे यद्यलिन्दः कृतोऽपरः ॥ १८ ॥
ध्वाङ्क्षसंज्ञं गृहं तज्ज्ञा निन्दितं प्रवदन्ति तत् ।
द्वितीयालिन्दघटना विजयस्य मुखे यदि ॥ १९ ॥
तत् समृद्धमिति ख्यातं गृहं स्यात् पुण्यकर्मणाम् ।
यान्युक्तानि ध्रुवादीनि पूर्ववेश्मानि षोडश ॥ २० ॥
शालाविभागं ज्ञात्वैषां तिर्यक् षड् दारु विन्यसेत् ।
षोडशान्ये च भेदाः स्युः संज्ञाश्चैषामनुक्रमात् ॥ २१ ॥
सुन्दरं वरदं भद्रं प्रमोदं विमुखं शिवम् ।
सर्वलाभं विशालं च विलक्षमशुभं ध्वजम् ॥ २२ ॥
उद्द्योतं भीषणं शून्यमजितं कुलनन्दनम् ।
नामभिर्वेश्मनामेषां गुणदोषान् प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
यथार्थनामान्येतानि यस्मात् प्रोक्तान्यविस्तरात् ।
एभ्य एवापराणि स्युर्वेश्मान्यन्यानि षोडश ॥ २४ ॥
शालापुरोविनिर्युक्ततिर्यक्षड्दारुकारणात् ।
हंसं सुलक्षणं सौम्यं जयन्तं भव्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥
रुचिरं सम्भृतं क्षेममाक्षेमं सुकृतं वृषम् ।
उच्छन्नं व्ययमानन्दं सुनन्दं चेति कीर्तितम् ॥ २६ ॥
एषामपि यथार्थत्वाद् गुणदोषान् निरूपयेत् ।
शालामध्ये च तिर्यक्स्थं षड्दारु विनिवेशयेत् ॥ २७ ॥
विहाय मर्मणां वेधानमीषामेव वेश्मनाम् ।
षोडशैव परेऽपि स्युर्भेदास्तांश्च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

१. 'द्वेश्म प', २. 'बहून्' ख. पाठः । ३. 'ङि' क. ख. पाठः । ४. 'गृभद्रं निवेशयेत् ।', ५. 'पुनःष', ६. 'भा', ७. 'ति', ८. 'व सद्मनाम्' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कथयामः समासेन यथार्थैरेव नामभिः ।
अलङ्कृतमलङ्कारं रमणं पूर्णमम्बरम् ॥ २९ ॥

पुण्यं सुगर्भं कलशं दुर्गतं रिक्तमीप्सितम् ।
सुभद्रं वन्दितं दीनं विभवं सर्वकामदम् ॥ ३० ॥

शालान्तःस्थितषड्दारुपश्चादपवरैः कृतैः ।
एभ्योऽपरेऽपि निर्दिष्टा भेदाः षोडश वेश्मनाम् ॥ ३१ ॥

प्रभवं भाविकं क्रीडं तिलकं क्रीडनं सुखम् ।
यशोदं कुमुदं कालं भासुरं सर्वभूषणम् ॥ ३२ ॥

वसुधारं धनहरं कुपितं वित्तवृद्धिदम् ।
कुलोदयं च विज्ञेयं गुणदोषास्तु पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

अनन्तरमिहोक्तानि यानि वेश्मानि षोडश ।
प्रत्येकं तान्यलिन्देन परि(कुऽ?कु)र्याचतुर्दिशम् ॥ ३४ ॥

तद्भेदेभ्यः प्रसूतानि कथयामो विधानतः ।
चूडामणि प्रभद्रं च क्षेमं शेखरमद्भुतम् ॥ ३५ ॥

विकाशं भूतिदं हृष्टं विरोधं कालपाशकम् ।
निरामयं सुशालं च रौद्रं मोघं मनोरथम् ॥ ३६ ॥

सुभद्रं चेति सदनं संज्ञाभिरुपलक्षयेत् ।
वेश्मनामेकशालानां शतं स्याच्चतुरुत्तरम् ॥ ३७ ॥

कथितं तच्च संस्थानैर्नामभिश्च यथाक्रमम् ।
हस्तिनी महषी गावी छागली च यथाक्रमम् ॥ ३८ ॥

तद्द्वयेन द्विपूर्वाणि ब्रूमो नामानि वेश्मनाम् ।
द्विहंसकं द्विचक्राह्वं द्विसारसमथापरम् ॥ ३९ ॥

द्विकोकिलं बुधैः ख्यातं हस्तिन्यादेः क्रमाद् गृहम् ।
त्रीण्यायुःपशुधान्यानां क्रमादाद्यानि वृद्धये ॥ ४० ॥

एतेषामेव नाशाय भवेद् वेश्म द्विकोकिलम् ।

---

१. 'श्रि', २. 'गे', ३. 'छ' ख.पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

इत्येकशालभवनान्युदितान्यलिन्द-
षड्दारुकापवरकावरणादिभेदैः ।
संज्ञा च लक्षणफलैः करिणीमुखाभिः
शालाभिरेवमपराणि च युग्मजानि ॥ ४१ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
एकशाललक्षणफलद्विहंसकादिलक्षणफलानि नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वारपीठभित्तिमानादिकं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कर्णशालानिबद्धानि मण्डपैरन्तरस्थितैः ।
असम्बाधाजिराणि स्युर्हलानि दश पञ्च च ॥ १ ॥
ईश्वरं वृषभं चन्द्रं रोगं पापं भयप्रदम् ।
नन्दनं खादकं ध्वाङ्क्षं विकृतं विलयं क्षयम् ॥ २ ॥
याम्यं च विपरीतं च भद्रकं चेति नामतः ।
एतानि हलकाख्यानि विद्याद् गेहानि यत्नतः ॥ ३ ॥
अग्निरक्षोनिलेशानकोणगानां यथाक्रमम् ।
एकद्वित्रिचतुर्थाख्या हलकानां प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
अनेन क्रमयोगेन च्छन्दोभेदा भवन्ति च ।
तत्राद्येनेश्वरं नाम हलकेन गृहं भवेत् ॥ ५ ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्ववृद्धिफलप्रदम् ।
वृषभं तु द्वितीयेन पुत्रदारविवर्धनम् ॥ ६ ॥
प्रथमं च द्वितीयं च गृहे तु हलकं यदि ।
चन्द्रं वृद्धिकरं नृणां सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ७ ॥
वायव्यं हलकं यत्र रोगं रोगविवर्धनम् ।
प्रथमं च तृतीयं च गृहे तु हलकं यदि ॥ ८ ॥

---

१. 'मलाभिः' क, 'मितानि', ख. पाठः । २. 'णे भागां य', ३. 'रादिव', ४. 'भयप्रदम्' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पापं तन्नामतो वास्तु सर्वपापप्रयोजकम् ।
पितृरोगोक्तकोणाभ्यां भयदं रोगमृत्यवे ॥ ९ ॥
पितृरोगाग्निकोणेषु नन्दनं गृहमादिशेत् ।
सुखमर्थप्रदं शान्तं हलकं परिकीर्तितम् ॥ १० ॥
ईशान्यां तु चतुर्थेन खादकं खादकं गृहम् ।
लाङ्गलाद्या यदा शाला ईशान्यां च यदापरा ॥ ११ ॥
ध्वाङ्क्षं तन्नामतो वास्तु दरिद्राणां विधीयते ।
द्वितीया च चतुर्थी च शाला लाङ्गलके यदि ॥ १२ ॥
विकृतं विकृतावासं प्रवासोऽत्र कुटुम्बिनः ।
आद्या शाला द्वितीया च चतुर्थी च यदा पुनः ॥ १३ ॥
विलयं हानिदं नित्यं गृहं तद् वित्तनाशनम् ।
वायव्यं हलकं यस्मिन्नैशान्यां च यदा पुनः ॥ १४ ॥
क्षयं क्षयकरं नित्यं हलकेषु गृहं भवेत् ।
अग्निवायुमहेशानां शाला लाङ्गलके यदि ॥ १५ ॥
याम्यं मृत्युकरं नृणां न तत् कुर्यात् कदाचन ।
मारुते नैर्ऋतैशान्योः शालाकर्णेषु लाङ्गलम् ॥ १६ ॥
विपरीतं व्याधिकरं नृणां नाशकरं तथा ।
चतस्रो हलके यत्र प्रादक्षिण्यमुखाः स्थिताः ॥ १७ ॥
भद्रकं नाम तद् वास्तु सर्वभद्रप्रयोजकम् ।
द्वारोच्छ्रायं सविस्तारं तलोच्छ्रायं च वेश्मनाम् ॥ १८ ॥
पीठस्य च समुत्सेधं भित्तिविस्तारमेव च ।
तथा दारुक(लां?ला)चैव या प्रोक्ता गृहकर्मणि ॥ १९ ॥
एकशालाविधानं च तेषां नामानि यानि च ।
तत् सम्प्रति प्रवक्ष्यामो यथावदनुपूर्वशः ॥ २० ॥
षोडशानां समुदयो विंशतेरपि चापरः ।
विंशतेः सचतुष्कायास्तथाष्टाविंशतेरपि ॥ २१ ॥

---

१. 'पापकं नाम', २. 'तु', ३. 'स्री' ४. 'ज्ञेयं', ५. 'खास्तथा'
६. 'नः।' क. पाठः । ७. 'दा', ८. 'तेरपि चतुःकायां तथा' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वात्रिंशतोऽपरश्चेति † पञ्च वर्गाधिपा मताः ।
शालाचतुर्थभागेन भित्तिविस्तार इष्यते ॥ २२ ॥

वर्गेषु भित्तिलक्ष्मोक्तं षोडशादिषु पञ्चसु ।
मर्मपीडा भवेद् यत्र भित्तिस्तम्भतुलादिभिः ॥ २३ ॥

कुर्वीत ह्रासं[1] वृद्धिं वा तत्र मर्मव्यथां त्यजेत्[2] ।
अतिसंवृत[3]विस्तारं कार्यमुद्दिश्य बुद्धिमान् ॥ २४ ॥

शालाप्रविष्टं कुर्वीत ‡ हीनवास्तुष्वलिन्दकम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भूमिभागे समीकृते ॥ २५ ॥

उपरिष्टाद् भवेत् पीठं * तलादर्धसमुच्छ्रितम् ।
नियुक्ते तु ततः पीठे वास्तुविस्तारतोऽङ्गुलम् ॥ २६ ॥

प्रतिहस्तं समुद्धृत्य सप्तत्या सह योजयेत् ।
द्वारोच्छ्रायाः समाख्याता वर्गेषूक्तेषु पञ्चसु ॥ २७ ॥

उच्छ्रायार्धेन वैपुल्यमष्टांशेन विवर्जितम् ।
द्वारविस्तारपादांशे पट्टविस्तार इष्यते ॥ २८ ॥

विस्तारार्धेन बाहुल्यं सार्धं वेद्या(त?स्त)लोपरि[4] ।
उत्तरोत्तरवैपुल्यं कुर्याच्छाखावशाद् बुधः ॥ २९ ॥

वेद्या विस्तारबाहुल्ये विधेये शाखयोरपि ।
द्वारविस्तारपादेन मूले स्तम्भस्य विस्तृतिः ॥ ३० ॥

दशभागविहीनाग्रे पट्टः स्तम्भेन सम्मितः ।
स्तम्भाग्रस्य त्रिभागेन[5] पट्टकोटिर्विधीयते[6] ॥ ३१ ॥

हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् तु चतुर्गुणम् ।
पट्टान्यान्युद्भवेत्[7] (?) तत्र व्यासबाहल्ययोस्तथा ॥ ३२ ॥

---

१. 'ह्रास', २. 'जेत्', ३. 'त्त' क. पाठः । ४. 'धंपेद्यातलोम्बरे' (?)
५. 'गोना' ख. पाठः । ६. 'दा' क. पाठः । ७. 'न्नान्याद्ध' ख. पाठः ।

---

† 'ते पञ्चसमुदायाः विप्रादीनां व्युत्क्रमेण यथा (यथं) योज्याः । व्यासस्येदं चेष्टमानम्' इति, ‡ 'पञ्च + + + + हीनवास्तुप्रमाणं तद्गृहे शालाख्यं तदन्तर्गतं षड्दारुकं कुर्यात्' इति, * 'तलशब्देन प्रथमभूम्युच्छ्रायः' इति च टिप्पणानि सन्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

पट्टकोव्यर्धमुत्सेधादुत्सेधार्धेन निर्गतम् ।
तन्त्रकस्य प्रमाणं स्यादिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ३३ ॥

द्रव्याण्युपर्युपर्यस्य परापरविभागतः ।
पट्टकोव्याश्चतुर्थेन प्रविभागेन ह्रासयेत् ॥ ३४ ॥

पूर्वामुखं गृहं यत्तु द्वारं माहेन्द्रसंयुतम् ।
हस्तिनी च भवेच्छाला तद् गृहं भद्रसंज्ञितम् ॥ ३५ ॥

भद्रं भद्रकरं भर्तुर्यशोबलविवर्धनम् ।
सिध्यन्ति चास्य कार्याणि भद्राख्ये वसतो गृहे ॥ ३६ ॥

दक्षिणाभिमुखं वेश्म द्वारं चास्य गृहक्षतम् ।
महिषी च भवेच्छाला तद् गृहं नन्दपीठकम् ॥ ३७ ॥

नन्दपीठगृहं पुंसां नित्यानन्दकरं स्मृतम् ।
सर्वसम्पद्गुणोपेतं धनधान्यविवर्धनम् ॥ ३८ ॥

वारुण्यभिमुखं सद्म द्वारं च कुसुमाह्वयम् ।
गावी चैव भवेच्छाला सौरभं तद्विदुर्बुधाः ॥ ३९ ॥

सौरभे नित्यहृष्टत्वं वसतां गृहमेधिनाम् ।
सफलं कृषिवाणिज्यं पुत्राश्च वशवर्तिनः ॥ ४० ॥

उत्तराभिमुखं धिष्ण्यं द्वारं भल्लाटसंयुतम् ।
छागली च भवेच्छाला पुष्कराख्यं तदुच्यते ॥ ४१ ॥

शीलवान् नित्यसन्तुष्टः सुहृत्सुजनवत्सलः ।
सुभगः पुष्कराख्ये च बहुपुत्रधनान्वितः ॥ ४२ ॥

भद्रं च नन्दपीठं च सौरभं पुष्करं तथा ।
प्रथमार्धे तु वर्गस्य प्रथमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

सर्वभद्रादिकाः सर्वे निवेशा ये प्रकीर्तिताः ।
उत्पन्नास्ते विमानेभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चपञ्चके ॥ ४४ ॥

---

१. 'मुखम्', २. 'चेद्गुते शा', ३. संहृष्टसुहृत्स्वज', ४. 'तु' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वारस्य पीठस्य च मन्दिरेषु भित्तेश्च मानं कथितं क्रमेण।
तथोदिता दारुकलास्तु सम्यक् प्रहीणवास्तोः सकलं च लक्ष्म॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्वारपीठभित्तिमानदारुकलाहीनवास्तुलक्षणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथ समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।

वेश्मनां पञ्चशालानां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ।
चतुर्विंशतिसंयुक्तं सहस्रं तानि सङ्ख्यया॥ १॥

गुरूणां दशसङ्ख्यानां प्रस्तारस्य च कल्पनात्।
गृहाणां पञ्चशालानां भेदा लघुविभागतः॥ २॥

पञ्चशालं भवेद् योगाद् गृहयोर्द्वित्रिशालयोः।
यद्वा योगाद् भवेदेतच्चतुःशालैकशालयोः॥ ३॥

चतुर्णामपि वर्णानामिदं सद्म प्रशस्यते।
हिरण्यनाभप्रभृति वर्णानामिह वेश्मनाम्॥ ४॥

सिद्धार्थादिसमायोगान्निष्पद्येत गृहाष्टकम्।
योगाद्धिरण्यनाभस्य सिद्धार्थेन गृहं भवेत्॥ ५॥

हेमकूटाख्यमस्यैव वातेन स्वर्णशेखरम्।
सुक्षेत्रस्य च सिद्धार्थसंयोगेन श्रियावहम्॥ ६॥

तस्यैव यमसूर्येण भवेद् वेश्म महानिधिः।
चुल्ल्यास्तु यमसूर्येण सदादीप्तं प्रजायते॥ ७॥

दण्डसंयोगतस्तस्य चित्रभान्वभिधं भवेत्।
पक्षघ्नस्य तु दण्डेन सदोदोषं विनिर्दिशेत्॥ ८॥

पक्षघ्नस्यैव वातेन योगान्निर्विघ्नमुच्यते।
न काचचुल्लीसंयोगस्त्रिशालादिषु शस्यते॥ ९॥

---

१. 'या॥पञ्चशालं', २. 'भेदतः॥', ३. 'चतुर्णामि', ४. 'स्व', ५. 'दातो' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

अन्योन्यवीक्ष्यमाणानां भेदास्तेनेह नोदिताः ।
एकशालयु(तै?ते)र्भेदाः स्युश्चतुश्शालवेश्मनि ॥ १० ॥
चत्वारः पञ्चशालानां ब्रूमस्तेषां च विंशतिः ।
यदा भवत्यजा शाला सर्वतोभद्रवेश्मनो ॥ ११ ॥
सुदर्शनमिति प्राहुः पञ्चशालं तदा गृहम् ।
तदेव करिणीयोगात् सुरूपमिति कथ्यते ॥ १२ ॥
सुन्दरं महिषीयोगाद् गावीयोगात्तु शोभनम् ।
वर्धमानस्य चैतासां शालानां योगतः क्रमात् ॥ १३ ॥
सुनाभं सुप्रभं योग्यं विनोदं च भवेद् गृहम् ।
नन्द्यावर्तेऽप्येवमेव शालायोगेन जायते ॥ १४ ॥
सुखेदं[1] नन्दनं नन्दं[2] पुण्डरीकं च मन्दिरम् ।
रुचकस्याप्यजादीनां योगेन स्युरनुक्रमात् ॥ १५ ॥
नामतो भद्ररुचिररोचिष्णूनि प्रहर्षणम् ।
स्वस्तिकेऽप्यनया युक्त्या भवेद् गृहचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
घोषं सुघोषणं निन्दिघोषं श्रीपद्ममेव च ।
विंशतिः सर्वतोभद्रप्रभृत्यालययोगतः ॥ १७ ॥
जातानि पञ्चशालानि योग्यानि पृथिवी(भु)जाम् ।
पूर्वोक्तैरष्टभिः सार्धं स्यादष्टाविंशतिर्गृहैः ॥ १८ ॥
† कथ्यते[3] पञ्चशालानां मूषाभेदक्रमोऽधुना ।
विभद्रमेकं तत्रैकभद्राणि दशसङ्ख्यया ॥ १९ ॥
द्विभद्राणि पुनः पञ्चचत्वारिंशत् प्रचक्षते ।
त्रिभद्राणां शतं विंशत्युत्तरं द्वे दशोत्तरे ॥ २० ॥
चतुर्भद्रगृहाणां तु द्विपञ्चाशच्छतद्वयम् ।
गृहाणां पञ्चभद्राणां षड्भद्राणां दशोत्तरे ॥ २१ ॥

---

१. 'नाम्', २. 'नन्दं', ३. 'न्ते' ख. पाठः । ४. 'व' क. पाठः ।

---

† 'अमीषामष्टाविंशतीनां(?)मध्ये एकतमस्य मूषाभेदे कृते एतावन्ति रूपाणि भवन्ति' इति टिप्पणमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वे शते सप्तभद्राणां स्याद् विंशत्युत्तरं शतम् ।
गृहाणामष्टभद्राणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ २२ ॥
दश स्युर्नवभद्राणि तथैकं दशभद्रकम् ।
एवं सहस्रमेकं स्याद् विंशतिश्च चतुर्युता ॥ २३ ॥
गृहाणां पञ्चशालानां मूषावहनसङ्ख्यया ।
अथ लक्ष्म च संख्यां च ब्रूमः षट्शालवेश्मनाम् ॥ २४ ॥
एकद्वित्रिचतुश्शालगृहाणां योजनान्मिथः ।
द्विशालस्यैकशालस्य त्रिशालस्य च योगतः ॥ २५ ॥
षट्शालं जायते वेश्म भेदास्तस्य तु षोडश ।
पक्षघ्नवातयोर्योगादेकशालगृहस्य च ॥ २६ ॥
स्यात् पङ्कजाङ्कुरं नाम गृहं षट्शालमुत्तमम् ।
हिरण्यनाभं सिद्धार्थं चैकशालेन वेश्मना ॥ २७ ॥
संयोऽयं तु यदा गेहं तदा स्याच्छ्रीगृहं शुभम् ।
संयोगादेकशालेन सुक्षेत्रयममूर्ययोः ॥ २८ ॥
धनेश्वरं नाम गृहं जायते धनवृद्धये ।
दण्डाख्यचुल्ल्योः संयोगादेकशालगृहस्य च ॥ २९ ॥
प्रभूतकाञ्चनकरं गृहं स्यात् काञ्चनप्रभम् ।
द्वादशान्यानि जानीयाद् भवनान्यनया दिशा ॥ ३० ॥
एतेषामेव भेदेषु शुभान्यखिलवर्णिनाम् ।
तुल्यात् त्रिशालद्वितयात् षट्शालकचतुष्टयम् ॥ ३१ ॥
स्याद् द्विशालचतुःशालयोगादन्यचतुष्टयम् ।
सिद्धार्थेन चतुःशालं वेश्म(नां[1]ना)संयु(तियेत[2]ं य)दा ॥ ३२ ॥
गृहं तदा स्यात् षट्शालं त्रैलोक्यानन्दकं शुभम् ।
यममूर्येण सं[3]युक्तं विलासचयमुच्यते ॥ ३३ ॥
दण्डयुक्तं चतुःशालं सुखदं नामतो भवेत् ।
वातेन च चतुःशालं संयुक्तं श्रीप्रदं भवेत् ॥ ३४ ॥

---

१. 'ले सुयोजितम् । सं', २. 'स', ३. 'युक्तं तु वि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चतुर्विंशतिरैन्यानि षट्शालान्यन्ययोगतः ।
पञ्च यानि चतुश्शालान्युचितानि महीभृताम् ॥ ३५ ॥

तेषां द्विशालयोगेन षट्शालान्यभिदध्महे ।
सिद्धार्थे सर्वतोभद्रयुक्ते स्याच्छ्रीपुरं गृहम्॑ ॥ ३६ ॥

श्रीवासं सर्वतोभद्रे यमसूर्यान्विते भवेत् ।
दण्डाख्ये भद्रयुक्ते श्रीभूषणं जायते गृहम् ॥ ३७ ॥

वाताख्यं सर्वतोभद्रयोगाच्छ्रीभाजनं विदुः ।
सिद्धार्थे वर्धमानेनै युक्ते स्याद् भूतिमण्डनम् ॥ ३८ ॥

यमसूर्ये तु तेनैव संयुक्ते भूतिभाजनम् ।
भूतिमानं तु दण्डाख्ये वाताख्ये भूतिभूषणम् ॥ ३९ ॥

नन्द्यावर्तस्य योगेन सिद्धार्थादिचतुष्टयम् ।
श्रीमुखं श्रीधरं श्रीकृच्छ्री(धी?क)रं चेति जायते ॥ ४० ॥

सिद्धार्थादिचतुष्कस्य भवेद् रुचकयोगतः ।
श्रियाकारं श्रियोवासं श्रीयानं श्रीमुखं तथा ॥ ४१ ॥

सिद्धार्थादिचतुष्कस्य भवेत् स्वस्तिकयोगतः ।
धनपालधनानन्तधनप्रदधनाढ्यम् ॥ ४२ ॥

भवन्त्येवं राजवेश्मयोगतो विंशतिर्गृहाः ।
प्राक् चतुर्विंशतिश्चेति चत्वारिंशच्चतुर्युता ॥ ४३ ॥

भूषाव्यूढिवशादेकभद्रादीन्यभिदध्महे ।

भिदाभिरेकं(?)भूषाभिरभद्रं द्वादशैकया ॥ ४४ ॥

द्वाभ्यां षट्षष्टिरुद्दिष्टा विंशे द्वे तिसृभिः श(तैः?ते) ।
स्याद् व्युढाभिश्चतसृभिः पञ्चोनं शतपञ्चकम् ॥ ४५ ॥

शतानि पञ्चभद्राणां सप्त द्वानवतिस्तथा ।
चतुर्विंशा नवशती षड्भद्राणामुदाहृता ॥ ४६ ॥

जानीयात् सप्तभद्राणि संख्यया पञ्चभद्रवत् ।
गृहाणामष्टभद्राणां पञ्चोनं शतपञ्चकम् ॥ ४७ ॥

---

१. 'रेतानि', २. 'स्त्री', ३. 'न संयुक्ते भू', ४. 'स्वस्तिकालययो', ५. 'तुद्वाभिरेकम्', ६. 'तैः' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वे विंशे नवभद्राणां भवनानां शते विदुः
षट्षष्टिर्दशभद्राणि तथा द्वादशसङ्ख्यया ॥ ४८ ।

स्युरेकादशभद्राख्यान्येकं द्वादशभद्रकम् ।
एवं षट्शालगेहानां स्यात् साहस्रचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥

षण्णवत्यधिकं ब्रूमः सप्तशालानि साम्प्रतम् ।
तुल्यं त्रिशालद्वितयमेकशालेन युज्यते ॥ ५० ॥

यदा स्युः सप्तशालानि तदा द्वादशसङ्ख्यया ।
एकशालं द्विशालं च[1] चतुःशालेन युज्यते ॥ ५१ ॥

यदा तदा सप्तशालमपरं वेश्म जायते ।
सैकशालं चतुःशालं यमसूर्येण संयुतम् ॥ ५२ ॥

तदा[2] भवेद् विभेदः (?) स्यात् तद्गृहं श्रीप्रदायकम् ।
वातेन श्रीपदं[3] तद्वद् दण्डेन श्रीप्रदं भवेत् ॥ ५३ ॥

सिद्धार्थेकेन श्रीमालं तद्वदेव प्रजायते ।
पञ्चानां राजयोग्यानां स्युश्चतुश्शालवेश्मनाम् ॥ ५४ ॥

सप्तशालानि संयोगादेकशालद्विशालयोः ।
युज्यते सर्वतोभद्रं सिद्धार्थं च यदा गृहम् ॥ ५५ ॥

एकशालेन जायेत श्रीपदं[4] श्रीपदं[5] त(था?दा) ।
सर्वतोभद्रगेहस्य यमसूर्यैकशालयोः ॥ ५६ ॥

योगेन श्रीफलं नाम स्याद् गृहं श्रीफलावहम् ।
सर्वतोभद्रदण्डाभ्यामेकशालं युतं यदा ॥ ५७ ॥

श्रीस्थलं नाम भवनं तदा स्यादास्पदं श्रियः ।
स्यादेकशाले मिलिते सर्वतोभद्रवातयोः ॥ ५८ ॥

लक्ष्मीनिवासभवनं गृहं श्रीतनुसंज्ञितम् ।
यदैकशालं सिद्धार्थं वर्धमानं च युज्यते ॥ ५९ ॥

श्रीपर्वताभिधानं स्यात् तदानीं भवनोत्तमम्
यमसूर्यस्य योगेन वर्धमानैकशालयोः ॥ ६० ॥

१. 'वा', २. 'य', ३, ४, ५. 'प्र' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

श्रीवर्धनं नाम गृहं श्रीयो वृद्धिकरं भवेत् ।
दण्डं च वर्धमानं चं सैकशालं यदा भवेत् ॥ ६१ ॥

तदा श्रीसङ्गमं नाम भवेद् भवनमुत्तमम् ।
यदैकशालं वाताख्यं वर्धमानं च युज्यते ॥ ६२ ॥

भवनं श्रीप्रसङ्गाख्यं नृपयोग्यं तदा भवेत् ।
सिद्धार्थमेकशालेन नन्द्यावर्तेन चान्वितम् ॥ ६३ ॥

श्रीभारं नाम भवनं भवेद् भूपालसेवितम् ।
नन्द्यावर्तस्य योगेन यमसूर्यैकशलयोः ॥ ६४ ॥

राज्ञां सुखावहं वेश्म श्रीभारमिति च स्मृतम् ।
श्रीशैलमेकशालेन स्यान्नन्द्यावर्तदण्डयोः ॥ ६५ ॥

योगाद् भोगावहं राज्ञां सप्तशालं गृहोत्तमम् ।
एकशालस्य योगेन स्यान्नन्द्यावर्तवातयोः ॥ ६६ ॥

श्रीखण्डं नाम भवनं भूभृतां भूतिकृद् भवेत् ।
सिद्धार्थस्यैकशालेन संयोगाद् रुचकस्य च ॥ ६७ ॥

श्रीपण्डं नामतो वेश्म भवेद् योग्यं महीभृताम् ।
रुचकस्यैव योगेन यमसूर्यैकशालयोः ॥ ६८ ॥

स्याच्छ्रीनिधानं श्रीकुंण्डं तस्य दण्डैकशालयोः ।
वातैकशालरुचकैर्युक्तैः श्रीनाभमुच्यते ॥ ६९ ॥

भवनं भूमिपालानां तद् भवेद् भूतिदायकम् ।
एकशालेन युज्येते सिद्धार्थस्वस्तिके यदा ॥ ७० ॥

श्रीप्रियं स्यात् तदा वेश्म सन्ततं वल्लभं श्रियः ।
यमसूर्यैकशालाभ्यां स्वस्तिकं युज्यते यदा ॥ ७१ ॥

तदा श्रीकान्तमित्याहुर्भवनं भूभृतां हितम् ।
एकशालेन संयोगो दण्डस्वस्तिकयोर्यदा ॥ ७२ ॥

श्रीमतं नामतो वेश्म तदा स्याद् विजयावहम् ।
वातस्वस्तिकसंयोगमेकशालं यदा व्रजेत् ॥ ७३ ॥

---

१. 'तु', २, ३. 'श्री', ४. 'द्या(?)', ५. 'घण्टं ना', ६. 'ख' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

श्रीप्रदत्तमिति प्राहुस्तदा वेश्म महीभृताम् ।
एकैकस्य द्विभेदत्वाच्चत्वारिंशदियं भवेत् ॥ ७४ ॥

एवमत्र प्रकाराः स्युश्चत्वारिंशद् युताष्टभिः ।
यदा त्रिशालं भवनं चतुश्शालेन युज्यते ॥ ७५ ॥

तदापि सप्तशालं स्याच्चतुर्भेदं समासतः ।
पञ्चानां राजगेहानां मिलत्येकतमस्य चेत् ॥ ७६ ॥

त्रिशालं स्यात् तदा सप्तशालं विंशतिभेदवत् ।
हिरण्यनाभ(भो?यो)गेन सर्वतोभद्रमन्दिरम् ॥ ७७ ॥

श्रीवत्सं जनयेद् वेश्म नरेन्द्राणां हितावहम् ।
श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रं सुक्षेत्रे मिलिते भवेत् ॥ ७८ ॥

चुल्लीयुक्ते पुनस्तस्मिन् श्रीपालं नाम जायते ।
पक्षघ्ने सर्वतोभद्रयुक्ते श्रीकण्ठमुच्यते ॥ ७९ ॥

हिरण्यनाभे श्रीवासं वर्धमानयुते भवेत् ।
श्रीनिवासं तु सुक्षेत्रे वर्धमानेन मिश्रिते ॥ ८० ॥

वर्धमानेन चुल्ल्या च गृहं श्रीभूषणं विदुः ।
पक्षघ्नं वर्धमानेन यदा संयोगमृच्छति ॥ ८१ ॥

तदा श्रीमण्डनं नाम जायते भवनोत्तमम् ।
जाते हिरण्यनाभस्य नन्द्यावर्तेन सङ्गमे ॥ ८२ ॥

स्याद् वेश्म श्रीकुलं नाम श्रियः कुलनिकेतनम् ।
नन्द्यावर्तेन सुक्षेत्रे युक्ते श्रीगोकुलं भवेत् ॥ ८३ ॥

नन्द्यावर्तस्य चुल्ल्याश्च योगे श्रीस्थावरं गृहम् ।
नन्द्यावर्तस्य पक्षघ्नयोगे कुम्भं प्रजायते ॥ ८४ ॥

हिरण्यनाभरुचकयोगे स्याच्छ्रीसमुद्गकम् ।
श्रीनन्दं नाम सुक्षेत्रे रुचकाख्येन संयुते ॥ ८५ ॥

चुल्ल्यां रुचकयुक्तायां श्रीहृदं नाम जायते ।
श्रीधरं नाम पक्षघ्ने भवेद् रुचकसंयुते ॥ ८६ ॥

---

१. 'भा' क, ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

हिरण्यनाभेन युते स्वस्तिके श्रीकरण्डकम् ।
सुक्षेत्रेण युते तस्मिन् श्रीभाण्डागारसंज्ञितम् ॥ ८७ ॥

चुल्लीयुते श्रीनिलयं भवेन्नरपतिप्रियम् ।
स्वस्तिकस्य यदा योगः पक्षघ्नेन प्रजायते ॥ ८८ ॥

श्रीनिकेतनसंज्ञं स्यात् तदा नृपतिमन्दिरम् ।
उक्तानि सप्तशालानि[1] नामलक्षणयोगतः ॥ ८९ ॥

सर्वाणि सार्वभौमानां नृपाणां मन्त्रिणामपि ।
भवन्ति च सतां वित्तयशोविजयवृद्धये ॥ ९० ॥

एकादिमूषावहनप्रभेदादथ वेश्मनाम् ।
एतेषां सप्तशालानां ब्रूमः संख्यामनुक्रमात् ॥ ९१ ॥

§ वहत्येकापि नो यत्र मूषैकं तद् भवेद् गृहम् ।
त्रिभद्रमेकभद्राणि विजानीयाच्चतुर्दश ॥ ९२ ॥

द्विभद्रवेश्मनां सैका नवतिः परिकीर्तिता ।
भवनानां त्रिभद्राणां चतुःषष्टिः शतत्रयम् ॥ ९३ ॥

सहस्रमेकाभ्यधिकं स्याच्चतुर्भद्रवेश्मनाम् ।
भवतः पञ्चभद्राणां द्वे सहस्रे द्विसंयुते ॥ ९४ ॥

षड्भद्राणां सहस्राणि त्रीणि त्रीणि गृहाणि च ।
द्वात्रिंशतां चतुस्त्रिंशत् सप्तभद्रशतानि च ॥ ९५ ॥

अष्टभद्राणि षड्भद्रसङ्ख्यातुल्यानि जायते(?) ।
गृहाणां नवभद्राणां द्वे सहस्रे तथा द्वयम् ॥ ९६ ॥

सहस्रं दशभद्राणामेकोत्तरमुदाहृतम् ।
तथैकादशभद्राणां चतुष्षष्ट्या शतत्रयम् ॥ ९७ ॥

सैका द्वादशभद्राणां नवतिर्वेश्मनां भवेत् ।
स्युस्त्रयोदशभद्राणि गृहाणीह चतुर्दश ॥ ९८ ॥

---

१. 'शानि' ख. पाठः ।

---

§ 'यत्र यस्यां सप्तशालजातौ एकापि मूषा यद् गृहं न वहति न प्राप्नोति, तदेकं गृहं त्रिभद्रं भवेत्' इति टिप्पणमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

यच्चतुर्दशभिर्भद्रैरेकमेव हि वेश्म तत् ।
इत्येषां सप्तशालानां सहस्राण्यत्र षोडश ॥ ९९ ॥
एकोनत्रिंशती तद्वदशीतिश्चतुरुत्तरा ।
इदानीमष्टशालानि भवनान्यभिदध्महे ॥ १०० ॥
बहिरन्तश्चतुःशालद्वयादेकं समासतः ।
अन्यानि सर्वभद्रादिद्वयसंयोगतो दश ॥ १०१ ॥
एकोनत्रिंशता क्षेत्रं चतुरश्रं विभाजयेत् ।
भागद्वयेन मूषा स्याच्छाला भागचतुष्टयात् ॥ १०२ ॥
कुर्वीत पञ्चभिर्भागैस्तन्मध्येऽङ्गणवापिकाम् ।
चतस्रश्च प्रतिदिशं मूषाः स्युस्तत्र वास्तुनि ॥ १०३ ॥
शालयोनं सप्तशालं षट्शालं द्वितयोज्झितम् ।
त्रिहीनं पञ्चशालं स्यादष्टशालमिदं क्वचित् ॥ १०४ ॥
तुल्यत्रिशालद्वितयं द्विशालेन युतं यदा ।
अष्टौ तदाष्टशालानि गृहाण्यन्यानि निर्दिशेत् ॥ १०५ ॥
मूषाव्यूढिवशादष्टशालानामथ कथ्यते ।
सङ्ख्या तत्र त्रिभद्रं स्यादवहन्मूषसंज्ञितम् ॥ १०६ ॥
षोडशैवैकभद्राणि द्विभद्राणां शतं विदुः ।
त्रिंशं षष्ट्या त्रिभद्राणां विज्ञेयं शतपञ्चकम् ॥ १०७ ॥
अष्टादशाहुर्विंशानि चतुर्भद्रशतानि च ।
पञ्चभद्रसहस्राणि चत्वारि स्युः शतत्रयम् ॥ १०८ ॥
अष्टषष्टिश्च गेहानि तानि सम्यग् विभावयेत् ।
सहस्राष्टकमष्टौ च षड्भद्राणि प्रचक्षते ॥ १०९ ॥
एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
जानीयात् सप्तभद्राणि चत्वारिंशद् गृहाणि च ॥ ११० ॥
द्वादशैवाष्टभद्राणां सहस्राणि शताष्टकम् ।
सप्तत्याभ्यधिकं प्राहुर्वास्तुविद्याविशारदाः ॥ १११ ॥

---

१. 'एकात्र त्रि', २. 'त्र चतु' क. पाठः । ३. 'ष्टयं' क., 'ष्टं' ख. पाठः । ४. 'द्र' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

एकादशसहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
चत्वारिंशच्च गेहानि नवभद्राणि सङ्ख्यया ॥ ११२ ॥
अष्टौ स्युर्दशभद्राणां सहस्राण्यष्टभिः सह ।
तथैकादशभद्राणां सङ्ख्या स्यात् पञ्चभद्रवत् ॥ ११३ ॥
अष्टादशशतानि स्युर्विंशतिर्भवनानि च ।
इति द्वादशभद्राणां सङ्ख्या भवति वेश्मनाम् ॥ ११४ ॥
स्यात् त्रयोदशभद्राणां षष्ट्यग्रं शतपञ्चकम् ।
स्याच्चतुर्दशभद्राणां विंशत्यभ्यधिकं शतम् ॥ ११५ ॥
वेश्मानि स्युस्तथा पञ्चदशभद्राणि षोडश ।
एकमेव हि विज्ञेयं गृहं षोडशभद्रकम् ॥ ११६ ॥
† पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्त्रिंशं शतपञ्चकम् ।
गृहाणामष्टशालानां भवत्येकत्र सङ्ख्यया ॥ ११७ ॥
स्यात् समानचतुश्शालद्वययोगात् समासतः ।
एकैकशालयोगाच्च नवशालचतुष्टयम् ॥ ११८ ॥
सर्वतोभद्रमुख्यानां मिथो द्वितययोगतः ।
एकैकशालयोगाच्च चत्वारिंशत् तथापरा ॥ ११९ ॥
तुल्यत्रिशालत्रितययोगेन च चतुष्टयम् ।
गृहाणां नवशालानामन्यदुक्तं पुरातनैः ॥ १२० ॥
संस्थानमुक्तं गेहानां नवशालात्मनामिदम् ।
मूषावहनभेदेन तत्सङ्ख्या कथ्यतेऽधुना ॥ १२१ ॥
अवहन्मूषमेकं स्याद् वहन्त्याष्टादशैकया ।
द्वाभ्यां शतं त्रिपञ्चाशदधिकं वेश्मनां भवेत् ॥ १२२ ॥

१. 'सहस्राणि विंश', २. भद्राणां भ', ३.'न्त्य' ख. पाठः ।

† अष्टशालगृहा-	गृह१	१६	१२०	५६०	१८२०	४३६८	८००८	११४४०	१२८७०
णामैक्यं६५५३६	भद्र०	१	२	३	४	५	६	७ भद्र	८
षोडशगुरूणां प्रस्तारे	भद्र१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९ भद्र	०

इति टिप्पणं दत्तमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

तिसृभिः स्युः शतान्यष्टौ सह षोडशभिर्गृहैः।
षष्ट्या सहस्रत्रितयं ताभिश्चतसृभिर्भवेत् ॥ १२३ ॥

पञ्चाशीतिशतान्यष्टषष्टियुक्तानि पञ्चभिः।
वहन्तीभिः प्रजायन्ते मूषाभिरिह वेश्मनाम् ॥ १२४ ॥

अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
चतुःषष्टिं च गेहानि मूषाभिः षड्भिरादिशेत् ॥ १२५ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि सहितान्यष्टभिः शतैः।
चतुर्विंशतियुक्तानि मूषाभिः सप्तभिर्विदुः ॥ १२६ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिसहस्री च वेश्मनाम्।
शतानि चाष्टपञ्चाशत् सप्त मूषाभिरष्टभिः ॥ १२७ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्राण्यष्ट षट्शती।
विंशतिं चैव मूषाभिर्गृहाणां नवभिर्विदुः ॥ १२८ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्रत्रयमोकसाम्।
मूषाभिर्दशभिः साष्टपञ्चाशच्छतसप्तकम् ॥ १२९ ॥

एकत्रिंशत्सहस्राणि चतुर्विंशच्छताष्टकम्।
मूषाभिरेकादशभिर्गृहाणां मुनयो जगुः ॥ १३० ॥

अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
धाम्नां द्वादशमूषाणां चतुःषष्टिश्च जायते ॥ १३१ ॥

भवन्त्यष्टौ सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
स्यात् त्रयोदशमूषाणामष्टषष्टिश्च वेश्मनाम् ॥ १३२ ॥

स्याच्चतुर्दशमूषाणां त्रिसहस्री सषष्टिका।
मूषाभिः पञ्चदशभिः षोडशाष्टशती तथा ॥ १३३ ॥

धाम्नां षोडशमूषाणां त्रिपञ्चाशच्छतं भवेत्।
स्युः सप्तदशमूषाणि वेश्मान्यष्टादश स्फुटम् ॥ १३४ ॥

मूषाभिरष्टादशभिर्वेश्मैकं तद्विदो विदुः।
लक्षद्वयं सहस्राणि द्वाषष्टिश्च शतान्विता ॥ १३५ ॥

---

१. 'ष्ट' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

वेश्मनां नवशालानां चत्वारिंशच्चतुर्युता ।
स्यात् समानचतुःशालद्वययोगात् समासतः ॥ १३६ ॥
एकेन च द्विशालेन दशशालचतुष्टयम् ।
सर्वतोभद्रमुख्यानां मिथो द्वितययोगतः ॥ १३७ ॥
एकद्विशालयोगाच्च चत्वारिंशत् तथापरा ।
तुल्यत्रिशालत्रितयमेकशालयुतं यदा ॥ १३८ ॥
साधारणं तदान्यत् स्याद् दशशालचतुष्टयम् ।
तुल्ये त्रिशाले युज्येते सर्वभद्रादिभिर्यदा ॥ १३९ ॥
तदान्या दशशालानां समुत्पद्येत विंशतिः ।
तेष्वेकमवहन्मूषं विंशतिर्मूषयैकया ॥ १४० ॥
वहन्त्या स्यादुभाभ्यां तु नवत्यभ्यधिकं शतम् ।
चत्वारिंशानि तिसृभिः शतान्येकादश ध्रुवम् ॥ १४१ ॥
चत्वारि स्युश्चतसृभिः सहस्राणि शताष्टकम् ।
चत्वारिंशच्च गेहानि जायन्ते पञ्चभिः सह ॥ १४२ ॥
पञ्चभिस्तु सहस्राणि मूषाभिर्दशपञ्च च ।
जायन्ते सचतुष्काणि तथा पञ्चशतानि च ॥ १४३ ॥
अष्टात्रिंशत्सहस्राणि षड्भिः सप्त शतानि च ।
षष्ट्युत्तराणि जायन्ते वेश्मनां परिसङ्ख्यया ॥ १४४ ॥
गृहाणां स्युः सहस्राणि सप्तभिः सप्तसप्ततिः ।
शतपञ्चकमन्यच्च भवेद् विंशतिसंयुतम् ॥ १४५ ॥
लक्षमेकं सहस्राणि पञ्चविंशतिरष्टभिः ।
शतानि नव जायन्ते सप्तत्यभ्यधिकानि च ॥ १४६ ॥
लक्षमेकं सहस्राणि सप्तषष्टिः शतानि च ।
नव स्युः षष्टियुक्तानि नवमूषाप्रचारतः ॥ १४७ ॥
लक्षं चतुरशीतिश्च सहस्राणि शतानि च ।
सप्त स्युर्दशभिस्तद्वत् पञ्चाशच्च षडुत्तरा ॥ १४८ ॥
लक्षमेकं सहस्राणि सप्तषष्टिश्च वेश्मनाम् ।
शतानि चैकादशभिः षष्ट्यानि नव निर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

लक्षं तथा सहस्राणि जायन्ते पञ्चविंशतिः।
शतानि च द्वादशभिर्नव तद्वच्च सप्ततिः ॥ १५० ॥

सहस्राणि निकेतानां सङ्ख्यया सप्तसप्ततिः।
सविंशतिः पञ्चशती त्रयोदशभिरीरिता ॥ १५१ ॥

अष्टात्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च।
स्युश्चतुर्दशभिः षष्ट्या वेश्मनामन्वितानि च ॥ १५२ ॥

स्यात् पञ्चदशसाहस्री शतैः पञ्चभिरन्विता
भूषाभिः पञ्चदशभिश्चत्वारि भवनानि च ॥ १५३ ॥

स्युः सहस्राणि चत्वारि तद्वदष्टौ शतानि च।
तथा षोडशभूषाणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १५४ ॥

सहस्रं सप्तदशभिः शतमेकं च वेश्मनाम्।
चत्वारिंशच्च वेश्मानि भवन्ति परिसङ्ख्यया ॥ १५५ ॥

शतं नवत्यभ्यधिकमष्टादशभिरुच्यते।
भवत्येकोनविंशत्या भूषाणां वेश्मविंशतिः ॥ १५६ ॥

एकमेव गृहं भूषाविंशतेर्वहनाद् भवेत्।
सङ्ख्येयं दशशालानां भूषाभेदप्रचारतः ॥ १५७ ॥

प्रयुतं चत्वार्ययुतान्यष्टसहस्राणि पञ्च च शतानि।
षट्सप्ततिर्गृहाणि च दशशालेष्वेकसङ्ख्येयम् ॥ १५८ ॥

चतुःशालादिगेहानि यावत्स्याद्दशशालतः।
चतुर्गुणानि प्रत्याशं तान्यलिन्देन निर्दिशेत् ॥ १५९ ॥

एकद्वित्रिचतुःशालवेश्मनां सङ्गमान्मिथः।
गृहाणि दशशालान्तान्येवमुक्तानि विस्तरात् ॥ १६० ॥

समारभ्य चतुःशा(ली?लं) दशशालान्तवेश्मनाम्।
सङ्ख्यामिदानीमैक्येन सर्वेषामभिदध्महे ॥ १६१ ॥

भूषाभेदेन लक्षाणि स्युस्त्रयोदश वेश्मनाम्।
सहस्राण्यष्टनवतिस्तथा वेश्मानि षोडश ॥ १६२ ॥

भूषासंस्थानभेदेन भिन्नानां वेश्मनां पुनः।
जायन्ते कोटिशो भेदा यस्मान्नोक्तानि तान्यतः ॥ १६३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

इत्थं चतुःशालमुखानि वेश्मान्युक्तानि यावद्दशशालमत्र ।
शालाप्रभेदेन मिथोऽभिषङ्गात् सङ्ख्या च तेषामुदिता यथावत् ॥ १६४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
समस्तगृहाणां सङ्ख्याकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

अथ आयादिनिर्णयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः सूत्रपातविधेः[1] क्रमम् ।
शस्ते मासि सिते पक्षे विदध्यात् तं शुभेऽहनि ॥ १ ॥

चैत्रे शोकाकुलो भर्ता[2] वैशाखे च धनान्वितः ।
ज्येष्ठे गृही विपद्येत नश्यन्ति पशवः शुचौ ॥ २ ॥

श्रावणे धनवृद्धिः स्यान्नभस्ये न वसेद् गृहे ।
कलहश्चाश्विने मासि भृत्या नश्यन्ति कार्त्तिके ॥ ३ ॥

मार्गशीर्षे धनप्राप्तिः सहस्ये कामसम्पदः ।
माघे वह्निभयं[3] चैत्र फाल्गुने श्रीरनुत्तमा ॥ ४ ॥

द्वितीया पञ्चमी मुख्या सप्तमी नवमी तथा ।
एकादशीत्रयोद(श्यस्ति?श्यौ ति)थयः स्युः शुभावहाः ॥ ५ ॥

चन्द्रताराबलं भर्तुरनुकूलं च शस्यते ।
इयं हि सूत्रपाताख्या क्रिया प्रासादकर्मणि ॥ ६ ॥

कार्या पुरनिवेशे च प्रारम्भे भवनस्य च ।
शिलानिवेशने द्वारस्तम्भोच्छ्रयादिकेषु च ॥ ७ ॥

आद्रियेत सिते पक्षे शोभने लग्न एव हि ।
रवौ कन्यातुलालिस्थे गृहं वरुणदिङ्मुखम् ॥ ८ ॥

---

१. 'भिक्र', २. 'र्ता स्याद् वैशाखे ध', ३. 'भयं विद्यात् फा, ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

न कुर्यात् तद्धि शून्यं स्यान्न च वृद्धिर्भवेत् प्रभोः ।
न दक्षिणमुखं कुम्भमृगधन्विस्थिते रवौ ॥ ९ ॥

कुर्वीत निष्फलं तत् स्यान्नृपदण्डवधादिकृत् ।
न मीनवृषमेषस्थे कुर्वीत प्राङ्मुखं रवौ ॥ १० ॥

तद् धनघ्नं कलिक्षुद्रराजचौरार्तिकृद् यतः ।
रवौ मिथुनसिंहस्थे न कर्किस्थेऽप्युदङ्मुखम् ॥ ११ ॥

कुर्यात् तद्धि दरिद्रत्वं दद्याच्चरणदासताम् ।
आयव्ययांशकर्क्षाणि प्रवक्ष्यामोऽथ वेश्मनाम् ॥ १२ ॥

गृहमानवशात् सम्यक् कर्तुः स्थानबलाबलम् ।
नगरे वा पुरादौ वा दण्डैर्मानं विधीयते ॥ १३ ॥

तदलाभे करैः कार्यं सम्यगायविशुद्धये ।
यत्र हस्तैर्मितिः क्षेत्रे तत्रायो हस्तसंश्रितः ॥ १४ ॥

क्षेत्रालाभे तु तत्रैव ग्राह्यः स स्यादिदाङ्गुलैः(?) ।
अङ्गुलैस्तु मिते क्षेत्रे सोऽङ्गुलैस्तदलाभतः ॥ १५ ॥

पादैर्वाथ यवैर्वापि ग्राह्यः क्षेत्रानुसारतः ।
गृहेषु कर्महस्तेन मानं स्वामिकरेण वा ॥ १६ ॥

देवतानां तु धिष्ण्येषु कर्महस्तेन केवलम् ।
दैर्घ्यं हन्यात् पृथुत्वेन हरेद् भागं ततोऽष्टभिः ॥ १७ ॥

यच्छेषमायं तं विद्याच्छास्त्रदृष्टं ध्वजादिकम् ।
ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च श्वा वृषः खरकुञ्जरौ ॥ १८ ॥

ध्वाङ्क्षश्चेति त उद्दिष्टाः प्राच्याद्यासु प्रदक्षिणम् ।
अन्योन्याभिमुखास्ते च कामं स्वच्छन्दचारिणः ॥ १९ ॥

पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टा आयवृद्धिविधायकाः ।
वृषसिंहगजाः शस्ताः प्रासादपुरवेश्मसु ॥ २० ॥

ध्वजेऽर्थलाभः सन्तापो धूमे भोगो मृगाधिपे ।
कलिः शुनि धनं धान्यं वृषे स्त्रीदूषणं खरे ॥ २१ ॥

---

१. 'दक्षिणाभिमु', २. 'चापस्थि' ख. पाठः । ३. 'रामिकृ' क. पाठः ।
४. 'च' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

गजे भद्राणि दृश्यन्ते ध्वाङ्क्षे तु मरणं ध्रुवम् ।
वृषस्थाने गजं कुर्यात् सिंहं वृषभहस्तिनोः ॥ २२ ॥
न कुर्याद् वृषमन्यत्र शस्यते सर्वतो ध्वजः ।
कल्याणं कुरुते सिंहो ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २३ ॥
क्षत्रियस्य गजः शस्तो वृषभः शस्यते विशः ।
शूद्रस्य ध्वज एवैकः शस्यतेऽर्थप्रदः सदा ॥ २४ ॥
एवमेते गृहादीनामायाः सर्वे प्रकीर्तिताः ।
प्रदद्यादासने सिंहमातपत्रेषु तु ध्वजम् ॥ २५ ॥
चिह्नेष्वपि च सर्वेषु चामरव्यजनादिषु ।
सिंहं गजं वा शस्त्रेषु रथेषु कवचेषु च ॥ २६ ॥
सार्यश्वगजपर्याणेष्विभं वृषभमेव च ।
अर्थधारणपात्रेषु शयनेषु मतङ्गजम् ॥ २७ ॥
याने च वाहने चैव मतिमान् योजयेद् गजम् ।
प्रासादप्रतिमालिङ्गपीठमण्डपवेदिषु ॥ २८ ॥
कुण्डेषु च ध्वजं दद्याद् देवोपकरणेषु च ।
आयो गृहवदुद्वाहवेदीमण्डपयोर्भवेत् ॥ २९ ॥
महानसे वृषं दद्याज्जलाधारे जलाशये ।
स्थाल्यां भोजनपात्रे च कोष्ठागारेऽन्नधारणे ॥ ३० ॥
एतद्गृहे तथा दद्याद् गृहोपकरणेषु च ।
वृषभं गजशालायां प्रदद्याद् गजमेव वा ॥ ३१ ॥
वृषं तुरगशालासु गोशालागोकुलेषु च ।
गजाश्ववृषशालासु सिंहं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ३२ ॥
अश्रमाणां खरध्वाङ्क्षधूमश्वानः शुभावहाः ।
धूमोऽग्निजीविनां शस्तो ध्वाङ्क्षः सन्न्यासिनां हितः ॥ ३३ ॥
स्त्रगणानां श्वपाकानां स्ववेश्मानां खरः शुभः ।
नटनर्तकवेश्मेषु पण्यस्त्रीणां खरः शुभः ॥ ३४ ॥
कुलालरजकादीनां तथा गर्दभजीविनाम् ।
गृहादिषु क्षेत्रफलं गणयेदष्टभिर्भजेत् ॥ ३५ ॥

१. 'श्राम्', २. 'स्व' क. पाठः । ३. 'गु' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

त्रिघनेन भजेच्छेषं नक्षत्रेऽष्टहृते व्ययः ।
पिशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रेधा व्ययो मतः ॥ ३६ ॥

साम्याधिक्यन्यूनताभिरायतः स्याद् यथाक्रमम् ।
व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च ॥ ३७ ॥

भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेषं सोंऽशको भवेत् ।
चतुरङ्गो यथा मन्त्रो मुख्यो लग्ने नवांशकः ॥ ३८ ॥

तथा गृहादिषु प्रोक्तं मुख्यत्वेनांशकत्रयम् ।
इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामभिरंशकाः ॥ ३९ ॥

स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्यास्त्रयोऽपि च ।
गणयेत् स्वामिनक्षत्राद् यावत् स्याद् भवनस्य भम् ॥ ४० ॥

नवभिर्भाजिते तस्मिन् शेषं तारा प्रकीर्तिता ।
जन्मसम्पद्विपत्क्षेमपापसाधकनैधनीः ॥ ४१ ॥

मैत्रीपरममैत्र्यौ च प्राहुः संज्ञाः समाः फले ।
त्रिसप्तपञ्चमीर्भर्तुर्गृहतारा विवर्जयेत् ४२ ॥

आद्याद्वितीयाष्टम्यस्तु ताराः स्युरिह मध्यमाः ।
तथा ऋक्षेऽपि चानिष्टे चन्द्रेऽष्टमगतेऽपि च ॥ ४३ ॥

नयते दुरितं तारा चतुःषण्णवमी(?)नृणाम् ।
सुरराक्षसमर्त्याख्या ऋक्षाणां स्युर्गणास्त्रयः ॥ ४४ ॥

यद्गणर्क्षो भवेद् भर्ता तद्गणर्क्षं गृहं शुभम् ।
मृगाश्विरेवतीस्वात्यो मैत्रं पुष्यपुनर्वसू ॥ ४५ ॥

हस्तः श्रवण इत्येष देवाख्यो नवको गणः ।
विशाखा कृत्तिकाश्लेषा नैर्ऋतं वारुणं मघा ॥ ४६ ॥

चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठेति नवको राक्षसो गणः ।
आर्द्राभरण्यौ रोहि(ण्यौ[२]?ण्या) तिस्रः पूर्वास्तथोत्तराः ॥ ४७ ॥

इति नक्षत्रनवकं विज्ञेयं मानुषे गणे ।
गणसाम्यं शुभा तारा यस्यायात(तृ?त्र)व्ययोऽल्पकः ॥ ४८ ॥

---

१. 'स्माच्छेषं', २. 'तत्वान्नृषेऽपि', ३. 'ण्यस्तिस्रः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वितोंऽशकश्च तद्वेश्म भर्तुः शुभफलप्रदम् ।
आयो व्ययश्च योनित्वं ताराश्च भवनांशकाः ॥ ४९ ॥

गृहनामेति चिन्त्यानि करणानि गृहस्य षट् ।
त्रिभिः शुभैः शुभं वेश्म द्वाभ्यामेकेन चाशुभम् ॥ ५० ॥

करणैश्चतुराद्यैस्तु शुभैरतिशुभं भवेत् ।
न समायव्ययं वेश्म नाव्ययं नाधिकव्ययम् ॥ ५१ ॥

न द्वितीयांशमसद्दग्योनिभं च न कारयेत् ।
भर्तृतुल्याभिधानं च गृहं दूरात् परित्यजेत् ॥ ५२ ॥

समसप्तकमेकर्क्षं तृतीयैकादशं तथा ।
चतुर्थदशकं चेति कर्तव्यं मन्दिरं सदा ॥ ५३ ॥

षट्कोष्ठकं त्रिकोणं च वर्ज्यं द्विद्वादशं तथा ।
षट्कोष्ठके मृतिर्दैन्यं वियोगश्च भवेद् गृहे ॥ ५४ ॥

त्रिकोणे वसतां दुःखं वैधव्यं च प्रजायते ।
द्विर्द्वादशे पुत्रपौत्रगुरुबन्धुधनक्षयः ॥ ५५ ॥

हृतेऽष्टभिः क्षेत्रफले खनेत्रशशिभाजिते ।
शेषं जीवितमेतस्मिन् पञ्चसक्ते भवेन्मृतिः ॥ ५६ ॥

सभुजं सहपद्दारु पुखखण्डपसंयुतम् ।
आयामतः पृथुत्वाच्च माले कृत्वा विभाजयेत् ॥ ५७ ॥

सर्वतः शोधितं वास्तु यच्च सम्यङ्मितं भवेत् ।
स्वामिनस्तद् भवेद् धन्यं स्थपतेश्च यशस्करम् ॥ ५८ ॥

अर्चितं वर्धते वास्तु नारीभिः पशुभिर्नरैः ।
कीर्त्यायुर्धनधान्यैश्च प्रमोदैस्तु महोत्सवैः ॥ ५९ ॥

मेरुश्च खण्डमेरुश्च पताका सूचिका तथा ।
उदिष्टं नष्टमिति षट् छन्दांसीह प्रचक्षते ॥ ६० ॥

एकाद्येकोत्तरान् कोष्ठान् विन्यसेदिच्छयात्मनः ।
आद्यादारभ्य तद्वृद्धिर्यथा स्यात् पार्श्वयोः समम् ॥ ६१ ॥

---

१. 'नव्यांश', २. 'तृ', ३. 'शे', ४. 'यैशसोत्स' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

मेरोरेकाधिका सङ्ख्या शरावस्येव चाकृतिः ।
प्रथमे कोष्ठके रूपमन्तं यावच्च पार्श्वयोः ॥ ६२ ॥

आसनोर्ध्वस्थयोर्न्यस्येन्मध्ये सङ्कलितं पृथक् ।
तस्मिन्निष्टविकल्पानां सङ्ख्या स्यादन्त्यपङ्क्तिगा ॥ ६३ ॥

खण्डमेरुं तु विन्यस्येत् तद्वदेवैकपार्श्वतः ।
प्रवृद्धैः कोष्ठकैस्तत्राप्यङ्काः प्राग्वत् फलं तथा ॥ ६४ ॥

अथापरः खण्डमेरुः कोष्ठांस्तत्रेष्टसङ्ख्यया ।
कृत्वैकापचितान् वामविसर्गापचितानधः ॥ ६५ ॥

एकाद्येकोत्तरानङ्कानाद्यपङ्क्तौ निवेशयेत् ।
अन्यासु पङ्क्तिष्वामान्तं शून्या(न्या?ना)द्येषु कल्पयेत् ॥ ६६ ॥

द्वितीयेषु च कोष्ठेषु तासामेकैकमावयेत् (?) ।
द्वितीयायां तृतीयादिकोष्ठकेषु यथाक्रमम् ॥ ६७ ॥

विकर्णयोगजानन्यानूर्ध्वाधोयोगसंभवान् ।
फलं विकर्णयोगोत्थमेकस्मिन् परिकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

एकाधिकानभीष्टायाः सङ्ख्यायास्तिर्यगालिखेत् ।
कोष्ठाने(कांच?तांश्च) रूपादींस्तन्मध्ये द्विगुणोत्तरान् ॥ ६९ ॥

एकोनं पृष्ठतस्तेषामेकं द्विगुणमग्रतः ।
नातिक्रामेत् परां सङ्ख्यां पताकाछन्द उच्यते ॥ ७० ॥

तद्विनेष्टाद्यगा सङ्ख्येत्येकाद्यैस्तैस्ततो गृहे ।
न्यस्ताङ्कसङ्ख्याः सङ्ख्याः स्युरलिन्दाद्यैः प्रकल्पिताः ॥ ७१ ॥

एकैकमिष्टस्थानेषु लिखेत् सेकेष्वतः परम् ।
अन्त्या(दै?द)ने पूर्वपूर्वयुक्तेनायोजयेत् परम् ॥ ७२ ॥

अन्त्यादारभ्य तद्वनावेकाद्येषु(?) च पर्ययात् ।
अलिन्दादिषु यत्र स्यात् सङ्ख्या सूचीं तु तां विदुः ॥

उद्दिष्टे स्थापयेत् सङ्ख्यामुद्दिष्टां सम्भ(वे?जे)च्च ताम् ।
दलयेद् रूपयुक्तां तु दलयेन्नाम सम्भवेत्(?) ॥ ७४ ॥

---

१. 'सा', २. 'मू', ३. 'ह्रातपूर्वे पू', ४. 'भ' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

लघुस्वरूपदलने सैकार्धे करणे गुरुः ।
यावदिष्टपदाप्तिः स्याल्लघवोऽलिन्दकोदयः ॥ ७५ ॥

कृत्वा छन्दःसमुद्दिष्टं तदन्ते लघुनि द्विकम् ।
न्यसेदेकं गुरूणां च द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥ ७६ ॥

व्यत्ययाल्लघुनः स्थाने द्विगुणादेककं गुरोः ।
कुर्यात् तमाद्यस्थानाङ्कसङ्ख्यं नष्टं गृहं भवेत् ॥ ७७ ॥

प्राप्तस्यैकं कोष्ठमेकैकवृद्ध्या न्यस्येदूर्ध्वं पङ्क्तयो यावदिष्टाः ।
इष्टानेकादीँल्लिखेदानुपूर्व्या कर्णेनाधः शून्यरूपे च दद्यात् ॥ ७८ ॥

कर्णस्थाङ्कश्लेषतोऽङ्के भवेद् यस्तं विन्यस्येत् कोष्ठकेषु क्रमेण ।
उद्दिष्टाङ्को भद्रसङ्ख्यानि मध्ये याभ्यः कर्णश्लेषतो मूषिकास्ताः ॥ ७९ ॥
एकादिषु द्विगुणितेष्विह यावदिष्टमूषाक्रमव्युपहितेष्वथ तेषु विद्यात् ।
उद्दिष्टवेश्मकृतनिर्गममार्गमूषासत्काङ्कसैकयुतिनिर्मितसङ्ख्यमोकः ॥ ८० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
आयव्ययनक्षत्रराशिफलतद्योगताराङ्कयोनितच्छन्दोगनिर्णयो नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥

अथ सभाष्टकं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

नन्दा भद्रा जया पूर्णा सभा स्याद् भाविता तथा ।
दक्षा च प्रवरा तद्वद् विदुरा चाष्टमी मता ॥ १ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे ततः षोढा विभाजिते ।
मध्ये पदचतुष्कं स्यात् सीमालिन्दस्तु भागिकः ॥ २ ॥

तद्बाह्योऽलिन्दकस्तद्वद् भवेत् प्रतिसराभिधः ।
प्राग्ग्रीवाख्यस्तृतीयश्च बहिः क्षेत्राच्चतुर्दिशम् ॥ ३ ॥

१. 'भि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

निसृष्टसौधेयैर्वा(?) स्यादेकस्यां वा यदा दिशि ।
नन्दा भद्रा जया पूर्णा क्रमेण स्युः सभास्तदा ॥ ४ ॥

षड्भागभाजिते क्षेत्रे कर्णभित्तिं निवेशयेत् ।
सभा स्याद् भाविता नाम सप्राग्ग्रीवात्र पञ्चमी ॥ ५ ॥

स्तम्भान् षट्त्रिंशदेतासु पञ्चस्वपि निवेशयेत् ।
स्तम्भान् प्राग्ग्रीवसंबद्धान् पृथगेभ्यो विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

दक्षेति षष्ठी परितस्तृतीयालिन्दवेष्टिता ।
प्रवरा सप्तमी द्वारैर्युक्तैपा परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

प्राग्ग्रीवद्वारसंयुक्ता विदुरेत्यष्टमी सभा ।
सभानामिदमष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ८ ॥

इत्यष्टानां लक्ष्म सम्यक् सभाना-
मेतत् प्रोक्तं दिग्भवालिन्दभेदात् ।
तद्वद् द्वारालिन्दसंयोगतश्च
ज्ञातेऽत्र स्याद् भूभृतां स्थानयोगः ॥ ९ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
सभाष्टकं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहद्रव्यप्रमाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

उपादेयानि यान्यत्र परित्याज्यानि यानि च ।
गृहद्रव्यप्रमाणानि तानीदानीं प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥

द्वारस्य गृहविस्तारैर्हस्ततुल्याङ्गुलैर्भवेत् ।
उच्छ्रायः सप्तभिर्युक्तैर्विस्तृतिस्तु तदर्धतः ॥ २ ॥

प्रकल्पयेद् गृहद्वारं क्रमेणैव कनीयसा(म्) ।
त्रैराशिकेन मध्यानां द्वादशांशं परित्यजेत् ॥ ३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

इत्युच्छ्रितिस्तदर्धेन सर्वेषामपि विस्तरः ।
उच्छ्रायमुत्तमानां तु कुर्यादष्टांशवर्जितम् ॥ ४ ॥

विस्ताराङ्गुलसंयु(क्तां?क्तं)कुर्यादतिकनीयसाम् ।
चतुःषष्टिगृहद्वारमुदयेनार्धविस्तृतम् ॥ ५ ॥

विस्तारहस्ततुल्यानि षष्ट्या पञ्चाशताथवा ।
संयुतान्यङ्गुलानि स्यादुच्छ्रायोऽर्धेन विस्तृतिः ॥ ६ ॥

गृहोत्सेधेन वा त्र्यंशहीनेन स्यात् समुच्छ्रितिः ।
तदर्धेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधिः ॥ ७ ॥

द्वारोच्छ्रायकरैस्तुल्यैष्वङ्गुलेषु विनिक्षिपेत् ।
चत्वारि पेद्यापिण्डः स्यात् सपादं विदधीत तम् ॥ ८ ॥

सार्धं वा सत्रिभागं वा द्विगुणं चाधिकं न तु ।
एवं कृते भवेद् द्वारपेद्याया विस्तृतिः स्फुटा ॥ ९ ॥

सार्धेन पेद्यापिण्डेन पि(ण्डं स्या?ण्डस्यो)दुम्बरो भवेत् ।
सार्धस्तु पेद्याविस्तारः स्यादुदुम्बरविस्तृतिः ॥ १० ॥

पेद्यापिण्डेन तुल्या स्याच्छाखाया विस्तृतिः शुभा ।
सार्धया वैतया रूपशाखाया अपि विस्तृतिः ॥ ११ ॥

विस्तारार्धेन पेद्यायाः खल्वशाखा विधीयते ।
रूपशाखासमा वा स्यात् सार्धा वा बाह्यमण्डला ॥ १२ ॥

पादोना त्र्यंशहीना वा विस्तारादर्धमेव वा ।
प्रासादेषु च तुल्यः स्याद् भारशाखाविनिर्गमः ॥ १३ ॥

आद्या शाखा भवेद् देवी द्वितीया नन्दिनीति च ।
तृतीया सुन्दरी नाम चतुर्थी स्यात् प्रियानना ॥ १४ ॥

भद्रेति पञ्चमी शाखा प्रशस्ताः पञ्च वेश्मनि ।
अतोऽधिकास्तु याः शाखा गृहद्वारि न ताः शुभाः ॥ १५ ॥

विस्तारात् षोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः ।
तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेश्मनाम् ॥ १६ ॥

---

१. 'ततः', २. 'तु', ३. 'तेषां कनिष्ठवेश्मना।' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे पञ्चकरोन्मितः ।
पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥ १७ ॥

ज्येष्ठे भवेत् सप्तदशहस्ताच्छाला भविस्तृता ।
मध्यमे दशहस्तात् तु पञ्चहस्तात् कनीयसि ॥ १८ ॥

उदुम्बं(गा?रस्य) बाहु(ल्य?ल्यात्) तलन्यासं तु कारयेत् ।
तलन्याससमं प[१] अलिन्दस्य परिग्रहे ॥ १९ ॥

द्वारविस्तारपादेन स्तम्भकोटिर्विधीयते ।
साष्टांशेनाधिकेनाथ सत्रिभागेन वा पुनः ॥ २० ॥

कुर्यादेकादशांशेन तथास्यैव प्र(या?णा)लिनीम् ।
स्तम्भान् कुर्यादतोऽष्टांशान्नव द्वादशधाथवा ॥ २१ ॥

भागैस्ततः स्वार्धसमैरर्धभागसमन्वितैः ।
अधस्तादष्टभागा स्यात् स्तम्भस्य प्रतिपालना ॥ २२ ॥

स्तम्भमूलस्य विस्ताराादर्धेन स्थलनिर्गमः ।
तदर्धेन विधातव्यो मसूरकादिनिर्गमः ॥ २३ ॥

उत्कालकसमुच्छ्रायः स्तम्भपिण्डसमः शुभः ।
कुम्भिकोत्कालवत् पिण्डे विस्तारेऽष्टांशसम्मिता ॥ २४ ॥

प्रागुक्तस्तम्भभागेन सपादेन विधीयते ।
दीर्घत्वमाद्यपत्राणां शेषाणां पादहानितः ॥ २५ ॥

पादः पादो भवेन्न्यूनः पत्राणां रसनोच्छ्रयात् ।
सार्धभागोच्छ्रिता कार्या रसना कण्टकोपमा ॥ २६ ॥

सार्धपादोच्छ्रिता यद्वा जङ्घा शेषं यथोदितम् ।
इत्थं स्यात् पद्मकस्तम्भो युक्त्या युक्तस्वरूपकैः ॥ २७ ॥

अष्टाश्रो वा विधातव्यः स्तम्भसूत्रपरिक्रमात् ।
तद्विस्तारसमं त्यक्त्वोत्सेधं भागान् विभाजयेत् ॥ २८ ॥

अष्टाश्रच्छेदमानेन बाह्यसूत्रानुपल्लवान् ।
विदध्यान्मध्यभागे तु कोणांश्च पट्टिकाकुलान् (?) ॥ २९ ॥

---

१. 'म्ब++वाहल्यं त' (?), २. 'नप' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

घटिका पुष्पमालाभिः पल्लवैश्चोपशोभिता ।
छेद्भागः समः कार्यो वह्निभागविवर्जितः ॥ ३० ॥

घटपल्लवको नाम स्तम्भोऽयं परिकीर्तितः ।
विहितो वेश्मनामेष स्वामिनः श्रेयसे भवेत् ॥ ३१ ॥

कुबेरो वा विधातव्यः षोडशाश्रक्रियान्वितः ।
ऊर्ध्वतः पल्लवाकीर्णो जङ्घास्य चतुरश्रिका ॥ ३२ ॥

श्रीधरश्च भवेद् वृत्तः कल्पनास्य कुबेरवत् ।
एवं गृहाणां चत्वारः स्तम्भा लक्ष्मभिरीरिताः ॥ ३३ ॥

स्तम्भमूलस्य विस्तृत्या तलप(द?ट्ट)स्य विस्तृतिः ।
सपादया विधातव्या बाहुल्यं पादहीनया ॥ ३४ ॥

स्तम्भेन तुल्यं विस्तारे बाहल्ये पदसम्मितम् ।
हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् त्रिगुणं भवेत् ॥ ३५ ॥

हीरग्रहणविस्तारं भागात् सप्त प्रकल्पयेत्(?) ।
तत् स्यात् सष्टोत्तरं भागं भागेनेष्टं प्रवेशनम् ॥ ३६ ॥

तस्याधस्तात् त्रिकण्टेन त्रिभागं लम्बितेन च ।
लिखेदुभावर्धचन्द्रौ पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ ३७ ॥

खल्वं कृत्वा ततो मध्यं भागद्वयमधोगतम् ।
कुर्यात् त्रिकण्टकं कान्तं तुम्बिकामथ लम्बिकाम् ॥ ३८ ॥

द्वयोर्मध्येऽपरं भूयो द्विभागस्थं च कण्टकम् ।
तुम्बिकां लम्बमानां वा पत्रजातिविभूषिताम् ॥ ३९ ॥

तस्याश्चापरतीरं स्यात् पद्मपत्र्या विभूषितम् ।
तलपट्टसमः पेट्रो विस्तारात् पिण्डतोऽपि च ॥ ४० ॥

पट्टत्र्यंशेन तीरे स्यात् पट्टपिण्डार्धनिर्गमः ।
स्तम्भाग्रेण समा कार्या विस्तारस्थौल्यतस्तुला ॥ ४१ ॥

तदर्धेन जयन्तीनां कर्तव्ये पिण्डविस्तृती ।
ताभ्यो विधेयाः पादोनाः सन्धिपाला यदृच्छया ॥ ४२ ॥

निर्यूहेषु च ये पट्टाः पादोनांस्तांस्तु कारयेत् ।
तुलापट्टाश्च पादोनास्तदर्धेन जयन्तिकाः ॥ ४३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

तुलार्धेन विधातव्या प्रतिमोकस्य विस्तृतिः ।
पट्टस्योपरि कण्ठः स्याद् भूषितो रूपकर्मणा ॥ ४४ ॥

वेदिका(जै?जा)लरूपाद्या निर्यूहे संप्रशस्यते ।
विधातव्या च सच्छत्रा निबद्धाङ्गणैवापिका ॥ ४५ ॥

स्तम्भपट्टां(शु?स्तु) विस्तीर्णान् सपादांस्तत्र कल्पयेत् ।
तुलापिण्डाः समाः कार्याः सङ्ग्रहैः सुदृढैर्युताः ॥ ४६ ॥

वेदिकाजालसम्पन्नं तलं कार्यं मनोरमम् ।
भूमौभूमौ भवेत् तच्च द्वादशांशविवर्जितम् ॥ ४७ ॥

प्रणाल्यः सर्वतः कार्या मूलग्राहाग्रनिर्गमाः ।
दण्डच्छाद्यं गृहेषु स्याज्ज्ञेयं तच्च चतुर्विधम् ॥ ४८ ॥

भूताख्यं तिलकं तद्वन्मण्डलं कुमुदं तथा ।
गृहच्छाद्येषु तेषु स्यादुच्छ्रायोऽपि चतुर्विधः ॥ ४९ ॥

क्षेत्रतुर्यांशतः कार्यो दैर्घ्येणच्छाद्यदण्डकः ।
तदर्धं मुष्टिकायामो दण्डत्र्यंशेन लम्बना ॥ ५० ॥

चतुरश्रं समं कान्तं मधुरं सुदृढं घनम् ।
वेश्मनां छाद्यकं कार्यं भूतं नाम्ना सुपूजितम् ॥ ५१ ॥

तस्यैवाष्टादशो भागो यदा स्यादुच्छ्रयेऽधिकः ।
उदयस्तिलको नाम शस्तः स गृहकर्मणि ॥ ५२ ॥

द्वाभ्यामुच्चतरः पूर्वो मण्डलः कुमुदस्त्रिभिः ।
अभित्ति(स्थे?स्थं) भवेच्छा(द्ये?द्यं) चन्द्ररेखाविभूषितम् ॥ ५३ ॥

गुणरागान्विता भित्तिर्यद्वा घनचयात्मिका ।
तत्रच्छाद्यं भवेच्चान्यदवधारणसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

सिंहकर्णकपोतालीघण्टाकर्णार्धपक्षगाः ।
ध्वजच्छत्रकुमारांश्च गृहेषु परिवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

---

१. 'का' ख. ग. पाठः । २. 'णकवा' ग. पाठः । ३. 'ला' ख. ग. पाठः ।
४. 'च्छाद्यग्र' ग. पाठः । ५. 'ण्डं', ६. 'श्मसुच्छा', ७. 'स्तः', ८. 'न्द्रे',
९. 'अ' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

न पक्षराजिध्वजसिंहकर्णकुमारघण्टाः समरालपल्लीः ।
न प्रस्खलार्धानि नचैव पत्राण्यायोजयेद् वेश्मसु मङ्गलार्थी ॥ ५६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे गृहद्रव्यप्रमाणानि नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

अथ शयनासनलक्षणं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः शयनासनलक्षणम् ।
शुभाशुभपरिज्ञानं येन सम्यक् प्रजायते ॥ १ ॥

मैत्रे मुहूर्ते पुष्यस्थे शीतरश्मौ शुभेऽहनि ।
सम्पूज्य देवताः सम्यक् कर्मारम्भं समाचरेत् ॥ २ ॥

वृक्षास्तत्र प्रशस्यन्ते चन्दनस्तिनिशोऽर्जुनः ।
तिन्दुकः सालशाकौ च शिरीषासनधन्वनाः ॥ ३ ॥

हरिद्रुर्देवदारुश्च स्यन्दनोकौ सपद्मकौ ।
श्रीपर्णी दधिपर्णश्च शिंशपान्येऽपि ये शुभाः ॥ ४ ॥

गृहकर्माणि ये नेष्टा वृक्षास्तेऽत्रापि निन्दिताः ।
हेम्ना रूप्येण चानद्धा गजदन्तेन वा शुभा ॥ ५ ॥

आरकूटेन वा नद्धा शय्या कार्या विचक्षणैः ।
पूर्वच्छिन्नं यदा दारु शयनासनहेतवे ॥ ६ ॥

आदीयते तदारम्भे निमित्तान्युपलक्षयेत् ।
दध्यक्षतान् पूर्णकुम्भं रत्नानि कुसुमानि वा ॥ ७ ॥

सुगन्धद्रव्यवस्त्राद्यान् मत्स्याश्वयुगलं तथा ।
मत्तवारणमन्यांश्च शुभान् वीक्ष्यादिशेच्छुभम् ॥ ८ ॥

---

१. 'रा', २. 'नरैव' ख. ग. पाठः । ३. 'शा' क. पाठः । ४. 'माः । सर्वदन्तमयी शय्या हेमरत्नान्विता शुभा । गृ' क. ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कर्माङ्गुलं समुद्दिष्टं वितुषैरष्टभिर्यवैः ।
अष्टोत्तरशतं तेषां शय्या ज्येष्ठा महीभुजाम् ॥ ९ ॥

मध्यमा महीभुजां शय्या शतं स्याच्चतुरुत्तरम् ।
शतं कनीयसी प्रोक्ता नृपाणां विजयावहा ॥ १० ॥

नवतिर्नृपपुत्रस्य मन्त्रिणः सा षडुज्झिता ।
द्वादशोना बलपतेस्त्रिषट्कोना पुरोधसः ॥ ११ ॥

आयामार्धेन विस्तारं सर्वं शय्यासु कल्पयेत् ।
यद्वा निजाष्टभागेन षड्भागेनाथवाधिकम् ॥ १२ ॥

विप्राणां शस्यते शय्या दैर्घ्येणाङ्गुलसप्ततिः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यामङ्गुलाभ्यां हीना स्याच्छेषवर्णिनाम् ॥ १३ ॥

बाहल्यमुत्पलस्य स्यादुत्तमस्याङ्गुलत्रयम् ।
अङ्गुलद्वितयं सार्धं मध्यस्य द्वे कनीयसः ॥ १४ ॥

बाहल्यमीशादण्डस्य कुर्यादुत्पलसम्मितम् ।
सार्धं सपादं सत्र्यंशं तस्य विस्तारमुत्पलात् ॥ १५ ॥

विस्तारार्धेन शय्यायाः स कुष्यस्य विधीयते ।
तत्पादस्योद(यो?यौ) मध्यहीनौ द्विचतुरुज्झितौ ॥ १६ ॥

अर्धेन मध्यविस्तारान्मध्ये बाहल्यमिष्यते ।
त्रिभागहीनमिच्छन्ति पादोनमपि केचन ॥ १७ ॥

स्थौल्येन पादोऽधः शीर्षादुत्पलेन समो भवेत् ।
मध्ये सपादः सार्धश्च तले वृद्धिः क्रमेण सा ॥ १८ ॥

षड्भागोऽस्याधिको यद्वा मध्ये त्र्यंशाधिकस्तले ।
तत्कुष्यमुत्पलत्र्यंशो मूले तस्यार्धमग्रतः ॥ १९ ॥

उत्सेधतुल्यो विस्तारः कार्यो वा अङ्गुलाधिकः ।
सपत्रकलिकापत्रपुटग्रासविभूषितः ॥ २० ॥

कुर्यात् प्रदक्षिणाग्राणि शय्याङ्गानि समन्ततः ।
ऊर्ध्वाग्रा निखिलाः पादाः स्वामिनो वृद्धिहेतवे ॥ २१ ॥

---

१. 'ध्यमा नृपतेः श' ख. ग. पाठः। २. 'ध्रि' ख. पाठः। ३., ४. 'ना' क. पाठः। ५. 'सः' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

श्रेष्ठैकद्रव्यजा शय्या मिश्रद्रव्या न शस्यते ।
एकदारुं प्रशंसन्ति द्विदारुर्भयमावहेत् ॥ २२ ॥

त्रिदारुघटितायां तु स्वामिनो नियतो वधः ।
शय्यायां जायते यस्मात् तस्मात् तां परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

मूलमग्रेण संयुक्तमपसव्यं विगर्हितम् ।
मूलं मूलेन वा विद्धमेकाग्रे द्वे च दारुणी ॥ २४ ॥

मध्ये व्रणो मृत्युकरस्त्रिभागे व्याधिकारकः ।
क्लेशावहश्चतुर्भागे शिरस्थो द्रव्यहानिकृत् ॥ २५ ॥

निर्दोषगात्रे पर्यङ्के पापस्वप्नो न दृश्यते ।
ग्रन्थिकोटरवत् कुर्यात् तस्मान्न शयनासनम् ॥ २६ ॥

आसनं शयनीयं च ग्रन्थिकोटरवर्जितम् ।
बहुपुत्रकरं प्राहुर्धर्मकामार्थसाधनम् ॥ २७ ॥

आरोहणे प्रचलति शयने कम्पते तथा ।
विदेशयानकलहौ ते क्रमेण प्रयच्छतः ॥ २८ ॥

सुश्लिष्टां तामतः कुर्यान्निर्दोषां वर्णशालिनीम् ।
दृढां स्थिरां च स्थपतिः पत्युः कामविवृद्धये ॥ २९ ॥

निष्कुटं कोलदृक् क्रोडनयनं वत्सनाभकम् ।
कालकं बन्धकं चेति छिद्रसंक्षेप ईरितः ॥ ३० ॥

घटवत् सुषिरं मध्ये सङ्कटास्यं च निष्कुटम् ।
कोलाक्षं नीडमिच्छन्ति माषनिष्पावमात्रकम् ॥ ३१ ॥

अध्यर्धपर्वदीर्घं च विवर्णं विषमं तथा ।
तदिह क्रोडनयनं छिद्रमाहुर्महर्षयः ॥ ३२ ॥

भिन्नं पर्वमितं वामावर्तं स्याद् वत्सनाभकम् ।
कालकं कृष्णकान्ति स्याद् विनिर्भिन्नं तु बन्धकम् ॥ ३३ ॥

छिद्रं दारुसवर्णं यत् तन्नो शुभकरं तथा ।
निष्कुटेऽर्थक्षयः कोललोचने कुलविद्रवः ॥ ३४ ॥

---

१. 'मा' क. पाठः । २. 'क', ३. 'य्यायां कम्पतेऽथवा ।', ४. 'न्धु' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

शस्त्राद् भीः क्रोडनयने वत्सनाभे रुजो भयम् ।
कालके बन्धकाष्ठे च कीलच्छिद्रे च नो शुभम् ॥ ३५ ॥

सर्वत्र प्रचुरग्रन्थि दारु सर्वमनिष्टदम् ।
शय्यार्थे कथितैः क्लृप्तं दारुभिः शस्तमासनम् ॥ ३६ ॥

उपवेशसुखं मानं प्रशस्ताय प्रकल्पितम् ।
पुष्करः मृदहस्तश्च वृत्तोऽङ्गुलचतुष्टयात् ॥ ३७ ॥

आरभ्य विस्तरात् कार्यस्तावद् यावन्नवाङ्गुलम् ।
पुष्करव्यासतो दण्डस्तस्मात् सार्धत्रिगुणः ॥ ३८ ॥

फलकः पुष्करार्धेन तत्तुल्यश्चास्य सूलकः ।
स्थूलः स्याच्चतुरंशेन दण्डपुष्करविस्तरात् ॥ ३९ ॥

खातं च पुष्करस्यान्तस्तावद् गाम्भीर्यमिष्यते ।
प्रशस्तसारदारूत्थः कर्तव्योऽस्य प्रयोजनम् (?) ॥ ४० ॥

परिवेषणमन्यच्च पच्यमानानैरहकम् (?) ।
कार्यः कङ्कतकः श्लक्ष्णः प्रशस्तमृदुदारुजः ॥ ४१ ॥

आरभ्य दैर्घ्येणाष्टभ्यः स्याद् यावद् द्वादशाङ्गुलम् ।
सार्धाङ्गुलं चतुर्भागं विस्तारेण च दैर्घ्यतः ॥ ४२ ॥

मध्ये च तस्य बाहल्यं विस्ताराष्टांशतो भवेत् ।
एकतः स्थूलविस्तारा भवेयुस्तस्य दन्तकाः ॥ ४३ ॥

अन्यतस्तु घनाः सूक्ष्मास्तीक्ष्णाः कार्यास्तथाग्रतः ।
मध्ये त्रिभागमुत्सृज्य दन्तका भागयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥

त्रिभिर्भागे हृते तेषां न शेषस्तान् विवर्जयेत् (?) ।
गजदन्तमयः श्रेष्ठस्तथा शाखोटवृक्षजः ॥ ४५ ॥

मध्यमो दारुभिः शेषैर्जघन्योऽसारदारुजः ।
रूपकैः स्वस्तिकाद्यैर्वा स मध्ये स्यादलङ्कृतः ॥ ४६ ॥

यूकाद्यपनये केशविवेके चोपयुज्यते ।
अङ्गुलेनाधिके पादात् कार्ये दैर्घ्येण पादुके ॥ ४७ ॥

---

१. 'रः' ख. पाठः । २. 'स्य यावद् गा', ३. 'त्रखण्ट' क. पाठः
४. 'ङ्के', ५. 'सद्यङ्गुलं', ६. 'ताम्' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कृतायां पञ्चधा तस्यां कुर्याद् भागत्रयं पुरः ।
पश्चाद् भागद्वयं तत्र सङ्ग्रहोऽस्या विधीयते ॥ ४८ ॥

अङ्गुलत्रयमुत्सेधो विस्तारोऽङ्घ्र्यनुसारतः ।
अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्मध्यभागे मत्स्याद्यलङ्कृतौ ॥ ४९ ॥

कर्तव्यौ कीलकौ काष्ठदन्तशृङ्गादिसम्भवौ ।
गजेन्द्रदन्तः श्रीखण्डश्रीपर्ण्यौ मेषशृङ्गिका ॥ ५० ॥

शस्ताः पादुकयोः शाकक्षीरिणीचिरबिल्विकाः ।
इदमिह शयनानामासनानां च लक्ष्म
प्रकटितमनु दर्व्याः कङ्कतस्यापि सम्यक् ।
शुभमथ विपरीतं पादुकानां च विद्वान्
सकलमिति विदित्वा पूज्यतामेति लोके ॥ ५१½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
शयनासनलक्षणं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ राजगृहं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टोत्तरशतं ज्येष्ठं मध्यं स्यान्नवतिं करान् ।
जघन्यं सप्ततिकरान् राजवेश्म प्रशस्यते ॥ १ ॥

अतो हीनं न कर्तव्यं महतीं श्रियमिच्छता ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥ २ ॥

भागार्धं शस्यते भित्तिरादिकोणसमाश्रिता ।
चतुष्को भागिको मध्ये चतुःस्तम्भसमन्वितः ॥ ३ ॥

अलिन्दस्तद्बहिः कार्यः स्तम्भैर्द्वादशभिर्वृतः ।
विंशत्या स्याद् वरैर्युक्तो द्वितीयोऽलिन्दकस्ततः ॥ ४ ॥

---

१. 'ह्य' क. पाठः । २. 'ध्ये', ३. 'र्णी' ख. पाठः । ४. 'ष्के' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्यादष्टाविंशतिस्तम्भस्तृतीयश्चाप्यलिन्दकः ।
षट्त्रिंशता चतुर्थश्च स्तम्भानां परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

एवं स्तम्भशतं मध्ये प्रोक्तं पृथ्वीजये बुधैः ।
द्वाराणि चास्य चत्वारि पञ्चशाखानि जायते(?) ॥ ६ ॥

चत्वारो निर्गमास्तस्य प्रोक्ताः सर्वे त्रिभागिकाः ।
दिक्षु सर्वासु कर्तव्यमेवं भद्रनिवेशनम् ॥ ७ ॥

अर्धेन[1] मध्यभित्तेस्तु भित्तिभद्र[2](स्त्र?त्र)ये[3] भवेत् ।
भद्रेभद्रे धराणां स्याद् विंशतिश्चाष्टभिर्युता ॥ ८ ॥

मुखभद्रं भवेद् युक्तं वेदिकामत्तवारणैः ।
क्षेत्रभागोदयाद्या भूराभूमिफलकान्तरम् ॥ ९ ॥

आदिभूम्युदयार्धेन पीठं चास्य प्रकल्पयेत् ।
भागान्[4] नवोदयं कृत्वा भागेनैकेन[5] कुम्भिका ॥ १० ॥

कर्तव्याष्टांशयुक्तेन स्तम्भो भागचतुष्टये[6] ।
पादयुक्तं विधातव्यो भागेनोत्कलकं तथा ॥ ११ ॥

हीरग्रहणकं कार्यं भागं पादविवर्जि(तः?तम्) ।
सपादभागिकः पट्टः स्तम्भकेन समन्वितः ॥ १२ ॥

पट्टार्धेन जयन्त्यः स्युर्भूमौभूमावयं क्रमः ।
क्लृप्तभागोदयादर्धं भूमिष्वन्यासु हीयते ॥ १३ ॥

३९

पञ्चभागप्रमाणं तु सच्छाद्यं नवमं तलम् ।
वेदिकाया अधश्छाद्यं सार्धभागत्रयोन्मितम् ' ८ ॥
वत् ॥
कण्ठेन युक्तं कर्तव्यं वेदिका पिहिता यथा
तस्याः क(ण्ठे?ण्ठो) विधातव्यस्तन्मध्ये तद्वयी गिकः ॥ १५ ॥
त्रयम् ॥
वेदिकाविस्तरः कार्यो भागांस्तत्रार्धं ।
ते ।
वेदिकोपरि घण्टा च सार्धभागोश्चतु ६ ॥
ष्वपि ॥

---

१. 'त्ति', २. 'भ', ३., ४. 'यो', ५. त्रैष कीर्ति पाठः । ६. 'यः' ख. पाठः । ७. 'ग' क, 'भः' ख. पाठः । ८. 'स्थाप्यं म(पि?नि)' 'र्धं' क. पाठः । १०. 'शाशोभक्ष्दयार्धवती(?) तस्याः', ११. 'गं' ख

"Aho Shrut Gyanam"

भागद्वयं सपादं तु कण्ठः पट्टं तु पञ्चभिः ।
चतुर्भिश्च द्वितीयं च तृतीयं च त्रिभिस्ततः ॥ १७ ॥

सद्मशीर्षश्च दातव्यो यथाशोभं यथारुचि ।
क्षेत्रभागसमः कार्यः कलशश्चूलिकावधेः ॥ १८ ॥

उदयार्धेन भूमेः स्युरन्तराणि तलानि च ।
यथाशोभं तु कर्तव्यं पीठं तस्य सुशोभितम् ॥ १९ ॥

सार्धभागद्वयं चास्य कार्या खुरवरण्डिका ।
जङ्घा भागचतुष्कं च ततश्छाद्यं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

भागद्वयं च पादोनं छाद्यपिण्डः प्रकीर्तितः ।
निर्गमोऽस्य चतुर्भागो हंसाख्यस्तस्य चोपरि ॥ २१ ॥

पादोनभागं कर्तव्यं ततश्छाद्यं द्वितीयकम् ।
जङ्घा भूमिचतुष्केण प्रासादस्य प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

चतुर्थभूमिकामूर्ध्नि ततो मुण्डा(न्) निवेशयेत् ।
क्षणक्षणप्रवेशेन कार्याः शेषास्तु भूमिकाः ॥ २३ ॥

वेदिका च यथोक्ता स्यात् सघण्टा कलशान्विता ।
रेखाशुद्ध्या च कर्तव्या मुण्डा[1] सर्वे यथायथम् ॥ २४ ॥

अर्धोदयं त्रिधा कृत्वा तु[illegible] भजेत् ।
वामनश्च[illegible]त्रश्च कुबेरो [illegible] ॥ २५ ॥

हंसपृष्ठो म[illegible]भोगी नारदः [illegible]को जयः ।
अनन्तो द गर्भा[illegible]स्तेषां विधानकत्रशादमी ॥ २६ ॥

विधातव्याः [illegible]गतिभिर्मुण्डरेखाप्रसिद्धये ।
तमङ्गवेदिका न क क्षेत्र द[illegible]ततारभशोभितम् ॥ २७ ॥

वितर्दिनिर्यूहयु[illegible] भित्ति गालानिभूषितम् ।
कर्माढ्यं बहुचि[illegible] को मध्ये [illegible]ल पृथिवीजयम् ॥ २८ ॥

प्रासादाश्च महान्[illegible] यथाक्त समादयाः ।
अर्धोदयेन लघवो कार्यः [illegible](को)पादयं क्रमः ॥ २९ ॥
युक्तो द्वि

१. 'त' क. पाठः । २. [illegible] 'ध्ये', ३. 'म' ख. पाठः । ४. 'ण' क. पाठः । ५. 'म' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भूम्यष्टकादभ्युदयः क्षेत्रविस्तारसम्मितः ।
यतस्तव वधे प्रोक्तः प्रासादोऽन्यद् विभूषणम् (?) ॥ ३० ॥

बहवो निकरा येषु प्राङ्गणं तेषु दीयते ।
रेखायां प्रथमायां वा द्वितीयायामथापि वा ॥ ३१ ॥

तृतीयायां वा रेखायां तत्र संवरणाः स्मृताः ।
अयं भूम्युदयः कार्यः क्षेत्रे दशविभागिके ॥ ३२ ॥

न्यूनाधिकविभक्ते तु कार्यः स्यादनुसारतः ।
मुक्तकोणस्य लक्ष्माथ प्रक्रमागतमुच्यते ॥ ३३ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशकाङ्किते ।
भागश्चतु(ष्टो?ष्को) मध्येऽस्य चतु(र्द्धा?र्धे)रविभूषितः ॥ ३४ ॥

भागेन च ततोऽलिन्दो धरद्वादशकान्वितः ।
तद्वद् द्वितीयालिन्दोऽपि विंशत्या धारितो धरैः ॥ ३५ ॥

तृतीयश्च धरैरष्टाविंशत्यालिन्दको भवेत् ।
षट्त्रिंशता धरैर्युक्तः कार्योऽलिन्दश्चतुर्थकः ॥ ३६ ॥

चतुश्चत्वारिंशता स्याद् धरैर्युक्तश्च पञ्चमः ।
भागार्धं कारयेद् भित्तिं सार्धं भागं विमुच्य तु ॥ ३७ ॥

भागत्रयं ततः कुर्यात् प्राग्ग्रीवं दैर्घ्यविस्तृतौ ।
विस्तृतौ निर्गमे चैषां भद्रं भागेन कल्पयेत् ॥ ३८ ॥

भागिकं निर्गतं तस्मान्मध्येऽन्यद् भद्रमस्य हि ।
भागनिर्गमविस्तारं दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ ३९ ॥

चतुःपञ्चाशता स्तम्भैरेकैकं भद्रमन्वितम् ।
मध्ये चास्य चतुश्चत्वारिंशं स्तम्भशतं भवेत् ॥ ४० ॥

षोडशाभ्यधिका च स्याद् भद्रस्तम्भशतद्वयी ।
एवं धराणां सर्वेषां भवेत् षष्ठं शतत्रयम् ॥ ४१ ॥

पृथ्वीजयवदत्रापि शेषनिर्माणमिष्यते ।
तृतीयभूमिकामूर्ध्नि निर्गमेष्वखिलेष्वपि ॥ ४२ ॥

प्राङ्गणानि विधेयानि विशेषोऽत्रैष कीर्तितः ।
सर्वतोभद्रसंज्ञेऽथ शत्रुमर्दननाम(पि?नि) ॥ ४३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अयमेव विधिः कार्यो मुण्डरेखाप्रसिद्धये ।
श्रीवत्सस्यापि मध्ये स्यात् स्तम्भाढ्यं मुक्तकोणवत् ॥ ४४ ॥

सार्धं भागं परित्यज्य भागत्रितयविस्तृतम् ।
कर्णप्राग्ग्रीवमेतस्य भागेन च विनिर्गतम् ॥ ४५ ॥

भद्रं तस्यापि कर्तव्यं भागविस्तारनिर्गमम् ।
मुक्तकोणवदस्यापि मध्यभद्रं विधीयते ॥ ४६ ॥

अयं विधिः समग्रासु दिक्षु शेषं तु पूर्ववत् ।
प्रतिभद्रं धरास्त्रिंशद् भवन्त्यस्य दृढाः शुभाः ॥ ४७ ॥

शतं विंशमिदं (सर्व)धराणामिह कीर्तितम् ।
एवं समस्तस्तम्भानां चतुःषष्ठं शतद्वयम् ॥ ४८ ॥

सर्वतोभद्रसंज्ञस्य लक्ष्मेदानीं प्रचक्ष्महे ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ ४९ ॥

भागिकः स्याच्चतुष्कोऽस्य चतुःस्तम्भविभूषितः ।
स्तम्भैर्द्वादशभिर्युक्तः प्रथमः स्यादलिन्दकः ॥ ५० ॥

स्तम्भविंशतिसंयुक्तो द्वितीयः स्यादलिन्दकः ।
स्यादष्टाविंशतिस्तम्भस्तृतीयः स्या(ष्यादि)लिन्दकः ॥ ५१ ॥

षट्त्रिंशता चतुर्थः स्यादलिन्दो भूषितो धरैः ।
पञ्चमः स्याच्चतुश्चत्वारिंशता भूपितो धरैः ॥ ५२ ॥

द्वापञ्चाशद्धरः षष्ठः सर्वेऽप्येते[1]ऽस्य भागिकाः ।
भागार्धं शस्यते भित्तिः सर्वतः[2] सुदृढा घना ॥ ५३ ॥

सार्धभागं परित्यज्य भागत्रितयविस्तृतः ।
कर्णप्राग्ग्रीवकश्च स्याद् भागमेकं च निर्गमः ॥ ५४ ॥

भद्रमस्यापि कर्तव्यं भागनिर्गमविस्तृतम् ।
मध्ये भद्रं विधातव्यं भागद्वयविनिर्गतम् ॥ ५५ ॥

अस्यापि भद्रं[3] मध्ये स्याद् भागत्रितयविस्तृतम् ।
भागिको निर्गमश्चास्य तदन्तर्भागनिर्गतम् ॥ ५६ ॥

१. 'यस्या', २. 'त', ख. पाठः । ३. 'द्र' क. ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भागविस्तारसंयुक्तं भद्रमन्यत् प्रकल्पयेत् ।
दिक्षु सर्वास्वयं प्रोक्तो विधिर्भद्रप्रकल्पने ॥ ५७ ॥

स्तम्भानामस्य कर्तव्यं मध्ये षण्णवतं शतम् ।
भद्रेष्वेषु च सर्वेषु भवेत् षष्ट्यधिकं शतम् ॥ ५८ ॥

समेन प्रविभागेन स्तम्भानामेकसङ्ख्यया ।
इत्थं समस्तस्तम्भानां षट्पञ्चाशं शतत्रयम् ॥ ५९ ॥

किन्तु जङ्घा भवेदस्य भूमिकात्रितयोन्मिता ।
शत्रुमर्दनसंज्ञस्य धाम्नो लक्ष्माथ कथ्यते ॥ ६० ॥

पृथ्वीजयसमं मध्ये भित्तिश्चापि तथाविधा ।
सार्धं भागं परित्यज्य भागेनायतविस्तृतम् ॥ ६१ ॥

भद्रं विदध्यात् तन्मध्ये भागत्रितयविस्तृतम् ।
भद्रमेवं विधातव्यं भागत्रितयनिर्गतम् ॥ ६२ ॥

पार्श्वयोर्भागिकं भद्रमाय(त्यां?त्या) विस्तरेण च ।
भागत्रितयविस्तारं भागेनैकेन निर्गमम् ॥ ६३ ॥

मध्यभद्रं ततोऽपि स्याद् भागेनायतविस्तृतम् ।
क्रमोऽयं दिक्षु सर्वासु विधातव्योऽस्य सिद्धये ॥ ६४ ॥

ऊर्ध्वं पृथ्वीजयस्येव कार्यमस्यापरं पुनः ।
प्रतिभद्रं चतुश्चत्वारिंशत्स्तम्भसमन्वितम् ॥ ६५ ॥

मध्ये स्तम्भशतं चास्य विधेयं सुदृढं शुभम् ।
षट्सप्ततिस्तम्भशतद्वयमस्य भवेदिति ॥ ६६ ॥

पञ्चानामपि चैतेषां हस्ताष्टशतमुत्तमम् ।
मानमुत्सेधविस्तारात् कर्तव्यं श्रियमिच्छता ॥ ६७ ॥

मध्यमाधमयोर्मानं कीर्तितं पृथिवीजये ।
राज्ञः क्रीडार्थमन्यच्च कथ्यते गृहपञ्चकम् ॥ ६८ ॥

क्षोणीविभूषणं त्वाद्यं पृथिवीतिलकं परम् ।
प्रतापवर्धनं चान्यच्छ्रीनिवासं ततोऽपि च ॥ ६९ ॥

---

१. 'वं' क. पाठः । २. 'भद्रंम' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

लक्ष्मीविलाससंज्ञं च पञ्चमं परिकीर्तितम् ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागैर्विभाजिते ॥ ७० ॥

चतुष्को भागविस्तीर्णो मध्ये कार्यश्चतुर्धरः ।
बहिश्च भागिकोऽलिन्दस्तदन्तेंऽशत्रयायताः ॥ ७१ ॥

कर्णप्रासादकाः कार्या भागत्रितयविस्तृताः ।
तेषां षड्दारुकं मध्ये भित्तिर्भागार्धसम्मिता ॥ ७२ ॥

तद्बहिर्भागनिष्क्रान्तो भद्रे भागं च विस्तृतः ।
प्राग्ग्रीवत्रयसंयुक्तो भागिकालिन्दवेष्टितः ॥ ७३ ॥

अर्धभागिकभित्त्या च चतुष्को वेष्टितो भवेत् ।
प्रासादोऽयं मनोहारी भवेदवनिशेखरः ॥ ७४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ।
चतुष्को भागिको मध्ये बाह्यालिन्दौ च भागिकौ ॥ ७५ ॥

नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
षड्दारुकं च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ७६ ॥

ततोऽर्धभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो बहिः ।
भद्रे भागायतो भागविनिष्क्रान्तश्चतुर्दिशम् ॥ ७७ ॥

चतुष्को भागिकोऽलिन्दवेष्टितश्च विधीयते ।
अस्य भद्रत्रयं कार्यं भागविस्तारनिर्गमम् ॥ ७८ ॥

अर्धभागिकभित्त्या च वेष्टितं तद् विधीयते ।
कर्णेकर्णे (स?स्य)विस्तीर्णे द्वे भद्रे भागनिर्गते ॥ ७९ ॥

प्रासादमेवं भुवनतिलकं परिचक्षते ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागद्वादशभाजिते ॥ ८० ॥

चतुष्को भागिको मध्ये चतुःस्तम्भो विधीयते ।
तद्बहिर्भागिकोऽलिन्दो द्वितीयोऽपिच भागिकः ॥ ८१ ॥

नवकोष्ठांश्च कर्णेषु प्रासादान् विनिवेशयेत् ।
षड्दारुकं च कर्तव्यं तेषामन्तरसंश्रयम् ॥ ८२ ॥

---

१. 'द्व' क. पाठः । २. 'दि', ३. 'ताः' ख. ४. 'को' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ततोऽर्धभागिकी भित्तिः कर्तव्या सर्वतो बहिः ।
भद्रे भागायतो भद्रविनिष्क्रान्तश्चतुर्धरः ॥ ८३ ॥

चतुष्को भागिकालिन्दद्वयेन परिवेष्टितः ।
त्रिभागविस्तृतं भद्रं तद्बहिर्भागनिर्गतम् ॥ ८४ ॥

भागिकं प्रतिभद्रं च कुर्यादुभयतः समम् ।
भागार्धं बाह्यतो भित्तिर्भद्रस्य परितो भवेत् ॥ ८५ ॥

विधिरेष विधातव्यो दिक्ष्वेवं चतसृष्वपि ।
विलासस्तबको नाम प्रासादोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ८६ ॥

कर्णप्राग्ग्रीवकौ द्वौ द्वौ शालाप्राग्ग्रीवकौ यदा ।
स्यातामस्य तदा कीर्त्तिपताकः परिकीर्तितः ॥ ८७ ॥

अस्यैव पीठे निर्मुक्तशालाभिः परितोऽष्टभिः ।
अन्योन्यशालासंबद्धे यदासावेव दीयते ॥ ८८ ॥

कर्णप्रासादकोपेतः कोणैः शालोज्झितैर्युतः ।
प्रासादसुन्दरो ज्ञेयस्तदा भुवनमण्डनः ॥ ८९ ॥

एते प्रोक्तास्तलच्छन्दा जङ्घासंवरणादिकम् ।
भूमिमानादिकं यच्च तत् पृथ्वीजयवद् भवेत् ॥ ९० ॥

इदानीं कथ्यते लक्ष्म क्षोणीभूषणवेश्मनः ।
पञ्चपञ्चाशता हस्तैः कल्पिते चतुरश्रके ॥ ९१ ॥

विभक्ते चाष्टभिर्भागैश्चतुष्को भागिकः स्मृतः ।
चतुर्भिरन्वितः स्तम्भैरलिन्दश्चास्य भागिकः ॥ ९२ ॥

युक्तो द्वादशभिः स्तम्भैर्विंशत्या च द्वितीयकः ।
स्यादष्टाविंशतिधरस्तृतीयश्चाप्यलिन्दकः ॥ ९३ ॥

भित्तेरप्यर्धभागेन सार्धं भागं विमुच्यते ।
भागपञ्चकविस्तीर्णं भद्रं भागेन निर्गतम् ॥ ९४ ॥

तन्मध्यभद्रमन्यच्च भागत्रितयविस्तृतम् ।
भागेन निर्गतं कार्यं भद्रमन्यत् ततोऽपि च ॥ ९५ ॥

---

१. 'ष्के', २. 'वृते', ३. 'क्तावल' ख. पाठः । ४. 'स्तम्भे ज' क. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

भागेन विस्तृतं कार्यं भागेनापि च निर्गतम् ।
दिक्षु सर्वासु कर्तव्यो विधिरेषोऽस्य सिद्धये ॥ ९६ ॥

मध्यस्तम्भैश्चतुःषष्ट्या संयुक्तं सारदारुजैः ।
प्रतिभद्रं धरैः कार्यमष्टादशभिरन्वितम् ॥ ९७ ॥

षट्त्रिंशं शतमेवं स्यात् स्तम्भानामिह सर्वतः ।
चतुर्द्वारमिदं कार्यं यशःश्रीकीर्त्तिवर्धनम् ॥ ९८ ॥

पृथिवीतिलकस्याथ लक्षणं परिकीर्त्यते ।
चत्वारिंशत्करे क्षेत्रे भागैर्भक्तेऽथषष्ठकैः ॥ ९९ ॥

भागिकः स्याच्चतुष्कोऽन्तश्चतुःस्तम्भविभूषितः ।
अलिन्दोऽपिच भागेन स्तम्भैर्द्वादशभिर्युतः ॥ १०० ॥

विंशत्या च द्वितीयोऽपि भित्तिः स्यादस्य पादिका ।
कर्णे प्रासादको भागैस्त्रिभिः स्यान्निर्गतायतः ॥ १०१ ॥

अस्य भद्रद्वयं कार्यं भागनिर्गतविस्तृतम् ।
कर्णप्रासादयोर्मध्ये भागपञ्चकविस्तृतम् ॥ १०२ ॥

भागेन निर्गतं कार्यं भद्रं तस्यापि मध्यतः ।
भागत्रितयविस्तीर्णं भागेनैकेन निर्गतम् ॥ १०३ ॥

भद्रमस्यापि मध्येऽन्यद् भागेनायतनिर्गतम् ।
स्तम्भाः षट्त्रिंशदन्तः स्युर्भद्रेष्वष्टौ शतद्वयम् ॥ १०४ ॥

अथातः श्रीनिवासस्य लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ।
पृथ्वीतिलकवन्मध्यमेतस्य परिकीर्त्यते ॥ १०५ ॥

सपादं भागमुत्सृज्य भागत्रितयविस्तृतम् ।
भागेन निर्गतं चास्य भद्रमाद्यं प्रकल्पयेत् ॥ १०६ ॥

तस्यापि मध्यवर्तन्यद् भागनिर्गतविस्तृतम् ।
अन्वितं दशभिः स्तम्भैः सुदृढैस्तद् विधीयते ॥ १०७ ॥

सर्वास्वपि च दिक्ष्वेवं विधेया भद्रकल्पना ।
अस्य षट्सप्ततिः स्तम्भाः भवन्त्येकत्र सङ्ख्यया ॥ १०८ ॥

---

१. 'शःकीर्त्तिविव', २. 'र्द्वि' क. पाठः । ३. 'थ', ४. 'द्रंच यत्का' ख. पाठः । ५. 'कल्पते', ६. 'ष्ठ' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रतापवर्धनस्याथ लक्ष्म साम्प्रतमुच्यते ।
पञ्चविंशतिहस्ताङ्के सार्धभागत्रयाङ्किते ॥ १०९ ॥

मध्ये चतुष्को भागेन चतुर्भिः सम्भृतो धरैः ।
अलिन्दो भागिकश्चास्य स्तम्भद्वादशकान्वितः ॥ ११० ॥

पादिका भित्तिरेतस्य भद्रं चास्य प्रकल्पयेत् ।
भागनिर्गमविस्तारं चतुःस्तम्भविभूषितम् ॥ १११ ॥

विधिरेष समग्रासु दिक्षु कार्योऽस्य सिद्धये ।
स्तम्भैर्द्वात्रिंशता युक्तो बहिरन्तरयं भवेत् ॥ ११२ ॥

धराणां चैव सर्वेषां चतुःषष्टिः प्रकल्पना ।
अथ लक्ष्मीविलासस्य सम्यग् लक्ष्माधुनोच्यते ॥ ११३ ॥

प्रतापवर्धनस्येव मध्यमस्य प्रकल्पयेत् ।
प्रतापवर्धनसमं सर्वतोऽप्येतदीरितम् ॥ ११४ ॥

किन्त्वस्य पार्श्वभद्राणि भद्राणामेव कारयेत् ।
कोणेष्वपिच भद्राणि पार्श्वयोरुभयोस्तथा ॥ ११५ ॥

भाग(स्य?श्च) निर्गमोऽप्येषां विशेषोऽस्मादयं मतः ।
भद्रमस्य दशस्तम्भैर्मध्यं षोडशभिर्धरैः ॥ ११६ ॥

चतुर्द्वारं भवेदेतदिच्छया क्षणमध्यगम् ।
द्वारमन्यद् विधातव्यं स्वपदे स्यात् सुशोभितम् ॥ ११७ ॥

भूमिभिः सार्धषष्ठीभिर्विधेयः क्षोणिभूषणः ।
अर्धाष्टमीभिश्च भवेत् पृथ्वीतिलकसंज्ञकः ॥ ११८ ॥

स्यात् सार्धपञ्चमीभिस्तु श्रीनिवासोऽत्र भूमिभिः ।
लक्ष्मीविलाससंज्ञोऽर्धपञ्चमीभिर्विधीयते ॥ ११९ ॥

प्रतापवर्धनाख्योऽर्धचतुर्थीभिर्विधीयते ।
राज्ञां पृथ्वीजयादीनि निवासभवनानि च ॥ १२० ॥

क्षोणीविभूषणादीनि विलासभवनानि च ।
यान्युक्तानि निवासाय विलासाय च भूभृताम् ॥ १२१ ॥

---

१. 'तो' क. पाठः । २. 'गास्या नि', ३. 'म्भं म', ४. 'म' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तेषां पृथ्वीजयादीनां द्वारमानमथोच्यते ।
चतुःपञ्चाशदंशो यो विस्तृतः सकरत्रयः ॥ १२२ ॥
स द्वारस्योदयः प्रोक्तस्तदर्धेनास्य विस्तृतिः ।
स्वोदयस्य त्रिभागेन पिण्डः स्तम्भेषु शस्यते ॥ १२३ ॥
स्यात् सप्तविंशतितमः सपादः सचतुष्करः ।
गृहभागो भवेद् भूमिः प्रथमा राजवेश्मनाम् ॥ १२४ ॥
भूच्छ्राये नवधा भक्ते तदंशकचतुष्टयम् ।
निर्गमश्छाद्यकस्यांशद्वयं पादोनमुच्छ्रयः ॥ १२५ ॥
तथान्तरावणी कार्या छाद्यकोच्छ्रायनिर्गता ।
हीरग्रहणपिण्डार्धबाहल्या सा प्रशस्यते ॥ १२६ ॥
तस्याः स्वमेव बाहल्यं पादोनं विस्तृतिः स्मृता ।
अन्तरावणिकातुल्यो मदलाया विनिर्गमः ॥ १२७ ॥
स्वनिर्गमात् तथा चास्याः सपादः स्यात् समुच्छ्रयः ।
भूम्युच्छ्रयनवांशस्य पादोऽस्या[1]ः पिण्डमिष्यते ॥ १२८ ॥
भूनवांशस्त्रिभागोनो मदलायाश्च विस्तृतिः ।
*लुमामूलस्य स्तम्भार्धं विस्तारः परिकीर्तितः ॥ १२९ ॥
तत्त्र्यंशादग्रविस्तीर्णा मूले साष्टांशयुग् भवेत् ।
तुम्बिनी लम्बिनी हेला शान्ता कोला मनोरमा ॥ १३० ॥
आध्माता चैत्यमूः प्रोक्ता लुमाः सप्त मनीषिभिः ।
ऋजुः सा लम्बिनी तासामाध्माता कर्णगा स्मृता । १३१ ॥
अन्तराले क्रमेण स्युः पञ्चान्याः परिकीर्तिताः ।
स्तम्भे निदध्यान्मदलां छाद्यं धर्तुं दृढां शुभाम् ॥ १३२ ॥
स्तम्भाभावे पुनर्न्यस्येत् कुड्यपट्टेऽपि तां सुधीः ।
सप्त पञ्चाथवा तिस्रो मल्लच्छाद्ये लुमाः स्मृताः ॥ १३३ ॥
कोणेष्वेता इमाभ्योऽन्याः कर्तव्याः प्राञ्जलाः समाः ।
छाद्ये[3] कर्णात् क्वचित् कार्या मकराननभूषिताः ॥ १३४ ॥

१. 'मतःस' ख. पाठः । २. 'स्यां', ३. 'द्य' ख. पाठः ।

* 'लुपा' इति शिल्पशास्त्रे प्रसिद्धिः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तेऽपि विद्याधरोपेताः क्वचित् सगजतुण्डिकाः ।
सकुम्भिकस्य स्तम्भस्य प्रविभज्योदयं त्रिधा ॥ १३५ ॥

तत्र भागद्वयं कुर्याद् भागानर्धचतुर्थकान् ।
तत्र पादोनभागेन राजितासनकं भवेत् ॥ १३६ ॥

ततः सोल्कलका वेदी साङ्घ्रिभागा विधीयते ।
कूटागारसमांशार्धं कार्योऽत्रासनपट्टकः ॥ १३७ ॥

स स्याद्भी(प्टी?ष्ट)विस्तारो भागोच्चं मत्तवारणम् ।
स्वोदयस्य त्रिभागेन निर्यक् कार्योऽस्य निर्गमः ॥ १३८ ॥

रूपकैः करणायाभिः(?)सुपत्रैरपि शोभितम् ।
वेदिकादिकमप्यस्य रूपपत्राचितं शुभम् ॥ १३९ ॥
आयसीभिः शलाकाभिः कीलकैश्च दृढीकृतम् ।

एतानि पञ्चदशराजनिवेशनानि
पृथ्वीजयप्रभृति यानि निरूपितानि ।
यो लक्षणेन सहितं परिमाणमेषां
जानाति तस्य नृपतिः परितोषमेति ॥ १४०½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
राजगृहं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ यन्त्रविधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

भ्राम्यद्दिनेशशशिमण्डलचक्रश(र्स?स्त)-
मेतज्जगत्त्रितयमन्त्रमलक्ष्यमध्यम् ।
भूतानि बीजमखिलान्यपि सम्प्रकल्प्य
यः सन्ततं भ्रमयति स्मरजित् स वोऽव्यात् ॥ १ ॥

यन्त्राध्यायमथ ब्रूमो यथावत् क्रमागतम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेकमिह कारणम् ॥ २ ॥

१. 'मा' ख. पाठः । २. 'क्र' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि स्वेन वर्त्मना ।
नियम्यास्मिन् नयति यत् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥ ३ ॥

स्वरसेन प्रवृत्तानि भूतानि स्वमनीषया ।
कृतं यस्माद् यमयति तद्वा यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥

तस्य बीजं चतुर्धा स्यात् क्षितिरापोऽनलोऽनिलः ।
आश्रयत्वेन चैतेषां[1] वियदप्युपयुज्यते ॥ ५ ॥

भिन्नः सूतैश्च[2] (कै?यै)रुक्तस्ते च सम्यङ् न जानते[3] ।
§प्रकृत्या पार्थिवैः सूत(स्त्रा?स्त्र)यात् † तत्र क्रिया भवेत् ॥ ६ ॥

पार्थिवत्वादयमता न कदाचिद् विभिद्यते[4] ।
द्रव्यत्वादग्निजत्वं हि यन्त्रस्य परिकल्प्यते ॥ ७ ॥

तदा विरोधो नैवास्य पावकेनोपपद्यते ।
गन्धाद् वह्निर्विरोधाच्च स्थिता पार्थिवता बलात् ॥ ८ ॥

आत्मैव बीजं सर्वेषां प्रत्येकमपराण्यपि ।
एवं भेदा भवन्त्येषां भूयांसः सङ्करान्मिथः ॥ ९ ॥

स्वयंवाहकमेकं स्यात् सकृत्प्रेर्यं तथापरम् ।
अन्यदन्तरितं वाह्यं[5] वाह्यमन्यत्तु[6] दूरतः ॥ १० ॥

स्वयंवाह्यमिहोत्कृष्टं हीनं स्यादितरत् त्रयम् ।
तेषु शंसन्ति दूरस्थमलक्ष्यं निकटस्थितम् ॥ ११ ॥

य(द्यु?दु)त्पन्नमलक्ष्यं[9] यदेकं बहुषु साधकम् ।
तदन्यदपि शंसन्ति यस्माद् विस्मयकृन्नृणाम् ॥ १२ ॥

एका स्वीया गतिश्चित्रे वाह्येऽन्या वाहकाश्रिता ।
अरघट्टाश्रिते कीटे दृश्यते द्वयमप्यदः ॥ १३ ॥

इत्थं गतिद्वयवशाद् वैचित्र्यं कल्पयेत् स्वयम् ।
अलक्षता विचित्रत्वं यस्माद् यन्त्रेषु शस्यते ॥ १४ ॥

---

१. 'तै' क. पाठः । २. 'श्च' क. ग. पाठः । ३. 'य' ख. पाठः । ४. 'वस्तभापां च तत्र', ५. 'भज्यते' क. पाठः । ६. , ७. 'बा', ८. त्र दू ख. ग. पाठः । ९. 'क्षं' क. पाठः ।

---

§ 'प्रकृत्या स्वभावेन पार्थिवो भागः बहुलः' इति, † 'तत्र उदकतेजोवायूनां क्रिया कार्यं भवेत्' इति च टिप्पणमस्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

अन्यत् स्याद्न्तरा(त्रे?मे)यं द्वितीयं मध्यमं त्विदम् ।
द्व्यत्रयादियोगेन चतुर्णामपि योगतः ॥ १५ ॥

अंशांशिभावाद् भूतानां सङ्ख्यैषामतिरिच्यते ।
यः सम्यगेतज्जानाति स पुमान् भवति प्रियः ॥ १६ ॥

प्रमदानां नृपाणां च प्रज्ञानां च मतस्य च ।
लाभं ख्यातिं च पूजां च यशो मानं धनानि च ॥ १७ ॥

प्राप्नोति किं किं न पुमान् य इदं वेत्ति तत्त्वतः ।
गृहमेकं विलासानामाश्चर्यस्य परं पदम् ॥ १८ ॥

रतेरावासभवनं विस्मयस्यैकमास्पदम् ।
यथावद् देवतादीनां रूपचेष्टादिदर्शनात् ॥ १९ ॥

तास्तुष्यन्त्यथ तत्तुष्टि[1]:पूर्वैर्धर्मः प्रकीर्तितः ।
नृपादितोपादर्थः स्यादर्थे कामः प्रतिष्ठितः ॥ २० ॥

वि[2]त्तैक्यादस्य निष्पत्तिर्मोक्षश्चास्मान्न दुर्लभः ।
पार्थिवं पार्थिवैर्बीजैः पार्थिवं जलजन्मभिः ॥ २१ ॥

तदेव तेजोजनितैस्तदेव मरुदुद्भवैः ।
आप्यमाप्यैस्तथा बीजगानैलैरानिलैरपि ॥ २२ ॥

वह्निजैश्च मरुज्जातैः पार्थिवैर्वारुणैरपि ।
मारुतं मारुतैराप्यैः पार्थिवैरानलैस्तथा ॥ २३ ॥

वह्निजातेऽपि[3] बीजं स्यात् सूतः सोऽपिच वा(न?नि)ले ।
पार्थिवानां भवेद् बीजमाप्यानामपि वा(रणे?रुणम्) ॥ २४ ॥

इति बीजानि सर्वेषां कीर्तितान्यखिलान्यपि ।
कुड्यंकरणसूत्राणि भारगोलकपीडनम् ॥ २५ ॥

लम्बनं लम्बकारे च चक्राणि विविधान्यपि ।
अयस्ताम्रं च तारं च त्रपु संक्लिष्टमर्दने ॥ २६ ॥

काष्ठं च चर्म वस्त्रं च स्वबीजेषु प्रयुज्यते ।
उर्दकः कर्तरो यष्टिश्चक्रं भ्रमरकस्तथा ॥ २७ ॥

१. 'ष्टेः', २. 'चि', ३. 'मारुतोऽ', ४. 'नि' क. पाठः । ५. 'पु'
६. 'भा', ७. 'उरंग्यक' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भृङ्गावली च नाराचः स्वबीजान्यौर्वरे विदुः ।
ताप उत्तेजनं स्तोभः क्षोभश्च जलसङ्गजः ॥ २८ ॥

एवमाद्यग्निबीजानि पार्थिवस्य प्रचक्षते ।
धारा च जलभारश्च पयसो भ्रमणं तथा ॥ २९ ॥

एवमादीनि भूजस्य जलजानि प्रचक्षते ।
यथोच्छ्रायो यथाधिक्यं यथा नीरन्ध्रतापि च ॥ ३० ॥

अत्यन्तमूर्ध्वगामित्वं स्वबीजान्यग्रसस्तथा ।
मरुत् स्वभावजो गाढग्राहकैश्च प्रतीप्सितः ॥ ३१ ॥

इत्याद्यैर्बीजनाद्यैश्च गजकर्णादिभिः कृतः ।
(छा?चा)णितो गालितश्चायं बीजं भवति भूभवे ॥ ३२ ॥

काष्ठं (भृ?कृ)त्तिश्च क्षोदं च जलजं पार्थिवं भवेत् ।
अन्यदम्भस्तदध्यस्तु तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ ३३ ॥

बीजं स्वकीयं भवति यन्त्रेषु जलजन्मसु ।
तापाद्यं पूर्वकथितं वह्निजं जलजे भवेत् ॥ ३४ ॥

सङ्गृहीतश्च दत्तश्च पूरितः प्रतिनोदितः ।
मरुद् बीजत्वमायाति यन्त्रेषु जलजन्मसु ॥ ३५ ॥

वह्निजातेषु मृत्ताम्रलोहरुक्मादि तद्ग्रहे ।
पार्थिवं कथयन्तीह बीजं बीजविचक्षणाः ॥ ३६ ॥

वह्नेर्वह्निर्भवेद् बीजमाप आपस्तथा भवेत् ।
आद्यैरित्यादिभिः प्रोक्तैर्मरुद् गच्छति बीजताम् ॥ ३७ ॥

प्रत्येषकं च जनकं प्रेरकं ग्राहकं तथा ।
सङ्ग्राहकं च भूजातं बीजं स्यादनिलोद्भवैः ॥ ३८ ॥

प्रेरणं चाभिघातश्च विवर्तो भ्रमणं तथा
जलजं मारुतोत्थेषु बीजं स्यादिति सम्मतम् ॥ ३९ ॥

सङ्गृहीतस्य तापाद्यैर्यानि पावकजन्मनि ।
प्रकीर्तितानि तान्येव भवन्ति पवनोद्भवैः ॥ ४० ॥

---

१. 'र्ये', २. 'स्थिता', क. पाठः । ३. 'नले', ४. 'सु', ५. 'न्तं', ६. 'स्तादपात्र ति', ७. 'ना' ख. पाठः । ८. 'हु' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रेरितः सङ्गृहीतश्च जनितश्च समीरणः ।
आत्मनो बीजतां गच्छत्येवमन्यत् प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥

भूतमेकमिहोद्रिक्तमन्यद्धीनं ततोऽधिकम् ।
अन्यद्धीनतरं चान्यदेवंमार्यैर्विकल्पितः ॥ ४२ ॥

नाना भेदा भवन्त्येषां कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ।
निष्क्रिया भूः क्रिया त्वंशे शेषेषु सहजा त्रिषु ॥ ४३ ॥

अतः प्रायेण सा जन्या क्षितावेव प्रयत्नतः ।
साध्यस्य रूपवशतः सन्निवेशो यतो भवेत् ॥ ४४ ॥

यन्त्राणामाकृतिस्तेन निर्णेतुं नैव शक्यते ।
यथावद्बीजसंयोगः सौश्लिष्ट्यं श्लक्ष्णतापि च ॥ ४५ ॥

अलक्षता निर्वहणं लघुत्वं शब्दहीनता ।
शब्दे साध्ये तदाधिक्यमशैथिल्यमगाढता ॥ ४६ ॥

वहनीषु समस्तासु सौश्लिष्ट्यं चास्खलद्गति ।
यथाभीष्टार्थकारित्वं लयतालानुगामिता ॥ ४७ ॥

इष्टकालेऽर्थदर्शित्वं पुनः सम्यक्त्वसंवृतिः ।
अनुल्बणत्वं तादृप्यं दार्ढ्यं मसृणता तथा ॥ ४८ ॥

चिरकालसहत्वं च यन्त्रस्यैते गुणाः स्मृताः ।
एकं बहूनि चलयेद् बहुभिश्चाल्यतेऽपरम् ॥ ४९ ॥

सुश्लिष्टत्वमलक्षत्वं यन्त्राणां परमो गुणः ।
अथ कर्माणि यन्त्राणां विचित्राणि यथाविधि ॥ ५० ॥

नविस्तरान्नसङ्क्षेपात् साम्प्रतं संप्रचक्ष्महे ।
कस्यचित् सा क्रिया साध्या कालः कस्यापि कस्यचित् ॥ ५१ ॥

शब्दः कस्यापि चोच्छ्रायो रूपस्पर्शौ च कस्यचित् ।
क्रियास्तु कार्यस्य वशादनन्ताः परिकीर्तिताः ॥ ५२ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पृष्ठे पुरतः पार्श्वयोरपि ।
गमनं सरणं पात इति भेदाः क्रियोद्भवाः ॥ ५३ ॥

---

१. 'यो विक' क. पाठः । २. 'जात्या श्रि' ख. ग. पाठः । ३. 'तद्भय' ४. 'न' क. पाठः । ५. 'त', ६. 'श्रि:' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कालो मुहूर्तकाष्ठाद्यैर्भिन्नो भेदैरनेकधा ।
शब्दो विचित्रः सुखदो रतिकृद् भीषणस्तथा ॥ ५४ ॥

उच्छ्रायस्तु जलस्य स्यात् क्वचिद् भूजेऽपि शस्यते ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च पटहो वंश एव च ॥ ५५ ॥

वीणा च कांस्यतालश्च तृमिला करटापि च ।
यत्किञ्चिदन्यदप्यत्र वादित्रादि विभाव्यते ॥ ५६ ॥

समस्तमपि तद् यन्त्राज्जायते कल्पनावशात् ।
नृत्ये तु नाटकं चोक्तं[1]स्ताण्डवं लास्यमेव च ॥ ५७ ॥

राजमार्गश्च देशी च यन्त्रात् सर्वं प्रसिध्यति ।
तथा जात्यनुगाश्चेष्टा विरुद्धा यास्तु[2] जातितः ॥ ५८ ॥

ताः सर्वा अपि सिध्यन्ति सम्यग्यन्त्रस्य साधनात् ।
भूचराणां गतिर्व्योम्नि भूमौ व्योमचरागमः ॥ ५९ ॥

चेष्टितान्यपि मर्त्यानां तथा भूमिस्पृशामिव ।
जायन्ते यन्त्रनिर्माणाद् विविधानीप्सितानि च ॥ ६० ॥

यथासुरा जिता देवैर्यथा निर्मथितोऽम्बुधिः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नृसिंहेन हतो यथा ॥ ६१ ॥

धावनं हस्तियुद्धं च गजानामगडोऽपि[3] च ।
नानाप्रका(र?रा) या चेष्टा नानाधारागृहाणि च ॥ ६२ ॥

दोलाकेल्यो विचित्राश्च तथा रतिगृहाणि च ।
चित्रा से(न?ना) च कुड्यश्च स्वयंवाहकसेवकाः ॥ ६३ ॥

सभाश्च विविधाकाराः सत्या मायाः प्रकल्पिताः ।
एवंप्रायाणि चान्यानि यन्त्रात् सिध्यन्ति कल्पनात् ॥ ६४ ॥

विधाय भूमिकाः पञ्च शय्यां त्वादिभुवि स्थिताम् ।
प्रतिप्रहरमन्यासु सर्पन्ती याति पञ्चमीम् ॥ ६५ ॥

एवंप्रायाणि चित्राणि सम्यक् सिध्यन्ति यन्त्रतः ।
क्रमेण त्रिंशतावर्तं स्थाले दन्ता भ्रमन्त्यसौ ॥ ६६ ॥

---

१. 'ध्य', क. २. 'श्च' ख. ग. पाठः । ३. 'राजना' ख. पाठः । ४. 'त्रासने च', ५. 'व्याकुला', ६. 'ता एवं' क. पाठः । ७. 'त्रिंशते वर्ती' ख. ग पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तन्मध्ये पुत्रिका क्लृप्ता प्रति नाडिं प्रबोधयेत् ।
वह्नेश्च दर्शनं तोये वह्निमध्याज्जलोद्गतिः ॥ ६७ ॥
अवस्तुतोऽपि वस्तुत्वं वस्तुतोऽपि तथान्यथा ।
निःश्वासेन वियद् याति श्वासेनायाति मेदिनीम् ॥ ६८ ॥
क्षीरोदमध्यगा शय्या प्रतीष्टाधः फणाभृता ।
गोलश्च सू(ति?चि)विहितः सूर्यादीनां प्रदक्षिणम् ॥ ६९ ॥
परिभ्राम्यत्यहोरात्रं ग्रहाणां दर्शयन् गतिम् ।
गजादि[२]रूपे रथिकरूपतां गमितः पुमान् ॥ ७० ॥
भ्रान्त्वा नाडिकया तस्याः पर्य[३]न्ते हन्ति (भो?यो)जनम् ।
दीपिकापुत्रिका क्लृप्ता क्षीणं क्षीणं प्रयच्छति ॥ ७१ ॥
दीपे तैलं प्रनृ[४]त्यन्ती तालगत्या प्रदक्षिणम् ।
यावत् प्रदीयते वारि तावत् पिबति सन्ततम् ॥ ७२ ॥
यन्त्रेण कल्पितो हस्ती न तद् गच्छत् प्रतीयते ।
शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तास्तालस्यानुगमान्मुहुः ॥ ७३ ॥
जनस्य विस्मयकृतो नृत्यन्ति च पठन्ति च ।
पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा तुरगो मर्कटोऽपि वा ॥ ७४ ॥
वल[५]नैर्वर्तनैर्नृत्यंस्तालेन हरते मनः ।
येनैव वर्त्मना क्षेत्रं ध्रियते तेन तत्पयः ॥ ७५ ॥
यात्यायाति पुनस्तद्वद् गर्तात् पुष्करिणीष्वपि ।
फलके कानि (?) तिष्ठन्ति धावन्त्यनुमतानि च ॥ ७६ ॥
या(तां?तं) ददति युध्यन्ते निर्यान्त्यश्रमनाहृतम् ।
नृत्यन्ति गायन्ति तथा वंशादीन् वादयन्ति च ॥ ७७ ॥
निरुद्धमुक्तस्य वशान्मरुतो यन्त्रभङ्गिभिः ।
याश्चेष्टा दिव्यमानुष्यस्ता एवात्र न केवलम् ॥ ७८ ॥
दुष्करं यद्यदन्यच्च तत्तद् यन्त्रात् प्रसिध्यति ।
यन्त्राणां घटना नोक्ता गुप्त्यर्थं नाज्ञतावशात् ॥ ७९ ॥

१., २. 'ति' क. पाठः । ३. 'ह्रे' ख. ग. पाठः ४. 'मृष्यन्ती', ५. 'र्न' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तत्र हेतुरयं ज्ञेयो व्यक्ता नैते फलप्रदाः ।
कथितान्यत्र बीजानि यन्त्राणां घटना न यत् ॥ ८० ॥

तस्माद् व्यक्तीकृतेष्वेषु न स्यात् स्वार्थो न कौतुकम् ।
वस्तुतः कथितं सर्वं बीजानामिह कीर्तनात् ॥ ८१ ॥

अश्रुतं स्वधिया प्राज्ञैर्यन्त्राणां कर्म यद् यथा ।
यन्त्राणि यानि दृष्टानि कीर्तितान्यत्र तान्यपि ॥ ८२ ॥

नष्टानि यस्मात् तान्यातो विज्ञेयान्युपदेशतः ।
एतत् स्वबुद्ध्यैवास्माभिः समग्रमपि कल्पितम् ॥ ८३ ॥

अग्रतश्च पुनर्ब्रूमः कथितं यत् पुरातनैः ।

बीजं चतुर्विधमिह प्रवदन्ति यन्त्रे-
ष्वम्भोग्निभूमिपवनैर्निहितैर्यथावत् ।
प्रत्येकतो बहुविधं हि विभागतः स्या-
न्मिश्रैर्गुणैः पुनरिदं गणनामपास्येत् ॥ ८४ ॥

किमेतस्मादन्यद् भवति भुवने चित्रमपरं
किमन्यद् वा तुष्ट्यै भवति किमु वा कौतुककरम् ।
किमन्यद् वा कीर्तेर्भवनमपरं कामसदनं
किमस्मात् पुण्यं वा किमिव च परीतापशमनम् ॥ ८५ ॥

एतेऽत्यर्थं प्रीतिदा बीजयोगाः संजायन्ते योजिताः सूत्रधारैः ।
भ्रान्त्या नान्यश्चित्रकृद् दारुकॢप्तं चक्रं दोलाद्यं पुनः पञ्चमं तत् ॥ ८६ ॥

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः ।
सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मिंश्चित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ ८७ ॥

चित्रैर्युक्तं ये गुणैः पञ्चरूपं आनन्त्येन यन्त्रशास्त्राधिकारम् ।
ये वा कृत्स्नं योजयन्तेऽत्र सम्यक् तेषां कीर्तिर्या भुवं चाप्नुणोति ॥ ८८ ॥

अङ्गुलेन मितमङ्गुलत्रयादुत्थितं द्विपुटकं तनुवृत्तम् ।
संविधेयमृजु मध्यगरन्ध्रं श्लिष्टसन्धि दृढताम्रमयं तत् ॥ ८९ ॥

---

१. 'नु' क. ख. पाठः । २. 'द्वितोऽस्मा', ३. 'ह', ४. 'कृ' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

दारवेषु विहगेषु तदन्तः क्षिप्तमुद्धतसमीरवशेन ।
आतनोति विचलन्मृदुशब्दं शृण्वतां भवति चित्रकरं च ॥ ९० ॥

सुश्लिष्टखण्डद्वितयेन कृत्वा सरन्ध्रमन्तर्मुरजानुकारम् ।
ग्रस्तं तथा कुण्डलयोर्युगेन मध्ये पुटं तस्य मृदु प्रदेयम् ॥ ९१ ॥

पूर्वोक्तयन्त्रे विधिनोदरेऽस्य क्षिप्तेऽथ शय्यातलसंस्थमेतत् ।
ध्वनिं ततः सञ्चलनादनङ्गक्रीडारसोल्लासकरं करोति ॥ ९२ ॥

अस्मिन् शय्यातलविनिहिते मुञ्चति व्यक्तरागं
चित्रान् शब्दान् मृगशिशुदृशां या(न्ति?ति) भीत्येव मानः ।
किञ्चैतासां दयितमभितो निर्भरप्रेमभाजां
प्रौढिं गच्छन्त्यधिकमधिकं मन्मथक्रीडितानि ॥ ९३ ॥

पटहमुरजे वेणुः शङ्खो विपञ्च्यथ काहला
डमरुटिविले वाद्यातोद्यान्यमून्यखिलान्यपि ।
मधुरमधिकं याचित्रं च ध्वनिं विदधात्यलं
तदिह विधिना रुद्धोन्मुक्तानिलस्य विजृम्भितम् ॥ ९४ ॥

लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चा(ति?ग्नि)पूर्णम् ॥

तत्रारूढः पूरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चालप्रोज्झितेनानिलेन ।
सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥

इत्थमेव सुरमन्दिरतुल्यं सञ्चलत्यलघु दारुविमानम् ।
आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ॥ ९७ ॥

अयःकपालाहितमन्दवह्निप्रतप्ततत्कुम्भभुवा गुणेन ।
व्योम्नो झगित्याभरणत्वमेति सन्तप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ॥ ९८ ॥

वृत्तसन्धितमथायसयन्त्रं तद् विधाय रसपूरितमन्तः ।
उच्चदेशविनिधापिततप्तं सिंहनादमुरजं विदधाति ॥ ९९ ॥

---

१. 'प्र', २. 'खडहि' ख. ग. पाठः । ३. 'रफु', ४. 'भे' क. पाठः ।
५. 'नि' ख. पाठः । ६. 'म' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स कोऽप्यस्य स्फारः स्फुरति नरसिंहस्य महिमा
पुरस्ताद् यस्यैता मदजलमुचोऽपि द्विपघटाः ।
मुहुः श्रुत्वा श्रुत्वा निनदमपि गम्भीरविषमं
पलायन्ते भीतास्त्वरितमवधूयाङ्कुशमपि ॥ १०० ॥

दृग्ग्रीवातलहस्तप्रकोष्ठबाहूरुहस्तशाखादि[2] ।
सच्छिद्रं वपुरखिलं तत्सन्धिषु खण्डशो[3] घटयेत् ॥ १०१ ॥

श्लिष्टं कीलकविधिना दारुमयं सृष्टचर्मणा गुप्तम् ।
पुंसोऽथवा युवत्या रूपं कृत्वातिरमणीयम् ॥ १०२ ॥

रन्ध्रगतैः प्रत्यङ्गं विधिना नाराचसङ्गतैः सूत्रैः ।
ग्रीवाचलनप्रसरणविकुञ्चनादीनि विदधाति ॥ १०३ ॥

करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्र(माणा?णामा)दि[4] ।
आदर्शप्रतिलोकनवीणावाद्यादि च करोति ॥ १०४ ॥

एवमन्यदपि चेदृशमेतत् कर्म विस्मयविधायि विधत्ते ।
जृम्भितेन विधिना निजबुद्धेः कृष्टमुक्तगुणचक्रवशेन ॥ १०५ ॥

पुंसो दारुजमूर्ध्वं रूपं कृत्वा निकेतनद्वारि ।
तत्करयोजितदण्डं निरुणद्धि प्रविशतां वर्त्म ॥ १०६ ॥

खड्गहस्तमथ मुद्गरहस्तं कुन्तहस्तमथवा यदि तत् स्यात् ।
तन्निहन्ति विशतो निशि चौरान् द्वारि संवृतमुखं प्रसभेन ॥ १०७ ॥

ये चापाद्या ये[7] शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै ।
ये क्रीडाद्याः क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम् ॥

इदानीं प्रक्रमायातं वारियन्त्रं प्रचक्ष्महे ।
क्रीडार्थं कार्यसिद्ध्यै च चतुर्धा तद्गतिं विदुः ॥ १०९ ॥

निम्नगं भवति द्रोणीदेशादूर्ध्वस्थिताज्जलम् ।
यत्र तत् पातयन्त्रं स्याद् वाटिकादिप्रयोजनम् ॥ ११० ॥

---

१. 'प' क. पाठः । २. 'बाहुवा' ख. ग. पाठः । ३. 'शोऽथ घ', ४. 'नि', ५. 'ध', ६. 'मूर्ध' क. पाठः । ७. 'ये च शतघ्याद', ८. 'रूणाम्', ९. 'ण्या' ख. पाठः । १०. 'द' क. पाठः । ११. 'घा' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

उच्छ्रायसमपाताख्यं यत्रोर्ध्वा नाडिका पयः ।
जलाधारगुणान्मुञ्चेदधस्तात् समनाडि(का?कम्) ॥ १११ ॥

यत्रं पातसमुच्छ्रायं पतित्वोच्छ्रायतो जलम् ।
तिर्यग् गत्वा प्रयात्यूर्ध्वं सच्छिद्रस्तम्भयोगतः ॥ ११२ ॥

पतित्वोच्छ्रायतस्तोयं तिर्यगूर्ध्वोर्ध्वमेत्यथ ।
सच्छिद्रस्तम्भयोगेन तत् स्यात् पातसमोच्छ्रयम् ॥ ११३ ॥

वाप्यां वापि च कूपे विधानतो दीर्धिकादिका विहिता ।
यत्रोर्ध्वमम्बु गमयति तदिहोच्छ्रयसंज्ञितं कथितम् ॥ ११४ ॥

दारुजमिभस्य रूपं यत् सलिलं पात्रसंस्थितं पिबति ।
तन्माहात्म्यं निगदितमेतस्योच्छ्रायतुल्यस्य ॥ ११५ ॥

सलिलं सुरङ्गदेशानीतं निम्नेन वर्त्मना दूरे ।
अद्भुतमम्भस्थानं तदिह समोच्छ्रायतः कुरुते ॥ ११६ ॥

धारागृहमेकं[2] स्यात् प्रवर्षणाख्यं ततो द्वितीयं च ।
प्रणालं जल[4]मग्नं नन्द्यावर्तं[3] तथा[5]न्यदपि ॥ ११७ ॥

प्राकृतजनार्थमेतन्न विधेयं योग्यमेतदवनिभुजाम् ।
मङ्गल्यानां सदनं दिव्यमिदं तुष्टिपुष्टिकरम् ॥ ११८ ॥

सलिलाशयस्य सविधे कस्याप्याश्रित्य शोभनं देशम् ।
यन्त्रोत्सेधाद् द्विगुणा त्रिगुणा वा नाडिका कार्या ॥ ११९ ॥

जलनिर्वाहसहासावन्तर्मसृणा बहिश्च नीरन्ध्रा ।
निर्[6]व्यूढाम्भसि तस्यां शुभे मुहूर्ते गृहं कार्यम् ॥ १२० ॥

सर्वाभिरोषधीभिर्युक्तं सहिरण्यपूर्णकुम्भैश्च ।
सुविचित्रगन्धमाल्यं विनादितं ब्रह्मघोषेण ॥ १२१ ॥

रत्नोद्भवैर्विचित्रैः स्तम्भैर्युक्तं हिरण्यघटितैर्वा ।
रजतोद्भवैः कदाचित् सुरदारुसमुद्भवैरथवा ॥ १२२ ॥

श्रीखण्डोत्थैरथवा सालकमुख्यप्रशस्तवृक्षोत्थैः ।
शतसङ्ख्यैर्द्वात्रिंशत्सङ्ख्यैर्यदि वापि षोडशभिः ॥ १२३ ॥

---

१. 'न्त्र' ख. ग. पाठः । २. 'तं', ३. 'वं', ४. 'लनिमग्नं' क. पाठः । ५. 'द्यथान्य' ख. ग. पाठः । ६. 'गूं' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथवा चतुस्समन्वितविंशतिसङ्ख्यैर्दिनेशसङ्ख्यैर्वा ।
भूषितमतिरमणीयैश्चतुर्भिरपि वा विधातव्यम् ॥ १२४ ॥

प्राग्ग्रीवैरतिचित्रैः शालैर्जालैर्विभूषितं विविधैः ।
वेदीभिः परिकरितं कपोतपालीभिरभिरामम् ॥ १२५ ॥

रमणीयसालभञ्जिकमनेकविधयन्त्रशकुनिकृतशोभम् ।
मिथुनैश्च वानराणां जम्भकनिवहैश्च नैकविधैः ॥ १२६ ॥

विद्याधरसिद्धभुजङ्गकिन्नरैश्चारणैश्च रमणीयम् ।
नृत्यद्भिः परम(ग?गु)णैः शिखण्डिभिर्मण्डितोद्देशम् ॥ १२७ ॥

कल्पतरुभिर्विचित्रैश्चित्रलतावल्लिगुल्मसंछन्नम् ।
परपुष्टषट्पदालीमरालमालामनोहारि ॥ १२८ ॥

प्रवहत्सकलस्रोतःसुश्लिष्टनिविष्टनाडिकं मध्ये ।
सच्छिद्रनाडिकयुतं नानाविधरूपरमणीयम् ॥ १२९ ॥

सुश्लिष्टनाडिकाग्रे स्तम्भतुलाभित्तिसंश्रिते परितः ।
सम्यक् कृत्वा दृढतरविलेपनं वज्रलेपाद्यैः ॥ १३० ॥

लाक्षासर्जरसदृषन्मेषविषाणोत्थचूर्णसंमिश्रम् ।
अतसीकरञ्जतैलप्रविगाढो वज्रलेपः स्यात् ॥ १३१ ॥

दृढसन्धिबन्धहेतोः स तत्र देयो द्विशः कदाचिद् वा ।
शणवल्कश्लेष्मातकसिक्थकतैलैः प्रलेपश्च ॥ १३२ ॥

उच्छ्रययन्त्रेणैतद् भ्रान्तजलेनाथ तदभितः कृत्वा ।
चित्रानुपातयुक्तं प्रदर्शयेन्नृपतये स्थपतिः ॥ १३३ ॥

कार्याण्यस्मिन् करिणां मिथुनान्यभितोऽम्बुकेलियुक्तानि ।
अन्योन्यपुष्करोज्झितसीकरभयपिहितनयनानि ॥ १३४ ॥

वर्षानुकृतं चास्मिन् प्रीतिमति प्रतिमतङ्गजो वीक्ष्य ।
दृकटमेहनहस्तैर्मदमिव मुञ्चन् जलं कार्यः ॥ १३५ ॥

---

१. 'मशल्या' ख. ग. पाठः। २. 'धमू' क. पाठः। ३. 'गृहृढतरतस्यरसपि' ख, पाठः। ४. 'दृकः' क. ग. पाठः। ५. 'यतदुच्छ्रयसतत्रयन्त्रिण' (?) क. पाठः। ६. 'चिटू' क, 'ष्टि' ख. ग. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

स्तनयोर्युगेन सृजती जलधारे तत्र कापि कार्या स्त्री ।
आनन्दाश्रुलवानिव सलिलकणान् पक्ष्मभिः काचित् ॥ १३६ ॥

नाभिह्रदनदिकामिव विनिर्गतां कापि बिभ्रती धाराम् ।
काप्यङ्गुलीनखांशुभिरिव योषित् सिञ्चती कार्या ॥ १३७ ॥

एवम्प्रायांश्चित्रान् स्वभावचेष्टान् बहूंश्च रमणीयान् ।
क्षोभान् विधाय कुर्यादाश्चर्यं नरपतेः स्थपतिः ॥ १३८ ॥

मध्ये तस्य विधेयं सिंहासनममलहेममणिघटितम् ।
तत्रासीदेन्नरपतिरवनिपतिः श्रीपतिर्देवः ॥ १३९ ॥

स्नायात् कदाचिदस्मिन् मङ्गलगीतैर्विवर्धितानन्दः ।
वादित्रनाट्यनिपुणैर्निषेव्यमाणः सुरेन्द्र इव ॥ १४० ॥

य एतस्मिन् गाढग्लपितघनघर्मव्यतिकरे
शुचौ धाराधाम्नि स्फुटसलिलधारे नरपतिः ।
सुखेनास्ते पश्यन् विविधजलशिल्पानि स भवे-
न्न मर्त्यः किन्त्वेष क्षितिकृतनिवासः सुरपतिः ॥ १४१ ॥

जलदकुलाष्टकयुक्तं पूर्ववदन्यद् गृहं समारचयेत् ।
वर्षद्धारानिकरैः प्रवर्षणाख्यां तदाप्नोति ॥ १४२ ॥

प्रतिकुलमस्मिन् कार्या दिव्यालङ्कारधारिणः पुरुषाः ।
विधिना त्रयः सुरूपाश्चत्वारः सप्त वा सुदृढाः ॥ १४३ ॥

यन्त्रेण समोच्छ्रायेण तांश्चतुर्थेन वा ततः पुरुषान् ।
कृत्वा सवक्रनालानम्भोभिः पूरयेद् विमलैः ॥ १४४ ॥

सलिलप्रवेशरन्ध्राण्यखिलानि पिधाय तत्र पुरुषाणाम् ।
अङ्गानि वारिमोक्षाण्यखिलान्यथ मोचयेत् तेषाम् ॥ १४५ ॥

सलिलं सवक्रनालं द्वारप्रतिरोधमोचनैः पुरुषाः ।
मुञ्चन्ति स्वेच्छममी विचित्रपातेन चित्रकरम् ॥ १४६ ॥

इत्थमिमान् वारिधरान् साम(स्या?स्त्या)द् व्यन्तरेण वा सलिलम् ।
व्यन्तरतो वा स्वेच्छं प्रवर्षयेदतिमहच्चित्रम् ॥ १४७ ॥

---

१. 'यश्चित्रात्', २. 'ष्टा बहूश्च', ३. 'त्', ४. 'न' ५. 'र्षोधा' क, पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

इदं नानाकारं कुलभवनमाद्यं रतिपते-
र्निवासश्चित्राणामनुकरणमेकं जलमुचाम् ।
पयःपातैर्ग्रीष्मे रविकरपरीतापशमनं
न केषामत्यर्थं भवति नयनानन्दजननम् ॥ १४८ ॥

एकेनाथ चतुर्भिः स्तम्भैरष्टभिरथार्कसङ्ख्यैर्वा ।
षोडशभिर्वा कुर्यान्मनोहरं गृहमिह द्वितलम् ॥ १४९ ॥

भद्रैर्युतं चतुर्भिश्चतुरश्रं सर्वभित्तिसंयुक्तम् ।
ईलीतोरणयुक्तं कर्तव्यं पुष्पकाकारम् ॥ १५० ॥

तस्योपरि मध्यगता प्राङ्गणवापी दृढा विधातव्या ।
शतपत्रविहितभूषा तन्मध्ये कर्णिका कार्या ॥ १५१ ॥

तत्कोणेषु चतुर्ष्वपि रमणीया दारुदारिकाः कार्याः ।
मध्याम्बुजनिहितदृशः सालङ्काराः सभृङ्गाराः ॥ १५२ ॥

पूर्वोक्तयन्त्रयोगात् पद्मासीने वसुन्धराधिपतौ ।
भृङ्गारामलवारिभिरङ्गणवापीं[२] भ्रियाच्च ततः ॥ १५३ ॥

तामिति[३] भृत्वा वापीं तत्सलिलं तदनुपट्टगर्भगतम् ।
छाद्यस्तु गन्धरोभ्रेष्वति रोहति(?)सर्वतो नियतम् ॥ १५४ ॥

मुखपट्टसमुत्कीर्णै रूपैश्चित्रैर्मनोरमैरखिलैः ।
अङ्गैर्वारि विमुञ्चति नासास्यश्रवणनेत्राद्यैः ॥ १५५ ॥

प्रणालाख्यं धाराभवनमिदमत्यद्भुततरं
स्थितिं धत्ते यस्य क्षितिपतिलकस्याङ्गणभुवि ।
करोत्येतद् वेत्थं स्थपतिरपि बुध्या चतुरया
जगत्येतौ द्वावप्यधिकमहनीयौ कृतधियाम् ॥१५६ ॥

चतुरश्रातिगभीरा वापी कार्या मनोरमा सुदृढा ।
गर्भगतं गृहमस्याः कर्तव्यं लिप्तसन्धि ततः ॥ १५७ ॥

विहितप्रवेशनिर्गति सुरङ्गयाधो निवेशितद्वारम् ।
विदधीत चारुरूपैः प्रवर्षकैर्व्योमसमुपरिष्टात् ॥ १५८ ॥

---

१. 'ई', २. 'पी भृयेच' ख. पाठः । ३. 'म' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चित्राध्यायोदितवर्त्मना ततोऽलङ्कृतं च चित्रेण ।
तस्य विधेयं मध्यं सलिलाधिपवाससङ्काशम् ॥ १५९ ॥

ऊर्ध्वविनिर्गमिताब्जैर्नालैस्तत्पट्टकन्दकोद्भूतैः ।
सच्छिद्रकर्णिकागतदिनकरकरनिर्मितोद्द्योतम् ॥ १६० ॥

आपूरयेत् ततोऽनु च पाताम्बुभिरमलकमलपर्यन्तम् ।
विधिनाम्रुनैव सम्यक् प्रविधाय मनोरमं भवनम् ॥ १६१ ॥

नानारूपकयुक्त्या (उ?व्यु)परचिततमङ्गतोरणद्वारम् ।
शालाभिरायताभिश्चतसृष्वपि दिक्षु कृतशोभम् ॥ १६२ ॥

कृत्रिमशफरीमकरीपक्षिभिरपि चाम्बुसम्भवैर्युक्ताम् ।
कुर्यादम्भोजवतीं वापीमाहार्ययोगेन ॥ १६३ ॥

सायन्तमुख्यपुरुषा राजाज्ञालब्धसंश्रयास्तत्र ।
परराष्ट्रागतदूतास्तिष्ठेयुर्निहितमिह[1] निभृताः ॥ १६४ ॥

अथ स यथाविधि सलिलक्रीडां पूर्वोक्तमार्गरूपाणाम् ।
दृष्ट्वा मुदितः कुर्यात् पर्यङ्कारोहणं नृपतिः ॥ १६५ ॥

तत्र स्थितस्य नृपतेः परिवारितस्य
वाराङ्गनाभिरभितो जलमग्नधाम्नि ।
पातालसद्मनि यथा भुजगेश्वरस्य
निस्सीमसम्भृतरतिर्भवति प्रमोदः ॥ १६६ ॥

पूर्वोक्तवापिकायां मध्ये स्तम्भैश्चतुर्भिरुपरचितम् ।
मुक्ताप्रवालयुक्तं पुष्पकमथ कारयेल्लटभम् ॥ १६७ ॥

वापीं परितः पुष्पकमापूर्य सुनिर्गमाभिरथ सुदृढम् ।
गर्भस्वस्तिकभित्तिभिरुपहितशोभं समन्ततः कुर्यात् ॥ १६८ ॥

पूर्वोक्तवारियोगात् पूर्णामाकर्णतो विधायैताम् ।
जलकेलिषु सोत्कण्ठो महीपतिः पुष्पकं यायात् ॥ १६९ ॥

कुर्वीत नर्मसचिवैर्विलासिनीभिश्च सार्धमवनिपतिः ।
तद्भित्त्यन्तरवर्ती निमज्जनोन्मज्जनैः क्रीडाम् ॥ १७० ॥

---

१. 'ई' ग. पाठः । २. 'द्य भित्त्यं' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

एकत्र मत्रैरपत्र दृष्टैरन्यत्र हत्वा सलिलेन नष्टैः ।
क्रीडत्यलं केलिकरैः सहायैर्नृपः सुखं मज्जनपुष्करिण्याम् ॥१७१॥

वापीतलस्थितमथ त्रपयावनम्र-
माच्छादितस्तनभरं करपल्लवेन ।
गाढावसक्तवसनं जलरोधमुक्ता-
वालोकते प्रणयिनीजनमत्र धन्यः ॥ १७२ ॥

रथदोलादिविधानं दारवमभिदध्महे वयं सम्यक् ।
यन्त्रभ्रमणककर्म प्रकीर्तितं पञ्चमं यत् तत् ॥ १७३ ॥

तत्र वसन्तः प्रथमो मदनानिवासो वसन्ततिलकश्च ।
विभ्रमकस्त्रिपुराख्यः पञ्चैते दोलकाः कथिताः ॥ १७४ ॥

निखनेच्चतुरः स्तम्भान् समैकसूत्रोपगान् ऋजून् सुदृढान् ।
सदृशान्तरान् धरित्रीवशतः सुश्लि(क्ष्णौ?)पीठगतान् ॥ १७५ ॥

प्रासादस्योक्तदिशि प्रविदध्याद् विरचिताष्टकरदैर्घ्यम् ।
भूमिगृहं रमणीयं तदर्धतो विहितगाम्भीर्यम् ॥ १७६ ॥

तद्गर्भतले स्तम्भो लोहमयाधारसंस्थितः कार्यः ।
भ्रमसहितः पीठयुतो ग्रस्तश्चच्छादकतुलाभिः ॥ १७७ ॥

संस्थाप्योपरि पीठस्य कुम्भिकामतिदृढां विभक्तां च ।
धनुरुच्छ्रितैस्ततोऽमूमष्टभिरावेष्टयेद् भद्रैः ॥ १७८ ॥

स्वेच्छमथ भूमिकोच्छ्रयमस्योर्ध्वे कल्पयेन्मितान्तमृजुम् ।
निदधीत वेष्टनोर्ध्वे पट्टयुतं स्तम्भशीर्षं च ॥ १७९ ॥

हीरग्रह(ण?)पर्यन्तं मदला गजशीर्षिका विधातव्या ।
सुदृढा प्रयत्नरचिता मनोभिरामा यथाशोभम् ॥ १८० ॥

पट्टस्योपरि कार्या चतुष्किका क्षेत्रमानतोऽभीष्टात् ।
तस्यामुपरि विधेयस्तलबन्धो दृढतरन्यासः ॥ १८१ ॥

स्तम्भैर्द्वादशभिरथ क्षेत्रे युक्त्या समुच्छ्रितैर्भव्यैः ।
रूपवतीकोणस्थितिरधिका भूः प्रथमिका कार्या ॥ १८२ ॥

१. 'थ मुष्टिभि' क. पाठः । २. 'स', ३. 'चारिता', ४. 'थि' क. पाठः ।
५. 'तद्भूमि' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

मध्ये भ्रमश्च तस्या गर्भस्तम्भप्रतिष्ठितः कार्यः ।
क्षेत्रप्रमाणवशतस्तां पश्चाच्छादयेत् पट्टैः ॥ १८३ ॥

रथिकाशिखाग्रकेषु च फलकां(सं?न)रणस्य तद्वदुपरिष्टात् ।
भ्रमचक्राणि न्यस्येन्मध्ये स्तम्भे च पञ्चैव ॥ १८४ ॥

अत उपरि यथाशोभं द्वि भूमिका पुष्पकाकृतिः कार्या ।
मध्यस्तम्भाधारा कनककलशविभूषणा शिरसि ॥ १८५ ॥

स्तम्भेऽ(वे?ध)स्ताद् भ्रमिते भूमौ भ्रमत्यर्धभूमिका तत्र ।
रथिकाभ्रमरकयुक्ता परस्परं चक्रयन्त्रेण ॥ १८६ ॥

वसन्तरथिकाभ्रमे समधिरूढवाराङ्गना-
परिभ्रमणसम्भृताभ्यधिकविभ्रमं भूपतिः ।
करोति नयनोत्स(वख्रि?वं त्रि)दशधाम्नि यत्कीर्तनं
वसन्तसमये भवत्यपलकीर्तिधामैव सः ॥ १८७ ॥

आरोप्य स्थिरमेकं स्तम्भं भूमावुद्धादिरहितमथ ।
हस्तचतुष्कोच्छ्राया कार्योपरि भूमिका चास्य ॥ १८८ ॥

मध्ये भ्रमरकयुक्तं शेषं पूर्ववदिहाचरेदखिलम् ।
कुम्भकमपि च स्तम्भे विविधं कलशोच्छ्रितं कुर्यात् ॥ १८९ ॥

तस्योपरि च ग्रीवा चतुरासनसंयुता विधातव्या ।
चत्वारस्तम्भा कार्या स्तम्भेन समावृता तत्र ॥ १९० ॥

एवं पुष्पकभूमिकान्तरगतकस्थार्या निगूढा जना
यावद् भ्रामकयन्त्रचक्रनिकरं सम्यक् क्रमाच्चालयेत् ।
तावत् ता रथिकासना मृगदृशस्तत्र स्थिताः पुष्पके
कामात्रासकुतूहलार्पितदृशो भ्राम्यन्ति सर्वा अपि ॥ १९१ ॥

अथ कोणगतान् स्तम्भांश्चतुरो विनिवेशयेद् ऋजून् सुदृढान् ।
सुश्लिष्टपीठसंस्थान् समान्तरान् भित्तिविस्तारः ॥ १९२ ॥

तेषामुपरि (कृता?सक्ता)न्तरसंयुक्ता भूमिका विधातव्या ।
रथिकास्तत्र चतस्रो जायन्ते पूर्ववद् दिक्स्थाः ॥ १९३ ॥

१. 'स्मः', २. 'का तर' क. पाठः । ३. 'भयं च' ग. पाठः । ४. 'श्लक्ष्णपी' क. पाठः । ५. 'पूर्वयुक्ताभिः ।' क, 'वद्दिक्संस्थाः' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तदुपरि तथार्धभूमिः कार्या सुश्लिष्टदारुसन्धाना ।
मध्यभ्रमरकयुक्ता सरूपका मत्तवारणयुता च ॥ १९४ ॥

§ नानाविधकर्मवती वसन्ततो बाह्यरेखा स्यात् ।

अन्योन्ययन्त्रपरिघट्टनदोल्यमान-
  निश्शेषचक्ररथिकाभ्रमणाभिरामम् ।
दृष्ट्वा वसन्ततिलकं सुरमन्दिराणां
  भूषायमाणमुपयाति न विस्म(यत्वे?यं कः)॥ १९५ ॥

प्रविधाय रङ्गभूमिं प्रथमां भ्रान्तान्तराश्वरस्यार्थे(?) ।
चतुरश्रा रूपवती सचतुर्भद्रा विधेया भूः ॥ १९६ ॥

प्रतिकोणभाग(त?ता)स्था भद्रेषु भवन्ति संयता भ्रमराः ।
अत उपरिष्टाद् भूम्या भ्रमराश्चाष्टसंख्याः कार्याः ॥ १९७ ॥

रेखाः शुद्धाः कार्या यदि रन्तर्विभक्ताश्चान्याः ।
पीठेषु मध्य(म?सं)स्थास्ततोऽपरा भूमिकाः कार्याः ॥ १९८ ॥

पीठस्य मध्यसंस्थैरन्योन्याधारलिखितैर्भ्रमकैः ।
सर्वे वेगाद् भ्राम्यन्ति सोन्त(ना?रा) विभ्रमे भ्रमराः ॥ १९९ ॥

दोलासनो विहितवारवधू(क्रू?भ्रू)तालि-
  चित्रेण यस्त्रिदशधामसु विभ्रमेण ।
पृथ्वीपतिर्मुदमुपैति समुल्लसन्ती
  कीर्त्तिर्न भाति भुवनत्रितयेऽपि नस्य ॥ २०० ॥

चतुरश्रमथ क्षेत्रं कृत्वांशभाजितं ततोऽष्टाभिः ।
कोणैः शेषैस्तस्मिंश्चतुरश्रं कल्पयेद् भद्रम् ॥ २०१ ॥

तद्द्विगुणमूर्ध्वमस्य भूमिकाभागसङ्ख्यया कार्यम् ।
तत्राद्यंशचतुष्केण भूमिका स्यात् समुच्छ्रयतः ॥ २०२ ॥

तत्राष्टपद्चतुर्भागवर्जिता भूमिका उपर्युपरि ।
क्रमशो भवन्त्यथैवं ताः स्युस्तिस्रोऽर्धसंयुक्ताः ॥ २०३ ॥

---

१. 'रिम्य भू' क. पाठः । २. 'सातनावितमेभ्रम(?)' ख. पाठः । ३. 'नाविवमे भ्रम' ग. पाठः । ४. 'धू+तानि चि' क. पाठः ।

§ इह किञ्चिदर्धं मातृकासु गलितमिव भाति ।

"Aho Shrut Gyanam"

शेषांशोच्छ्र्ययुक्ता घण्टा चतुरश्रकायता कार्या ।
त्रिचतुर्भूम्यौ कार्ये सषट्चतुर्भागविस्तारे ॥ २०४ ॥

रङ्गः स्यादाद्यभुवि द्वितीयभुवि कोणगास्तथा रथिकाः ।
स्युर्भद्राकृतियुक्ता दोला अपि तत्र रमणीयाः ॥ २०५ ॥

रथिकास्तृतीयभूमौ कार्या भद्रेषु चातिरमणीयाः ।
कोणेष्वथासनान्यर्थवास्तुकेऽपि भ्रमः कार्यः ॥ २०६ ॥

दोलारथिके चतुरासने भ्रमोऽष्टासनो भवेत् तत्र ।
आसनमिह तत् कथितं युवतेः स्थानं यदेकं स्यात् ॥ २०७ ॥

निखिलान्यपि भ्रमणसंमुखं तानि बिभ्रति भ्रमणम्(?) ।
यत्रासनानि स इह भ्रम इत्युक्तोऽपराधिका(?) ॥ २०८ ॥

यष्टेरूर्ध्वमधस्ताद् भ्रमस्य चक्रं (नि)योजयेदेकम् ।
लघुचक्राणि च तद्वन्नियोजयेदासनेष्वत्र ॥ २०९ ॥

लघुचक्रारकवृत्ते संलग्नाः कीलका दृढाः कार्याः ।
तुल्यान्तराः समस्ताः प्रलघु(क)चक्रारवृन्तर्गताः ॥ २१० ॥

रथिकाशिखाग्रचक्रं[1] भ्रमचक्रारक(वि?)नियोजितं कार्यम् ।
यष्टिचतुष्टयमस्मिंस्तिर्यक् चक्रद्वयोपेतम् ॥ २११ ॥

ऊर्ध्वं द्वितीयभूमेस्तृतीयभूमेरथान्तरे कुर्यात् ।
नियतं रथिकायष्टिभ्रमसंलग्नानि[2] यन्त्राणि ॥ २१२ ॥

आसनाधारयष्टीनां रथिकाचक्रयोजितान् ।
अधः समान्तरान् कुर्याच्चतुरः परिवर्तकान् ॥ २१३ ॥

त(द्व)द् द्वितीयभूमीदोलागर्भे समान्तरे यष्टी ।
लग्ने तथैकचक्रे याम्योत्तरचक्रयोर्न्यस्येत् ॥ २१४ ॥

तद्वदधो भूकोणगरथिकाचूडाग्रचक्रसंसक्ताः ।
यष्टीस्ततश्चतस्रो द्विचक्रका इतरचक्रयोर्न्यस्येत् ॥ २१५ ॥

प्रान्तचक्रद्वये कोणरथिकाचक्रयोजिता ।
दोलागर्भगता यष्टिस्तिर्यक् कार्यापरापरा ॥ २१६ ॥

---

१. 'यु' ग. पाठः । २. 'चक्रभ्रमरच' ख. पाठः । ३. 'क्रम' ग. पाठः । ४. 'म' ख. ग. पाठः । ५. 'ला' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पूर्वे भद्रे द्वारं कुर्यात् सोपानराजितमधस्तात् ।
गर्भात् पश्चिमभागे निवेशयेद् देवतादोलाम् ॥ २१७ ॥

अन्योन्यं क्रमभ्रममिच्छाशुक्ति विधानतः सम्यक् ।
ज्ञात्वा प्रयोजनीयं शीघ्रवहं मन्दवहनं वा ॥ २१८ ॥

एष समासेन यथा भ्रममार्गः कीर्तितः स्फुटोऽस्माभिः ।
अन्येष्वपि कल्प्यः सम्यग् अवहितैस्तज्ज्ञैः ॥ २१९ ॥

स्तम्भादिद्रव्याणां विन्यासैः कल्पितं दृढैः श्लक्ष्णैः ।
सुश्लिष्टसन्धिबन्धं भूतं तथा दीर्घमुच्छ्रयतः ॥ २२० ॥

परिवारितमथ तिलकैः समन्ततः सिंहकर्णसंयुक्तम् ।
त्रिपुरं सम्यक् कुर्याद् विचित्ररूपं (स्व)कैश्चित्रैः ॥ २२१ ॥

बुद्ध्वा क्लृप्तैः पूर्वयन्त्रैश्च युक्तं यन्त्राध्यायं वेत्ति यः सम्यगेतम् ।
प्राप्नोत्यर्थान् वाञ्छितान् कीर्तियुक्तान् स क्ष्मापालैरन्वहं पूज्यते च ॥

एतद् द्वादशराजचक्रमखिलं क्ष्मापालचूडामणे-
र्दोःस्तम्भप्रतिबद्धमूर्ति परितो यस्येच्छया भ्राम्यति ।
स श्रीमान् भुवनैकरामनृपतिर्दिव्यो व्यधत्त द्रुतं
यन्त्राध्यायमिमं स्वबुद्धिरचितैर्यन्त्रैरपञ्चैः सह ॥ २२३[1] ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
यन्त्रविधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ गजशाला नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

लक्षणं गजशालानामिदानीमभिदध्महे ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागैर्भक्ते ततोऽष्टभिः ॥ १ ॥

मध्ये द्विभागविस्तारं स्थानं कुर्वीत हस्तिनः ।
कल्प्याः प्रासादवद् भागा ज्येष्ठमध्याधमाः क्रमात् ॥ २ ॥

---

१. 'न्त्रैः' क, 'न्त्रं' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तद्बहिर्भागिकोऽलिन्दो बहिस्तस्यापि चापरः ।
भागेनैकेन भित्तिः स्याद् द्वितीयालिन्दकाद् बहिः ॥ ३ ॥

तस्या द्वारप्रदेशे तु [illegible]र्मौ कूर्पराकृती ।
कर्णप्रासादिका कार्या द्वितीयालिन्दसंश्रिता ॥ ४ ॥

द्वे द्वे वातायने कुर्याद् भित्तौ दिक्षु तिसृष्वपि ।
§प्राग्ग्रीवोऽग्रे भवेच्छाला नृपश्रेयस्करातुला ॥ ५ ॥

अस्या एव यदा पक्षप्राग्ग्रीवौ भवतो मुखे ।
नन्दिनी नामतः शाला तदा स्याद् गजवृद्धये ॥ ६ ॥

अस्या एव यदा स्यातां प्राग्ग्रीवौ पार्श्वयोर्द्वयोः ।
तदा सुभोगदा नाम तृतीया परिकीर्तिता ॥ ७ ॥

अस्या एव यदा पृष्ठे प्राग्ग्रीवः क्रियतेऽपरः ।
भद्रिका नाम शाला स्यात् तदा द्विरदपुष्टिदा ॥ ८ ॥

पञ्चमी चतुरश्रा स्याद् वर्धमाना नाम पूजिता ।
प्राग्ग्रीवालिन्दनिर्व्यूहहीना षष्ठी तथापरा ॥ ९ ॥

शाला प्रसारिका चान्या सर्वनिन्दितशालिनी ।
नैतां वर्जयेत् कुर्यादन्याः सर्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥

प्रसारिकेति नाम्नेह शाला सा भागसम्पद्द्रविणच्छिदे स्यात् ।
कुर्यादतस्तां न यथाविधानात्तु कामैः परं जीवितवित्तवृद्ध्यै ॥ ११ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
गजशाला नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथाश्वशाला नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ लक्ष्माश्वशालायाः प्रोच्यते विस्तरादिह ।
स्ववेश्मवास्तोः कर्तव्या पदे गन्धर्वसंज्ञके ॥ १ ॥

---

१. 'पु', २. 'भः' क. पाठः । ३. 'हि', ४. 'श्रि' ख. पाठः ।

§ इह सर्वत्र 'प्रग्रीव' इति पाठ्यं भाति ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथवा पुष्पदन्ताख्ये स्थानं वासाय वाजिनाम् ।
अरत्निशतमात्रं यज्ज्येष्ठं तत् परिकीर्तितम् ॥ २ ॥

अशीत्यरत्निकं मध्यं षष्ट्यरत्न्यधमं भवेत् ।
स्थलप्रदेशे विपुले गुप्ते रम्ये शुचौ तथा ॥ ३ ॥

समे च चतुरश्रे च स्थि(ते?रे) मङ्गल्यमेव च ।
स्थानं हयानां कर्तव्यं प्रदेशे सुपरिक्रमे ॥ ४ ॥

निम्नगुल्मद्रुमस्थाणुचैत्यायतनवेश्मभिः ।
वल्मीकशर्कराभिश्च वर्जिते तत् समाचरेत् ॥ ५ ॥

निःसङ्गे शल्यहीने च प्रागुदक्प्रवणे तथा ।
प्रदेशे तद् विधातव्यमालोक्य सुसमाहितैः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणानुमते शस्ते[1] दिने स्थपतिभिः सह ।
भूमेर्विभागमालोक्य शुभगानानयेद् द्रुमान् ॥ ७ ॥

न जाता ये श्मशानेषु देवतायतनेषु वा ।
अन्येष्वपि निषिद्धेषु जातान् वृक्षान् विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

वृक्षान् प्रशस्तानानीय समीपे भर्तृवेश्मनः ।
ततो भूमिं परीक्षेत प्रशस्तामथ निन्दिताम् ॥ ९ ॥

चितायतनवल्मीकग्रामधान्यखलेषु च ।
विहारेषु च कर्तव्यमश्वानां न निवेशनम् ॥ १० ॥

भवन्ति स्वामिनः पीडा ग्रामधान्यखलेषु च ।
श्मशाने वेश्मकरणान्नराणां मृत्युमादिशेत् ॥ ११ ॥

स्थानं विहारवल्मीकविहितं स्यादनर्थकम् ।
तन्नित्यसन्तापकरं क्षयकृच्च तपस्विनाम् ॥ १२ ॥

दैवोपघातजननं स्त्रीणां च क्षयकारकम् ।
विहितं पादपैश्चैत्यैर्गृहं स्याद् भूतभीतिदम् १३ ॥

भवेद् रोगकरं भर्तुर्विहितं कण्टकिद्रुमैः ।
दीर्णायामुन्नतायां च कृतं भूमौ क्षयावहम् ॥ १४ ॥

---

१. 'स्त' क. पाठः । २. 'शुभानानीय सद्रु' क, 'स्तुभागाना' ख. पाठः । ३. 'स्तां वाथ', ४. 'नाखि' ख. पाठः । ५. 'न', ६. 'णात् तुरगाणां', ७. 'क' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नतायां क्षुद्भयकरं कृतं भवति मन्दिरम् ।
तस्मात् कार्यं प्रशस्तायां भूमौ तद् वाजिवृद्धये ॥ १५ ॥
मङ्गल्यरमणीये च चतुरश्रे मनोनुगे ।
शुभे च विहितं सद्म भवेत् कल्याणकारकम् ॥ १६ ॥
निर्गच्छतो यथा वामे पार्श्वे भर्तुस्तुरङ्गमाः ।
भवन्ति कुर्यात् स्थपतिस्तथा वाजिनिवेशनम् ॥ १७ ॥
अन्तःपुरप्रदेशस्य[1] कार्यं दक्षिणतश्च[2] तत् ।
प्रवेशे[4] दक्षिणं तेषां हेषितं जायते यथा ॥ १८ ॥
तथा भर्तुर्हितार्थाय कर्तव्यं सद्म वाजिनाम् ।
प्रागुदग् वा मुखं तस्य विधातव्यं सतोरणम्[3] ॥ १९ ॥
प्राग्ग्रीवकेण संयुक्तं चतुःशालमसङ्कटम् ।
दशारत्निसमुच्छ्रायमष्टारत्निप्रविस्तृतम् ॥ २० ॥
नागदन्तकसंशोभि पुरः कुड्यार्धसंयुतम् ।
पृष्ठे समग्रकुड्यं वा तत्र स्थानानि कल्पयेत् ॥ २१ ॥
तानि तु प्राङ्मुखानि स्युस्तथैवोदङ्मुखानि च ।
आयामे किष्कुमात्राणि त्रिकिष्कूणि च विस्तरात् ॥ २२ ॥
प्रांशून्नतोर्ध्वभागानि चतुरश्राणि कारयेत् ।
अग्रोच्चां सुखसञ्चारां तेषु भूमिं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
स्थानं सूत्रस्य मध्ये तु हस्तमात्रं समन्ततः ।
आस्तीर्णं च समश्लक्ष्णनीरन्ध्रैः फलकैर्दृढैः ॥ २४ ॥
धातक्यर्जुनपुन्नागककुभादिविनिर्मितैः ।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायैरध्यर्धारत्निविस्तृतैः ॥ २५ ॥
अच्छिद्रैः [4]संहतैर्बद्धैरयसा पार्श्वयोर्द्वयोः ।
अजन्तुसङ्कुलैः काष्ठै रुचकाभि(?)भिपङ्मतैः ॥ २६ ॥
यवसस्य भवेत् स्थानं निर्यूहैः स्वास्तृतं शुभैः ।
किष्कुत्रयोच्छ्रितं तत् स्यादेकान्ते सुसमाहितम्[5] ॥ २७ ॥

---

१. 'वे' क. पाठः । २. 'दे' ग. पाठः । ३. 'सु' क. पाठः । ४. 'सहिते' ख. पाठः । ५. 'ज' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

हस्त्यश्वयानां च कुर्यात् खादनकोष्ठकम् ।
सुस्थितमदुर्गन्धि विस्तारोच्छ्राययोः समम् ॥ २८ ॥

स्थाने स्थाने ध्रुवाः कीलाः सुदृढाः खदिरादिकाः ।
पश्चाङ्गीनिग्रहार्थं च सुदृढाः कार्या भुवौ ॥ २९ ॥

पश्चाद् वन्यविमर्दं च सुधुर्यं परिकल्पयेत् ।
चतुर्हस्तायतं त्वस्या शाला ज्ञेया चतुष्टयम् ॥ ३० ॥

स्थालेष्वेतेषु तुल्यानि सर्वाणि निवेशयेत् ।
तत्र कुर्याद् बलिं होमं स्वस्तिवाचनकं जपम् ॥ ३१ ॥

ग्रीष्मे कार्यं सुसंमृष्टं सिक्तं तत्र महीतलम् ।
वर्षास्वनम्बुपङ्कं च शिशिरे संवृतं शुभम् ॥ ३२ ॥

तिष्ठेयुरत्र तुरगा नातिसङ्कीर्णशालिनः ।
अस्पृशन्तो मिथः कायैः सर्वबाधाविवर्जिताः ॥ ३३ ॥

स्थानं दक्षिणपूर्वस्यां दिशि वह्नेः प्रकल्पयेत् ।
निदध्यादुदकुम्भं च किञ्चिद्देशेऽग्निशालिनाम् ॥ ३४ ॥

ब्राह्म्यां दिशि प्रकर्तव्यं स्थानं यवसस्य च ।
वायव्यां तु प्रकर्तव्यं स्थानमौदूखलं दिशि ॥ ॥ ३५ ॥

निःश्रेणयः कुशाः शूलाः कार्याश्च फलकावृताः ।
कुद्दालोद्दालमुद्गराः शुल्काश्मानः स्नुरुस्तथा ॥ ३६ ॥

कलशग्रहण्यः शूर्पं च तथा पत्रसंपुटं च ।
नार्याः(?) मञ्जिपाश्च सयन्त्यश्वागारोपयोगिनः ॥ ३७ ॥

भाण्डग्रहः सुखसञ्चारवस्तूनां नैऋते भवेत् ।
अग्न्युपद्रवणार्थं च जलकुम्भोऽपि नैर्ऋते ॥ ३८ ॥

पदार्थान् सन्निधौ कुर्याज्जलशोधादिकान् बुधः ।
भाण्डानि कुर्याच्च पृथग् जि(न्हा?श्लौ)पल्ययनेभ्यस्तथा ॥ ३९ ॥

हस्तवारीं शिक्यां दाम दर्वी पालङ्कुवानदीः ।
पिटकानि विचित्राणि वस्तीन् नानाविधानपि ॥ ४० ॥

१. 'यौच्छाद' क, 'यद्वाद' ख. पाठः । २. 'स', ३. 'द्या प्र', ४. 'प' क. पाठः । ५. 'ज्ज्व', ६. 'भाण्डापन', ७. 'चि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

एवंविधानि चान्यानि संनिदध्यात् प्रयत्नतः ।
पुरःस्तम्भाश्रितं भाण्डं सन्नाहादेर्विधीयते ॥ ४१ ॥

प्राङ्मुखे तुरगं गेहे वारुण्यां स्थापयेद् दिशि ।
पूर्वामुखे पदे वापि मित्रस्य वरुणस्य च ॥ ४२ ॥

भवन्ति तेन बहवः पुष्टिं च प्राप्नुवन्ति ते ।
सा हि दिक् पूजनीया च स्तोतव्या च प्रकीर्तिता ॥ ४३ ॥

होमशान्तिकदानेषु धर्म्या याश्च पराः क्रियाः ।
तासु प्रशस्यते पूर्वा शक्रेणाधिष्ठिता स्वयम् ॥ ४४ ॥

तस्यामुदेति दिनकृदनुलोमं ततः पुनः ।
अश्वानां पृष्ठतो याति स प्रतीचीमनुक्रमात् ॥ ४५ ॥

स्नानाधिवासने पूजा माङ्गल्यानि पराणि च ।
प्राङ्मुखानां तुरङ्गाणां कर्तव्यानि शुभार्थिभिः ॥ ४६ ॥

एवं कृते भूमिबलमित्राणां यशसोऽपि च ।
वृद्धिर्भवति भूपस्य तस्मात् प्राची प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

भर्तृवृद्धिप्रदं स्थानमग्रग्रासस्य तद् भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखायां तु शालायां वाञ्छितार्थदम् ॥ ४८ ॥

स्थानं भवति वाहानां पदे क्लृप्तं विभावसोः ।
वह्निनाध्यासिता सा दिग् आत्मा वह्निश्च वाजिनाम् ॥ ४९ ॥

अजरो बहुभोक्ता च तत्र बद्धो भवेद्धयः ।
उदङ्मुखेऽपि भवने प्राप्नुवन्ति शुभं हयाः ॥ ५० ॥

तथास्थितानामश्वानां दक्षिणेन दिवाकरः ।
उदेत्यनन्तरं याति तान् विधाय प्रदाक्षिणम् ॥ ५१ ॥

प्रयाति वामतोऽ(श्वं च?श्वानां) स्थाप्यास्तेनोत्तरामुखाः ।
चन्द्रार्कौ प्रति(हर्ष?द्वेष)न्ते तथा बध्नीत वाजिनः ॥ ५२ ॥

नृपतिश्च जयं सिद्धिं पुत्रानायुश्च विन्दति ।
अरोगाश्च भवन्त्यश्वा वर्धयन्ति च सन्ततिम् ॥ ५३ ॥

---

१. 'ताः' क. ख. पाठः । २. 'पु'; ३. 'ग्रयगोकस्य' क. पाठः । ४. 'गद्दीसो वह्निस्तु वा', ५. 'आरोग्याश्च' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

दक्षिणाभिमुखान् कुर्यान्न सन्नाह्यान् न चाग्रगान् ।
पितृकार्याद्यतोऽन्यत्र दक्षिणा वर्जितैव दिक् ॥ ५४ ॥
अस्यामेव दिशि प्रेता यतः सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
उदेति वामतो याति चास्तं दक्षिणतो रविः ॥ ५५ ॥
सोमश्च पृष्ठे भवति तेनाश्वा दैवपीडिताः ।
ग्रहैर्विकारैर्विविधैः पीड्यन्तेऽरातिविह्वलाः ॥ ५६ ॥
भयेन व्याधिभिश्चार्ता ग्रासं नेच्छन्ति खादितुम् ।
पराजयमतुष्टिं च स्वामिनोऽनर्थसङ्गतिम् ॥ ५७ ॥
कुर्वन्त्यतो न बध्नीयात् कथञ्चिद् दक्षिणामुखान् ।
पश्चिमाभिमुखानां च बद्धानां वाजिनां सदा ॥ ५८ ॥
उदेति पृष्ठतो भानुः पुरतोऽस्तं प्रयाति च ।
न भवेद् विजयस्तेन भर्तुस्तत्पृष्ठवर्तिनः ॥ ५९ ॥
शक्रस्य पृष्ठवर्तित्वात् प्रातिलोम्याच्च भास्वतः ।
कुप्यन्ति व्याधयस्तेषां तूर्णं देहविनाशनाः ॥ ६० ॥
तेस्ते ध्यायन्ति वेपन्ते जले त्रासं प्रयान्ति च ।
यवसं नाभिनन्दन्ति क्षमां मुञ्चन्ति सर्वथा ॥ ६१ ॥
दिशोऽभिमुखमाशेय्या बध्यन्ते यदि वाजिनः ।
व्यथन्ते रक्तपित्तोत्थैस्तदा रोगैरनेकधा ॥ ६२ ॥
जायन्ते स्वामिनो बन्धवधहृच्छोषदायिनः ।
वाजिनां च भवेत् तत्र वह्निदाहकृतं भयम् ॥ ६३ ॥
भर्तुः पराजयो विघ्नः स्याच्च देहस्य संशयः ।
नैर्ऋत्याः ककुभो वाहा बध्यन्ते संमुखं यदि ॥ ६४ ॥
तदा न तेऽभिनन्दन्ति खादनं पानभोजने ।
यथा यथा क्षितिं पादैर्दारयन्ति पुनः पुनः ॥ ६५ ॥
हेषन्ते वीक्ष्य बहुशो मनुष्यान् पक्षिणः पशून् ।
भ्रमयन्ति च गात्राणि नैर्ऋतीं चाभितः स्थिताः ॥ ६६ ॥

---

१. 'थ्य' क. पाठः । २. 'क' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तथा तथैषां कुपिता नाशं कुर्वन्ति राक्षसाः ।
बध्यन्ते यदि वाज्ञानाद् वायव्याभिमुखं हयाः ॥ ६७ ॥

तदा ते वातिकै रोगैः पीड्यन्ते प्रतिवासरम् ।
चलः कायो भवेद् भर्तुः क्लेशश्चाश्वोपजीविनाम् ॥ ६८ ॥

नराणां च भवेन्मृत्युर्दुर्भिक्षप्रभवं भयम् ।
ऐशान्यभिमुखं बद्धाः प्रणश्यन्ति तुरङ्गमाः ॥ ६९ ॥

सूर्योदयस्याभिमुखं बद्धानां भद्रमादिशेत् ।
निबध्यन्ते यदा वाहा ब्राह्मीं दिशमुपाश्रिताः ॥ ७० ॥

बध्यन्ते ते ग्रहैर्दिव्यैर्व्याधिभिश्च विचिन्तनाः ।
कव्यहव्यक्रियास्तत्र भर्तुर्न विजयावहाः ॥ ७१ ॥

द्विजानामुपतापाय जायन्ते तत्र वाजिनः ।
अनुवंशं च शालायां स्थानभङ्गस्य नेष्यते ॥ ७२ ॥

स्वामिनस्तन्द्रीणाय स्वान्नाशाय च वाजिनाम् ।
स्थाने प्रशस्ते तुरगान् सर्वथा वासयेदतः ॥ ७३ ॥

न च धार्याः क्षणमपि रोगिणः कल्यसन्निधौ ।
कल्यानामपि रोगाः स्युर्यतो रोगिसमाश्रयात् ॥ ७४ ॥

हयागारस्य पूर्वेण कार्यं भेषजमन्दिरम् ।
तस्यैव वामतः सर्वसंभारान् परिकल्पयेत् ॥ ७५ ॥

वाजिनां भेषजार्थाय भाण्डानि च विनिक्षिपेत् ।
अगदानोषधीः स्नेहान् वर्तीश्च लवणानि च ॥ ७६ ॥

भेषजागारसन्निधे कुर्याच्चारिष्टमन्दिरम् ।
भवनं व्याधितानां च कार्यं वासाय वाजिनाम् ॥ ७७ ॥

सुगुप्तं तच्च कर्तव्यं पूर्वनिर्दिष्टवेश्मवत् ।
संबद्धं च विधातव्यमेतद् वेश्मचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥

१. 'नां' क. पाठः । २. 'गे', ३. 'नि' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सुधाबन्धदृढैः कुड्यैः सप्राग्ग्रीवोन्नतोरणम् ।
चत्वार्यपि विशालानि सुगमानि च कारयेत् ॥ ७९ ॥
वेश्मस्वेवंविधेष्वश्वान् स्थापितान् परिपालयेत् ॥ ७९½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
अश्वशाला नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथाप्रयोज्यप्रयोज्यं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

राज्ञां सेनापतीनां च वर्णिनामपि वेश्मसु ।
यदि वा वास्तुकक्षासु सभादेवकुलेषु च ॥ १ ॥
शयनासनयानेषु भाजनाभरणेषु च ।
छत्रध्वजपताकासु सर्वोपकरणेषु च ॥ २ ॥
अप्रयोज्यानि यानि स्युः प्रयोक्तव्यानि यानि च ।
विस्तरात् तानि कथ्यन्ते हितार्थमथ देहिनाम् ॥ ३ ॥
पूर्वोक्तानां नृपादीनां यानि वेश्मसु केवलम् ।
अप्रयोज्यानि तान्येव पूर्वमत्राभिदध्महे ॥ ४ ॥
तेषु नैव प्रयोक्तव्याः समस्ता अपि देवताः ।
दैत्या ग्रहास्तथा तारा यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥ ५ ॥
पिशाचाः पितरः प्रेताः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
चारणा भूतसङ्घाश्च तेषां योषाः सुतास्तथा ॥ ६ ॥
प्रतीहाराः प्रतीहार्यस्तेषामधिकृताश्च ये ।
आयुधानि तदीयानि सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥ ७ ॥
दीक्षितव्रति[2]पापण्डिनास्तिकाः क्षुत्प्रपीडिताः ।
व्याधिबन्धनशस्त्राग्नितैलासृक्पङ्कपांसुभिः ॥ ८ ॥
शूलज्वरादिभिश्चार्ता येऽन्येऽप्येवंविधा नराः ।
मत्तोन्मत्तजडक्लीबनग्नान्धबधिरादयः ॥ ९ ॥

---

१. 'बाधक' ख. ग. पाठः । २. 'त' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

दोलाक्रीडाश्च नेष्यन्ते ग्रहणानि च दन्तिनाम् ।
देवासुराद्याः सङ्ग्रामा विग्रहाश्च महीक्षिताम् ॥ १० ॥

प्राणियुद्धविमर्दाश्च मृगया च न शस्यते ।
रौद्रदीनाद्भुतत्रासबीभत्सकरुणा रसाः ॥ ११ ॥

न प्राणिषु प्रयोक्तव्या हास्यशृङ्गारवर्जिताः ।
हस्त्यश्वरथयानानि विमानायतनानि च ॥ १२ ॥

चण्डानलप्रदीप्तानि भवनानि वनानि च ।
वृक्षाः पुष्पफलैर्हीना विहङ्गावासदूषिताः ॥ १३ ॥

एकद्विशाखा रूक्षाश्च भग्नाः शुष्काः सकोटराः ।
कदम्बशाल्मलीशैलुतारॆक्षारलुक्कादयः(?) ॥ १४ ॥

भूतालयत्वान्नेष्यन्ते कटुकण्टकिनश्च ये ।
गृध्रोलूका विहङ्गेषु कपोतश्येनवायसाः ॥ १५ ॥

कङ्कश्चेति न शस्यन्ते खगा रात्रिचराश्च ये ।
गजाश्वमहिषाश्चोग्रा मार्जारखरवानराः ॥ १६ ॥

सिंहो व्याघ्रस्तरक्षुश्च वराहमृगजम्बुकाः ।
तथा वनचरा ये च क्रव्यादा मृगपक्षिणः ॥ १७ ॥

गृहेष्वेते न कर्तव्याः शैलाटव्याश्रिताश्च ये
अमीषां करणादर्थैराचार्यो विप्रमुच्यते ॥ १८ ॥

व्याधिं घोरमवाप्नोति व्यसनं वन्ध्यमेव च ।
यत्र तत्र गृहस्वामी धनहानिं पराजयम् ॥ १९ ॥

प्रवासं बन्धनं नाशं मृत्युं वा क्षिप्रमाप्नुयात् ।
इत्युक्तान्यप्रशस्तानि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २० ॥

तत्र यानि प्रयोज्यानि कथ्यन्ते तान्यतः परम् ।
यस्य यत्र भवेद् भक्तिर्या चास्य कुलदेवता ॥ २१ ॥

हस्तक्लृप्तप्रमाणेन तान् कुर्वन् स्यान्न दोषभाक् ।
तद्द्वारपार्श्वयोः कार्यौ प्रतीहारौ स्वलङ्कृतौ ॥ २२ ॥

---

१. 'रा', २. 'श्येना न' क. पाठः । ३. 'भवम्' ख. ग. पाठः ।

वेत्रदण्डव्यग्रकरौ खड्गकोशपरिच्छदौ ।
रूपयौवनसम्पन्नौ विचित्राम्बरभूषणौ ॥ २३ ॥

धात्री वामनिका कुब्जा सखीभिः परिवारिता ।
विदूषकैः कञ्चुकिभिस्तुष्टैरनुगतास्तथा ॥ २४ ॥

द्वारस्योभयतः कार्याः प्रतीहार्यो मनोरमाः ।
निधयश्चानुरूपाश्च शङ्खाब्जोज्ज्वललक्षणाः ॥ २५ ॥

रत्नदीनाररा[१]शींश्च वदन्तो वदनोद्गतान् ।
पद्मस्था पूर्णकुम्भा वा रत्नवस्त्रविभूषिता ॥ २६ ॥

वंकैरूर्ध्वस्थितैः पुष्पफलपल्लवसम्भृतैः ।
पूर्णकुम्भाङ्कुशच्छत्रश्रीवृक्षादर्शचामरैः ॥ २७ ॥

कार्याष्टमङ्गला द्वारे[२] वामभिः शङ्खमत्स्ययोः ।
द्वारमण्डलमध्यस्था स्नाप्यमाना गजोत्तमैः ॥ २८ ॥

पद्मासना पद्महस्ता श्रीश्च कार्या स्वलङ्कृता ।
वृषः सवत्सा धेनुर्वा सच्छत्रस्रग्विभूषणा ॥ २९ ॥

फलभक्ष्यैर्बहुविधैराहारार्थं निवेदितैः ।
नानापुष्पफलैर्नम्रैः शालैस्तिर्यगवस्थितैः ॥ ३० ॥

चित्रा पत्रलता लेख्या बाह्याभ्यन्तरभित्तिषु ।
हंसकारण्डचक्राह्वैर्बिसिनीपत्रवर्तिभिः ॥ ३१ ॥

कुमारकैश्च क्रीडद्भिर्युक्ता ललितबाहुभिः ।
वासधाम्नि निवेश्यन्ते विचित्राभरणाम्बराः ॥ ३२ ॥

रतिक्रीडापरा नार्यो नायकस्तु यदृच्छया ।
आपाण्डुदेहच्छवयः स्वल्पचारुविभूषणाः ॥ ३३ ॥

किञ्चित्प्रतनुभिर्गात्रैः कार्याः सुरतलालसाः ।
प्रवृद्धशाखाविटपैः प्रचलारुणपल्लवैः ॥ ३४ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागनागाम्रतिलकादिभिः ।
छायापुष्पफलोपेतैः वृ[३]क्षैरन्यैश्च भूषिताः ॥ ३५ ॥

---

१. 'रैदी' ख, ग. पाठः । २. 'वसुभिः', ३. 'स्था' क.पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

उद्यानभूमयः कार्याः कूजत्पिकमधुव्रताः ।
ऋतवः फलपुष्पाद्यैः स्वैः स्वैश्चिह्नैरलङ्कृताः ॥ ३६ ॥
मनोरमैर्विशेषैश्च खगैश्च समयोचितैः ।
कादम्बकुररक्रौञ्चहंससारसमेखलाः ॥ ३७ ॥
[1]तीरान्तोद्गतवानीरकेतकीषण्डमण्डिताः ।
जलान्तलीनमत्स्यैश्च सङ्कुला नलिनीवनैः ॥ ३८ ॥
लेख्याश्च गृहभित्तीनामधोभागेषु दीर्घिकाः ।
[2]फलैः समं [3]सेभक्षेक्षु[4]मणिकाञ्चनभाजनाः ॥ ३९ ॥
विन्यस्तपद्मिनीपत्राः सोत्पलाः पानभूमयः ।
विचित्रातोद्यहस्ताश्च नृत्यगीतविचक्षणाः ॥ ४० ॥
मुदिता ललना लेख्याः प्रेक्षासङ्गीतभूमिषु ।
प्रकल्प्याः पञ्जरस्थाश्च चकोरशुकसारिकाः ॥ ४१ ॥
प्रहृष्टाः परपुष्टाश्च मयूराश्च सकु[5]क्कुटाः ।
इति यानि प्रदिष्टानि प्रयोक्तव्यानि वेश्मनि ॥ ४२ ॥
तानि सर्वाणि शस्तानि सर्वाधिकरणेष्वपि ।
देवयोनिगणास्तद्वत् पुरुषाश्च विनिन्दिताः ॥ ४३ ॥
साक्रन्दाश्च न शस्यन्ते पीठशय्यासनादिषु ।
पुरस्तात् कीर्तितान्यत्र प्रयोक्तव्यानि यानि च ॥ ४४ ॥
तानि शस्तानि कक्षासु सभादेवकुलेषु च ।
दिव्यमानुषसम्बद्धान्याख्यानाख्यायिकादिषु ॥ ४५ ॥
प्रोक्तानि तानि लाबन्ति शुभान्यालेख्यकादिषु ।
इति कथितमयोज्यं योजनीयं च बुध्वा
भवनशयनकक्षादेवधिष्ण्यादिकेषु ।
विरचयति यथोक्तं निन्दितं वर्जयेद् यः
स भवति नृपतीनां शिल्पिनां चार्चनीयः ॥ ४६ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
अप्रयोज्यप्रयोज्यं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

१. 'नी', २. 'त' क. पाठः । ३. 'सु' ख. ग. पाठः । ४. 'षु' क. पाठः ।
५. 'र्कु', ६. 'स्थानाख्या' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ शिलान्यासविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ ब्रूमः शिलान्यासविधिमत्र यथागमम् ।
तत्रोदगयने पुण्ये शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ॥ १ ॥

स्थिरग्रहस्य दिवसे करणे च गुणान्विते ।
तिष्येऽश्विनीषु रोहिण्यामुत्तरेष्वपि च त्रिषु ॥ २ ॥

रेवत्यां श्रवणे हस्ते शिलाविन्यासमाचरेत् ।
स्थिरस्य राशेरुदये सौम्यमित्रावलोकिते ॥ ३ ॥

सम्यङ्निमित्तशकुनस्वस्तिपुण्याहवाचिते ।
हर्षोदये च मनसः कुर्याद् वास्तोर्निवेशनम् ॥ ४ ॥

भद्रः प्रकृत्या शास्त्रज्ञः शुचिः स्नातः समाहितः ।
कर्मारभेत स्थपतिः कृतदेवार्चनक्रियः ॥ ५ ॥

पूर्णां समामविकलां चतुरश्रामनिन्दिताम् ।
शिलामाद्यां चये साध्वीं परीक्षेत विचक्षणः ॥ ६ ॥

कुम्भाङ्कुशध्वजच्छत्रमत्स्यचामरतोरणैः ।
दूर्वानागफलोष्णीषपुष्पस्वस्तिकवेदिभिः ॥ ७ ॥

नन्द्यावर्तैः सचमरैः कूर्मपद्मनिशाकरैः ।
वज्रैः प्रशस्तैः प्राकारैर्भूषिताः कर्मणो हिताः ॥ ८ ॥

दीर्घा ह्रस्वाल्पविषमाछोभाध्मातापरीक्षिता ।
दिङ्मूढा चाङ्गहीना च सास्थ्यङ्गारा सशर्करा ॥ ९ ॥

खण्डा दुःपंकनिर्भिन्ना कृष्णा दोषभयावहा ।
नृणां पशुतुरङ्गाणां पद्माङ्काः स्वस्तिवृद्धये ॥ १० ॥

क्रव्यान्मृगविहङ्गानां पादैः स्पृष्टास्तु वर्जयेत् ।
नन्दाभद्राजयापूर्णाश्चतस्रः स्युरिमाः शिलाः ॥ ११ ॥

वासिष्ठी काश्यपी तद्वद् भार्गव्याङ्गिरसीति ताः ।
तत्र प्रागुत्तरे देशे संनिवेशस्य वास्तुनः ॥ १२ ॥

---

१. ‘स्थापनाध्मा’(?) क, ‘छाताध्मा’ ग. पाठः । २. ‘ताः’ ख. ग. पाठः । ३. ‘राः’ क. पाठः । ४. ‘क्षपनि’ क, ‘पक्षनि’ ग. पाठः । ५. ‘हाः’ ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नैर्ऋत्यां वा सकुसुमां समां गोचर्मसम्मिताम् ।
वेदीं सगन्धकलशां चतुरश्रां प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

आग्नेय्यामादितो नन्दां स्थापयेत् क्रमशः शिलाम् ।
अकालमूलैर्व्यङ्गैः सपद्मोत्पलपल्लवैः ॥ १४ ॥

सर्वौषधिहिरण्याद्यैर्हेमराजतमृन्मयैः ।
कुम्भैस्ताम्रमयैश्चापि मन्त्रैस्तामभिषेचयेत् ॥ १५ ॥

तीर्थप्रस्रवणाम्भोभिः सरत्नाक्षतपङ्कजैः ।
सुगन्धिभिः सपुण्याहमभिषेकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

जाह्नवीयमुनारेवासरस्वत्यादिसम्भ(वैः?वम्) ।
महानदीजलं शस्तं शुभतीर्थभवं तथा ॥ १७ ॥

तथाद्रिवनवेशन्तदेवायतनजानि च ।
अभिषेकार्थमम्भांसि यथालाभमुपाहरेत् ॥ १८ ॥

मन्त्रेणानेन चैतासामभिषेकं समाचरेत् ।
हिरण्यवर्णाः पावन्यः शुचयो दुरितच्छिदः ॥ १९ ॥

पुनन्तु शान्ताःश्रीमत्य आपो युष्मान्मधुच्युतः ।
मन्त्रपूतेन पयसा स्नापयित्वा ततः शिलाम् ॥ २० ॥

स्थपतिर्गन्धकल्केन मङ्गल्येनानुलेपयेत् ।
हिमचन्दनपूर्णेन व्यवकीर्य सुगन्धिना ॥ २१ ॥

तरसा छादयेदेनां सलाजैः पुष्पदामभिः ।
धूपमाल्योपहारैश्च दधिमांसाक्षतादिभिः ॥ २२ ॥

पूजयेदिष्टकां देवीं वस्त्रयुग्मैश्च पुष्कलैः ।
निवेशनान्ते नैर्ऋत्यां तदा विप्रानवस्थितान् ॥ २३ ॥

समसङ्ख्याञ् शुचीन् प्राज्ञानर्चयेद् दक्षिणाफलैः ।
ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहगीतवादित्रनिस्वनैः ॥ २४ ॥

कर्ता जनितरोमाञ्चस्तेभ्यः कुर्यान्नमस्क्रियाम् ।
निवेद्य वास्तोष्पतये भूतेभ्यश्च ततो बलिम् ॥ २५ ॥

---

१. 'सु' ग. पाठः । २. 'वमान्यः' क. पाठः । ३. 'चन्द्रेण पू' ख. ग. पाठः । ४. 'र' ग. पाठः

"Aho Shrut Gyanam"

तासां चतसृणामन्याः कुर्यादुपशिलाः पृथक् ।
प्राकारंस्वस्तिकाङ्के द्वे तथा श्रीवत्सलक्षणा ॥ २६ ॥

नन्द्यावर्तस्तु पूर्णायां भवे(देको?दङ्को) यथाक्रमम् ।
कर्णे प्राग्दक्षिणे नन्दां वास्तुनः स्थापयेद्धः ॥ २७ ॥

अन्याः क्रमेण भद्राद्याः कोणेष्वन्येषु च त्रिषु ।
प्रतिष्ठापनमन्त्राश्च तासां चतसृणामपि ॥ २८ ॥

चत्वार ऋषिभिर्गीताः शाश्वतारम्भदर्शनाः ।
वीर्येणादिवराहस्य वेदार्थैस्त्वभिमन्त्रि(ताः?ताम्) ॥ २९ ॥

वसिष्ठेर्नन्दिनीं नन्दां प्राक् प्रतिष्ठापयाम्यहम् ।
सुमुहूर्ते सुदिवसे सा त्वं नन्दे! निवेशिता ॥ ३० ॥

आयुः कारयितुर्दीर्घं श्रियं चाद्यामिहात्रह ।
भद्रासि सर्वतोभद्रा भद्रे! भद्रं विधीयताम् ॥ ३१ ॥

कश्यपस्य प्रियसुते! श्रीरस्तु गृहमेधिनः ।
जये! विजयतां स्वामी गृहस्यास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥

आचन्द्रार्कं यशश्चास्यं भूम्यामिह विरोहतु ।
त्वयि सम्पूर्णचन्द्राभे! न्यस्तायां वास्तुनस्तले ॥ ३३ ॥

भवत्येष गृहस्वामी पूर्णे! पूर्णमनोरथः ।
इति मूलचं(यो?यं) मन्त्रैः कुर्यात् स्वस्तिकवाचनैः ॥ ३४ ॥

ताभिर्हिरण्यवर्णाभिः शिलाभिः समम‌द्भुतम् ।
प्रागुदक्प्लवना धन्या न प्रत्यग्दक्षिणाप्लवा ॥ ३५ ॥

इष्टकाश्चैत्यभवनप्राकारपुरकर्मसु ।
विताने चितिविन्यासे चतुर्मुखनिकेतने ॥ ३६ ॥

पुरोधाः शान्तिवेदीषु प्रतिमास्थापनेषु च ।
याज्ञिकेन विधानेन क्रमशः स्थापयेच्छिलाः ॥ ३७ ॥

१. 'रं च स्व', २. 'ज्ञेया श्री', ३. 'थ' ग. पाठः । ४. 'धं', ५. 'स्यां', ६. 'मं' क. पाठः । ७. 'भ' ख. ग. पाठः । ८. 'भिः सशिलाभिः समं द्रुतम्', ९. 'के', क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

§ त्रैशोकौर्णासैभा(सै?रुयै)स्ताः सामभिः सै महाव्रतैः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्भिर्बृहत्या च यथाक्रमम् ॥ ३८ ॥

चयान् समस्तांश्चिनुयाच्चतुरो विरमेत् ततः ।
ज्ञात्वा भित्तिप्रमाणं च चितेश्चयचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥

समाप्यमादिकर्मैवं कनिष्ठं च यथोत्तरम् ।
प्रतिष्ठितास्ताः प्रथमं भूतले सुस्थिताः समाः ॥ ४० ॥

न चालयेच्चालने स्याद् गृहभर्तुर्महद् भयम् ।
कम्पने च भयं विद्यादेतासां स्थिरतां पुनः ॥ ४१ ॥

स्थपतेर्गृहभर्तुश्च मङ्गलं परमं विदुः ।
प्रागद्क्षिणायां चलने गृहभर्तुर्महद् भयम् ॥ ४२ ॥

भार्याविनाशो नैर्ऋत्यां शून्यं(?) भीतिर्मरुद्दिशि ।
गुरोश्च भयमैशान्यामपचारेऽपि तद् भवेत् ॥ ४३ ॥

प्रथमं स्थापि(तेनै?ताने)वं स्तम्भानपि न चालयेत् ।
नोद्धरेत प्रणुद्याच्च विधिस्तुल्यो यतोऽनयोः ॥ ४४ ॥

विन्यासं प्रथमं तस्मात् कुर्यात् सम्यक् समाहितः ।
शिलानां स्थपतिस्तद्वत् स्तम्भानामपि सर्वथा ॥ ४५ ॥

द्वारप्राकारशालानां नगराणां च वेश्मनाम् ।
तत्प्रमाणो विधिर्यस्मात् तस्मात् तत्रादृतो भवेत् ॥ ४६ ॥

एवं शिलान्यासविधानमेतद् यथावदस्माभिरिहोपदिष्टम् ।
अस्मिन् कृते वेश्मसुरालयादि निष्पत्तिमभ्येति विनैव विघ्नम् ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
शिलान्यासविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'सु' ख. ग. पाठः । २. 'स्म', ३. 'णयोश्चाल', ४. 'न्यां', ५. 'तत्रा-स्मात्तत्रा' क. पाठः ।

§ 'त्रैश्लो' इति मातृकासु दृश्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ बलिदानविधिर्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो बलिरूपविधेः क्रमम् ।
येन येनार्चिता देवास्तुष्यन्ति समहेश्वराः ॥ १ ॥

मण्डलं वास्तुनो मध्ये गोमयेन प्रकल्पयेत् ।
कलशं तत्र विन्यस्येत् सप्रसूनं सकाञ्चनम् ॥ २ ॥

वास्तुदेवास्ततः कल्प्या यथास्थाननियोगतः ।
सधूपैर्विविधैर्माल्यैरर्घ्यं पश्चान्निवेदयेत् ॥ ३ ॥

अर्चयेद् विश्वकर्माणं माल्यैर्धूपैर्विलेपनैः ।
भक्ष्यैः फलैर्बहुविधैः पूजयेत् सुसमाहितः ॥ ४ ॥

आज्येन पयसा दध्ना पूजयेच्छिखिनं पुनः ।
शालिगोधूममुद्गाद्यैर्धान्यैः पर्जन्यमर्चयेत् ॥ ५ ॥

जयन्तं पूजयेदाम्रद्राक्षाखर्जूरिकादिभिः ।
मालतीमल्लिकाभिश्च पूजयेत् त्रिदशाधिपम् ॥ ६ ॥

पुष्पै रक्तैस्तथा धूपै रक्तचन्दनलेपनैः ।
ततः सूर्यं जगन्नाथं पूजयेल्लोकचक्षुषम् ॥ ७ ॥

जम्बीरैर्बीजपूरैश्च नारङ्गैः पीतकैः फलैः ।
पूजयेत् सत्यनामानं देवं तेन स तुष्यति ॥ ८ ॥

मत्स्यमांसैश्च तुष्यन्ति सर्वे[2] रक्षःपुरोगमाः ।
सितैः फलैर्नारिकेलैर्भृशश्च परितुष्यति ॥ ९ ॥

गन्धधूपप्रयोगैश्च नभोनामानमर्चयेत् ।
पुष्पैः सुगन्धिभिः शुक्लैर्मारुतः परितुष्यति ॥ १० ॥

कृसरं मधुसंयुक्तं पूष्णे[3] भक्त्या निवेदयेत् ।
वितथं तु शुभैरन्यैर्मद्यमांसविवर्जितैः ॥ ११ ॥

पूजितस्तुष्टिमायाति विवस्वांश्च महामुनिः ।
पुष्पैः सपुष्पकैस्तुष्टिमवाप्नोति गृहक्षतः ॥ १२ ॥

---

१. 'यैर्भाविता', २. 'सर्वे' ख. ग. पाठः । ३. 'म' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

मत्स्यमांसयुतैर्भक्ष्यैर्यमतुष्टिः सदा भवेत् ।
पुन्नागागरुधूपेन गन्धर्वानर्चयेद् बुधः ॥ १३ ॥

मृगमांसयुतैर्भक्षैर्भृङ्गराजं च तर्पयेत् ।
राजजम्बूफलैर्बिल्वैर्देवमभ्यर्चयेन्मृगम् ॥ १४ ॥

पायसैर्मधुसंयुक्तैर्मांसैर्भक्तैश्च शोभनैः ।
कर्पूरसुरभिद्रव्यगर्भैः संपूजयेत् पितॄन् ॥ १५ ॥

सपुष्पैर्मोदकैर्लाजैः पललैश्च त्रिमिश्रितैः ।
दौवारिकं प्रयत्नेन पूजयेद् विघ्नकारकम् ॥ १६ ॥

अपूर्वैः शोभनैर्गन्धैर्धूपैर्माल्यैरनुत्तमैः ।
पुष्पैः कण्टकजालीनां सुग्रीवं पूजयेत् सदा ॥ १७ ॥

सपुष्पैर्लाज(पं?ज)कैर्भक्ष्यैर्दधियुक्तान्नपायसैः ।
अर्चयेत् पुष्पदन्तं तु यशोवीर्यान्वितं सुरम् ॥ १८ ॥

मांसैश्च सूकरादीनां वैनतेयं सदार्चयेत् ।
वरुणं च महासत्त्वं पूजयेद् धूपचन्दनैः ॥ १९ ॥

राहुं च मांससंयुक्तैस्तर्पयेद् भक्ष्यभोजनैः ।
रुधिरेण प्रदत्तेन तुष्टिमेति शनैश्चरः ॥ २० ॥

मांसेन तु क्षयस्तुष्टिं रोगाणामधिपो व्रजेत् ।
मेदसा पूजयेद् रोगं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ २१ ॥

वासुकिं क्षीरदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
पूर्ववत् पूजयेद् देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥ २२ ॥

सितप्रसूनविन्यासैर्भल्लाटं पूजयेद् बुधः ।
दधियुक्तेन चान्नेन सोमं सर्वत्र पूजयेत् ॥ २३ ॥

कुबेरं धूपदानेन पूजयेत् सततं नरः ।
अदितिं च सुवर्णेन पद्मैरपि च पूजयेत् ॥ २४ ॥

अर्कमन्दारमालाभिर्वृषभं च समर्चयेत् ।
अन्येषामपि देवानामर्चनं धूपसाम्प्रतैः(?) ॥ २५ ॥

---

१. 'पुष्पैर्लोप' ख. ग. पाठः । २. 'ध' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

एवं संसाधयेल्लग्नं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
पूजया तुष्टिकारिण्या पूजयेच्च पुरोहितम् ॥ ३२ ॥

अभ्यर्चिते यतस्तस्मिन् ब्रह्मा भवति पूजितः ।
सांवत्सरस्य कर्तव्या ततः पूजा यथाविधि ॥ ३३ ॥

सांवत्सरेऽर्चिते यस्मात् पूजितः स्याद् बृहस्पतिः ।
स्थपतिं पूजयेत् पश्चात् त्वष्टृतुष्टिचिकीर्षया ॥ ३४ ॥

तदधीनं यतः कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
श्वेतचन्दनदिग्धांस्ताञ् श्वेतपुष्पैश्च पूजितान् ॥ ३५ ॥

सदशैरहतैर्वस्त्रैरङ्गुलीयैः प्रपूजयेत् ।
परिकर्मकरा ये च तान् यथाशक्ति पूजयेत् ॥ ३६ ॥

हेम्ना वस्त्रादिदानैश्च वाग्भिर्वा परितोषयेत् ।
यथा सुमनसस्ते स्युस्तथा कर्तव्यमादरात् ॥ ३७ ॥

ततः स्थपतिराचम्य बलिकर्म समाचरेत् ।
सूत्रपाते बलिं धीमान् सार्वभौतिकमाचरेत् ॥ ३८ ॥

तस्यालाभे बलिः कार्यो यो भवेत् सोऽभिधीयते ।
विदधीत चरूञ् श्वेतरक्तपीतासितान् पृथक् ॥ ३९ ॥

पायसं कृसरं क्षीरं निष्पावाञ् श्वेतमोदनम्[1] ।
पाविका[2]दधिरूपांश्च[3] पललोल्लापिकाघृतम् ॥ ४० ॥

दध्योदनं च संमिश्रं देवताभ्यो निवेदयेत् ।
तिलैर्घृतेन सहितैर्देवमग्निं च पूजयेत् ॥ ४१ ॥

ततश्च पायसं दध्ना ब्रह्मस्थाने निवेदयेत् ।
ततश्चानुक्रमेणैव देवताभ्यो बलिं हरेत् ॥ ४२ ॥

बलिकर्म यथान्यायं कृत्वा च द्विजवाचनम् ।
स्वशाखीयाञ् शुचीन् प्राज्ञान् पूजयेद् दक्षिणाफलैः ॥ ४३ ॥

ओङ्कारस्वस्तिपुण्याहैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ।
ततो विप्रैः सह स्वामी कुर्यात् तस्य प्रदक्षिणम् ॥ ४४ ॥

---

१. 'मे' ख. ग. पाठः । २. 'त्रि' ख. पाठः । ३. 'दध्यरू' ख. ग. पाठः ।
४. 'भृ' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सर्वपुष्पफलैश्चैषां कार्यं बुद्धिमता सदा ।
इत्येते बलयः सर्वे शान्त्यर्थं परिकल्पिताः ॥ २६ ॥

शोधने कर्षणे भूमेः साधने रूपकल्पने ।
गृहे प्रवेशने रम्ये तिथिमभ्युदयेषु च(?) ॥ २७ ॥

स्कन्धावारनिवेशेषु पुरग्रामनिवेशने ।

देवालयक्षितिपवेश्मनिवेशनेषु
प्रोक्तान् बलीन् प्रवितरेत् प्रयतः सुरेभ्यः ।
प्रारम्भमन्यमपि वास्तुगतं चिकीर्षुः
कुर्वन्निमं विधिमभीप्सितभाजनं स्यात् ॥ २८$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

बलिदानविधिर्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ कीलकसूत्रपातो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

वर्णानां[1] यानि दारूणि कीलकार्थं नियोजयेत् ।
इदानीं तानि वक्ष्यामि श्रेयःकीर्त्तिहिताय च ॥ १ ॥

खदिरोदुम्बराश्वत्थशालशाकधवार्जुनाः[2] ।

अञ्जनः कदराशोकतिनिशारुणचन्दनाः[3] ॥ २ ॥

शिरीषसर्जन्यग्रोधवेणवः कीलकर्मणि ।
पुन्नामानो द्रुमाः शस्ताः स्त्रीनामानो विगर्हिताः ॥ ३ ॥

अश्वत्थः खदिरश्चैतौ विप्राणां वृद्धिकारकौ ।
रक्तचन्दनवेणूत्थकीलौ क्षत्रस्य पूजितौ ॥ ४ ॥

शाकश्च खदिरश्चेति सामन्तानां हिताविमौ ।
कीलौ शालशिरीषोत्थौ वैश्यानां कीर्तितौ शुभौ ॥ ५ ॥

शूद्रजातेस्तु तिनिशधवार्जुनसमुद्भवाः[4] ।
वैश्यवेश्मसु सौभाग्यकार्ये च स्युरशोकजाः ॥ ६ ॥

१. 'न' क. पाठः । २. 'राश्च ते', ३. 'लः', ४. 'तः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

न्यग्रोधो वणिजां धाम्नि भूमिकर्मण्युदुम्बरः ।
महामा(त्रै?त्रा)श्चवैद्यानां कीलाः सर्जार्जुना गृहे ॥ ७ ॥

विप्राणां सर्ववर्णोत्थाः क्षत्रियाणां त्रिवर्णजाः ।
वर्णद्वयोक्ता वैश्यानां शूद्राणां स्वानुलोमतः ॥ ८ ॥

प्रतिलोमा न कर्तव्याः कीलका भूतिमिच्छता ।
प्रमाणान्यथ कीलानां निगद्यन्ते पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलाः कीला विप्राणां स्युः शुभावहाः ।
क्षत्रियाणां पुनश्चाष्टाविंशत्यङ्गुलसम्मिताः ॥ १० ॥

चतुर्विंशत्यङ्गुलाश्च वैश्यानां शुभदायिनः ।
विंशत्याद्यङ्गुलैः कीलाः शूद्रजातेस्तु ते हिताः ॥ ११ ॥

षडङ्गुलपरीणाहाः सर्वेष्वेते शुभावहाः ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां वेदाष्टाश्रषडश्रयः ॥ १२ ॥

षडश्रयस्तु शूद्रस्य प्रकृतेस्तु यदृच्छया ।
दार्भमौञ्जौर्णकार्पासं विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

अर्धपर्वपरीणाहं दृढं सूत्रं तु वर्तितम् ।
अलाभे स्वस्य सूत्रस्य प्रोक्तादन्यतमं बुधः ॥ १४ ॥

गृह्णीयात् सूत्रमन्ये तु गृह्णीयुः स्वेच्छयैव ते ।
इत्थं संभृत्य सम्भारान् गृहभर्ता शुभेऽहनि ॥ १५ ॥

शुक्लपक्षे शुचिः स्नातः स्थपतिश्च सिताम्बरः ।
गृहस्थाननिमित्तात् तु देवस्थानानि लक्षयेत् ॥ १६ ॥

कुसुमाक्षतमर्घ्यैश्च कर्तव्या गृहदेवताः ।
आदौ स्थानानि शङ्कूनां परीक्षेत समन्ततः ॥ १७ ॥

तेषु सर्वेषु कर्तव्यमर्चनं तु यथाविधि ।
गृहस्य मध्ये सिक्त्वा तु निरूप्य ब्रह्मणः पदे ॥ १८ ॥

गोमयेन समालिप्तां कुर्याद् वेदीं सुलक्षणाम् ।
चतुरश्रां चतुर्द्वारामक्षतैः सुप्रतिष्ठिताम् ॥ १९ ॥

---

१. 'स्वविविद्यानां' ख., 'स्ववैविद्यानां' ग. पाठः । २. 'दशाश्रष', ३. 'क्षिपेस्तु', ४. 'ना', ५. 'त्ता तु', ६. 'प्यश्वक' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तस्या मध्ये प्रतिष्ठाप्यः कुम्भो हैमोऽथ राजतः ।
ताम्रको मृन्मयो वापि पूर्वालाभे परः परः ॥ २० ॥

अकालमूलः सोऽव्यङ्गो जलपूर्णः स्वलङ्कृतः ।
मणिरत्नप्रवालैश्च स्वर्णरूप्येण गर्भितः ॥ २१ ॥

प्रतिष्ठा(प्या?प्योऽ)क्षतैः पुष्पफलबीजसमन्वितः ।
श्वेतेन चन्दनेनैनं चर्चयित्वा समन्ततः ॥ २२ ॥

तस्योपरिष्टाद् विन्यस्येत् क्षीरवृक्षस्य पल्लवम् ।
सुगन्धिनार्थं धूपेन धूपयित्वा चतुर्दिशम् ॥ २३ ॥

वेष्टयेदहतेनैनं शुक्लवस्त्रेण सर्वतः ।
वास्तुमध्ये यतो ब्रह्मा कुम्भरू(पं?पः)स तिष्ठति ॥ २४ ॥

कुम्भस्योत्तरभागे तु कीलकान् स्थापयेद् बुधः ।
कीलानष्टौ परीक्षेत स्थापयेच्च यथाविधि ॥ २५ ॥

श्वेतचन्दनलिप्तांस्तांश्च श्वेतपुष्पैर्विभूषयेत् ।
सालक्तकान् सुरभिणा धूपेन च सुधूपितान् ॥ २६ ॥

ऊर्णामयेन सूत्रेण त्रिवर्णेनाभिवेष्टयेत् ।
मधुसर्पिर्दधिक्षीरैर्मूलभागेषु लेपयेत् ॥ २७ ॥

अर्चयेत् परशुं सूत्रमष्ठीलादीनि सर्वतः ।
अथोपकरणान्यत्र धूपपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २८ ॥

ततः पूर्वोत्तरे वास्तोर्भागे सप्तार्चिषः पदे ।
गोमयेन समालिप्ते कुशास्तरणमास्थितः ॥ २९ ॥

अग्निकार्यं प्रकुर्वीत पुरोधाः शान्तिमेव च ।
सांवत्सरः शुचिः स्नातः कृतस्नानः(?) समाहितः ॥ ३० ॥

शङ्कुना साधयेल्लग्नं सम्यक् तद्घटिकाथवा(?) ।
रात्रिलग्नं तु नक्षत्रैर्मध्यास्तोदयसंश्रितैः ॥ ३१ ॥

१. ‘च’, २. ‘यवीश्वेत’(?) ख. ग. पाठः । ३. ‘तास्ते श्वे’, ४. ‘का:’, ५. ‘ताः’ क. पाठः । ६. ‘ष्ठीलावानि’ ख. ग. पाठः । ७. ‘रशुचि’: ८. ‘ङ्कुतसा’, ९. ‘तं खादि’ ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अक्षतान् प्रथमं कुम्भे दापयित्वा द्विजोत्तमैः ।
ततो दक्षिणपूर्वेण गत्वा पुण्याहवाचकैः ॥ ४५ ॥

अहताम्बरसंवीतः शुचिः स्थपतिरासने ।
निषद्य प्राङ्मुखः शङ्कुं धृत्वा दक्षिणपाणिना ॥ ४६ ॥

पश्चादादाय वामेन प्रतिष्ठाप्य च भूतले ।
मन्त्रानमून् जपन् वीरो हन्यात् परशुना ततः ॥ ४७ ॥

विशन्तु ते तलं नागा लोकपालास्तथैव च ।
प्रतिष्ठन्तु गृहं चास्मिन्नायुर्बलकरं भवेत् ॥ ४८ ॥

प्रहारान् सुस्थिरानष्टौ दद्यात् कीलस्य मूर्धनि ।
हन्यमाने ततः कीले निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥ ४९ ॥

गोविप्ररथनागाढ्याः कन्या नृपवरस्त्रियः ।
शङ्खदुन्दुभिवंशानां तथा गीतस्य च ध्वनिः ॥ ५० ॥

आविर्भवति यद्यस्मिन् हन्यमाने प्रभुस्तदा ।
सततं सुखमाप्नोति शान्त्यैश्वर्यैश्च वर्धते ॥ ५१ ॥

हतं क्षुतं विपन्नं वा निषेधः सूत्रकीलयोः ।
पाषण्डिनां च सर्वेषां दर्शनं न सुखावहम् ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा शुभनिमित्तानि ततः शङ्कुं निवेशयेत् ।
हन्यमानो यदा कीलो विशेद् भूमौ शनैः शनैः ॥ ५३ ॥

कर्मसिद्धिर्भवेत् तत्र गृहं रत्नपरिच्छदम् ।
हन्यमानोऽपि न विशेद् धरित्रीं कीलको यदा ॥ ५४ ॥

न तत्र कर्मसिद्धिः स्यादनिमित्तं च लक्षयेत् ।
एकेनापि प्रहारेण यत्र कीलो विशेन्महीम् ॥ ५५ ॥

न सिद्धिं याति तत्रौकः कृतं वा नोपभुज्यते ।
आयस्याष्ठीलया हन्यान्न काष्ठेन कथञ्चन ॥ ५६ ॥

काष्ठेन ताडितः कीलो वह्निदोषकरो भवेत् ।
अश्मना यदि ताड्येत तदा व्याधिं प्रयच्छति ॥ ५७ ॥

---

१. 'कुम्भं' क. पाठः । २. 'ज्व' ख., 'श' ग. पाठः । ३. 'रः' क. पाठः ।
४. 'शान्तैश्व' क, शान्त्यर्थैश्च', ख. ग. पाठः । ५. 'स' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ऐन्द्रीं प्रतिनतः कीलो धनसम्मानकारकः ।
आग्नेय्यां प्रणते कीले भवत्यग्निभयं महत् ॥ ५८ ॥
याम्यायां मरणं राज्ञां दिशि राक्षसतो भयम् ।
धननाशस्तु वारुण्यां वायव्यां रोगतो भयम् ॥ ५९ ॥
सौम्यं सौम्यानते राजप्रसादायेशतो गतः ।
कीलके कूर्चके जाते पुत्रपौत्रान्वयैर्गृहे ॥ ६० ॥
परमामृद्धिमाप्नोति धनधान्यैश्च वर्धते ।
हन्यमानो यदा यत्नात् कीलः कश्चिदपि स्फुटेत् ॥ ६१ ॥
नाशं विद्यात् तस्य पत्न्या ज्येष्ठस्य तनयस्य वा ।
यदि भज्येत कीलः स्यात् स्वामिनो जायते वधः ॥ ६२ ॥
यदा कीलः पतेद्धस्ताद् भ्रंशः स्यात् स्थपतेस्तदा ।
हस्तभ्रष्टश्च(?) स भवेदष्ठीले हस्तविच्युते ॥ ६३ ॥
सुखेन हन्यमानश्चेत् कीलः स्वस्थो न जायते ।
अष्टौ प्रहारानपरांस्तस्य दद्यात् तदा पुनः ॥ ६४ ॥
स्रग्गन्धधूपोपहारैः कुर्याच्च परिषेचनम् ।
इदं साम महापुण्यं परिचिन्त्य समासतः ॥ ६५ ॥
त्रैशोकं तु जपेद् विद्वान् यावच्छङ्काभिषेचनम् ।
गत्वाथ नैर्ऋतीमाशां ततः शङ्कुं निवेशयेत् ॥ ६६ ॥
ऊर्णायैवेन साम्नास्य सम्यक् स्नपनमाचरेत् ।
वायोर्दिशं ततो गत्वा तत्र शङ्कुं निवेशयेत् ॥ ६७ ॥
अभिषेकं महारत्नसाम्ना तस्य समाचरेत् ।
अथैशानीं दिशं गत्वा शङ्कुं तस्यां निवेशयेत् ॥ ६८ ॥
भाग्रेण साम्ना कुर्वीत प्राग्वत् तस्याभिषेचनम् ।
ततोऽनु सूत्रं बध्नीयात् सव्यं द्विगुणवेष्टितम् ॥ ६९ ॥
प्रदक्षिणं प्रसार्येतदुक्तः शङ्कुक्रमो यथा ।
(म?ब)ध्यमानं यदा सूत्रं शङ्कुः किमपि मुञ्चति ॥ ७० ॥

---

१. 'च गते' ख. ग. पाठः । २. 'च' ख. पाठः । ३. 'लस्यात्', ४. 'स्य', ५. 'लतुस्थो', ६. 'वर्त्य स' क. पाठः । ७. 'यवेशान' क, 'र्यवेन' ख. पाठः । ८. 'प्राग्वत् (स्नानं स)माच' क. पाठः । ९. 'कुः' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तदा पुत्रवधं विद्याच्छिन्नं स्वस्वामिमृत्यवे ।
तस्माद् यत्नः प्रकर्तव्यो यावत् सूत्रं प्रसार्यते ॥ ७१ ॥
चतुर्णामपि बाहूनां पोषं(?)छिन्नं न दुष्यति ।
सूत्रं प्रसार्य वितरेच्चरून् पूर्वं प्रकल्पितान् ॥ ७२ ॥
स्वेषु स्वेषु ततः स्थानेष्वनेन विधिना बुधः ।
शङ्कुस्थानेषु दातव्याः सिताद्याश्चरवः क्रमात् ॥ ७३ ॥
प्राग्दक्षिणस्या विदिशो मन्त्रं चेमं हृदा जपेत् ।
मारुतानां च सर्वेषां मानवानां तथैव च ॥ ७४ ॥
बलिं तेषु प्रयच्छामि मन्त्रेण परिमन्त्रितम् ।
रक्तं बलिमुपादाय नैर्ऋत्यभिमुखस्तथा ॥ ७५ ॥
नैर्ऋत्यधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।
बलिं तेषु प्रयच्छामि रक्तमोदनमुत्तमम् ॥ ७६ ॥
कृष्णं बलिमुपादाय गत्वा च दिशमानिलीम् ।
नमस्ते नागराजाय ये चान्ये तं समाश्रिताः ॥ ७७ ॥
बलिं तेषु प्रयच्छामि कृष्णमोदनमुत्तमम् ।
बलिमुद्धृत्य हारिद्रमैशानीमाश्रयेन् दिशम् ॥ ७८ ॥
नमो रुद्रेषु सर्वेषु ये चान्ये तान् समाश्रिताः ।
प्रयच्छामि बलिं तेषां हारिद्रौदनमुत्तमम् ॥ ७९ ॥
एवमेतान् बलीन् सर्वान् यथावत् प्रतिपादयेत् ।
ततः कुम्भोदकं पुण्यं साम्ना दिव्येन मन्त्रयेत् ॥ ८० ॥
वामदेव्येन कुर्वीत प्रोक्षणं तेन वास्तुनः ।
द्रुमा विप्रादीनामिति निगदिताः शङ्कुघटने
फलं यच्छङ्कोश्च स्फुटमिह निमित्तानि बहुशः ।
तथा सूत्राताने विधिरनु च मन्त्रैः प्रतिदिशं
बलिः कीलेषूक्तस्त्रिदशपरितोषाय विधिवत् ॥ ८१[1][2] ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

कीलकसूत्रपातो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'रयेत्' क पाठः। २. 'नू' ख. ग. पाठः। ३. 'र्नि' क. पाठः।
४. 'शेत दि' ख. ग. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ वास्तुसंस्थानमातृका नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो वास्तुसंस्थानमातृकाम् ।
निवासहेतवे सम्यक् सर्वकर्मोपजीविनाम् ॥ १ ॥

चतुरश्रं समं * साचि दीर्घं वृत्तं च शम्बुकम् ।
शकटाक्षभगादर्शवज्रकन्थाकृतीनि च(?) ॥ २ ॥

छिन्नकर्णं विकर्णं च शङ्खाभं क्षुरसन्निभम् ।
शक्त्याननं कूर्मपृष्ठं सदंशं व्यजनाकृति ॥ ३ ॥

शरावस्वस्तिकाकारं मृदङ्गपणवोपमम् ।
विशर्करं कबन्धाभं यवमध्यसमाकृति ॥ ४ ॥

उत्सङ्ग(रा?ग)जदन्ताभे तथा परशुसन्निभम् ।
विस्रावितं च श्वभ्रं च †प्रलम्बं च वित्राहिकम् ॥ ५ ॥

त्रिकुटं पञ्चकुटं च परिच्छिन्नं तथापरम् ।
दिक्स्वस्तिकाभं श्रीवृक्षं वर्धमानसमाननम् ॥ ६ ॥

एणीपदं नरपदं चत्वारिंशत् समासतः ।
क्षेत्राण्युक्तान्यथामीषां विनियोगो विधीयते ॥ ७ ॥

चतुश्रे समे राजा शय्याकारे पुरोहिताः ।
दीर्घे कुमारकाः सेनापतिर्वृत्तायते वसेत् ॥ ८ ॥

वसेयुः शम्बुकाकारे सर्वे बाह्याः सुखार्थिनः ।
अन्तःपुरं सव समे वाणिजाः शकटाकृतौ ॥ ९ ॥

वेश्यास्तु भगसंस्थाने दर्पणाभे सुवर्णकृत् ।
संस्थानतो वज्रसमे जना नगरगोष्ठिकाः ॥ १० ॥

वसेयुः ‡ शङ्खसंस्थाने क्षेत्रे पुत्राभिलाषिणः ।
छिन्नकर्णे महामात्रा विकर्णे मृगलुब्धकाः ॥ ११ ॥

शङ्खाभे चैकदश्वानो गणाचार्याः क्षुरोपमे ।
व(ता?जा)ध्यक्षः शक्तिमुखे कूर्मपृष्ठे तु मालिकाः ॥ १२ ॥

१. 'संयातं', २. 'संक्षामनं', ३. 'व' ख. ग. पाठः ।

* पूर्वाध्यायोपान्तिमश्लोकादारभ्या चत्वारिंशाध्यायावसानात् क. पाठो लुप्तः, ख. गयो-स्तु [illegible] । † [illegible] । ‡ [illegible] ।

"Aho Shrut Gyanam"

सदंशे सौचिका वाजिपोषका व्यजनोपमे ।
तर्क्षाणश्च[1] शरावाभे स्वस्तिके वन्दिमागधाः ॥ १३ ॥

पणवाभे मृदङ्गाभे वेणुतूर्यादिवादकाः ।
विशर्करे[2] तु रथिनः कबन्धप्रतिमे पुनः ॥ १४ ॥

नीचाः श्वपाकाश्च यवप्रतिमे धान्यजीविनः ।
उत्सङ्गे श्रमणा हस्त्यारोहिणो (रा?ग)जदन्तके ॥ १५ ॥

परशुप्रतिमे क्षेत्रे बन्धनागारिणो जनाः ।
विस्राविणि सुराकाराः श्वभ्राभे कर्मकारिणः ॥ १६ ॥

युगले नापिताः स्वाविवाहव्ये(?)[3]कोशरक्षिणः ।
त्रिकुष्टे पञ्चकुष्टे च वसेयुर्वह्निजीविनः ॥ १७ ॥

समन्ततः § परिच्छन्ने सर्वे मानोपजीविनः ।
दिक्स्वस्तिके तु चैत्यानि कुर्याद् वासांश्च सर्वशः ॥ १८ ॥

श्रीवृक्षप्रतिमे वृक्षान् यज्ञवाटांश्च कारयेत् ।
वर्धमानाकृतिमुखेऽप्येतानेव प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥

एणीपदे तु गणिकाश्चौरान् नरपदोपमे ।
इत्युक्ताः शुभदा वासाः सर्वकर्मोपजीविनाम् ॥ २० ॥

कर्मोपजीविजनवासनिमित्तमेताः
क्षेत्राकृतीरभिहिताः प्रविमृश्य तेषाम् ।
वेश्मानि कारयति यः स्थपतिर्यथाव-
न्मान्यः स कस्य न भवेदिह भूमिपृष्ठे ॥ २१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

वास्तुसंस्था(प?)नमातृकानामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'क्षणाश्च', २. 'भे' ख. ग. पाठः । ३. 'स्वाधि वा' ग. पाठः ।

§ 'परिच्छिन्नमि'ति लक्ष्ये पठितम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ द्वारगुणदोषो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

गृहाण्युक्तानि सर्वेषामेवं कर्मोपजीविनाम्।
वर्णिनां च गृहस्थानां कथ्यन्तेऽतः परं यथा ॥ १ ॥
भल्लाटे धनदे यद्वा चरके पृथिवीधरे।
ब्राह्मणस्य भवेद् वेश्म माहेन्द्रद्वारमुत्तमम् ॥ २ ॥
माहेन्द्रेऽर्केऽथ सत्ये वा आर्यके[1] वा निकेतनम्।
कार्यं गृहक्षतद्वारं क्षत्रियस्य शुभावहम् ॥ ३ ॥
याम्ये वैवस्वते वापि गान्धर्वेऽथ गृहक्षते।
वैश्यस्य भवनं कार्यं द्वारं पुष्पाह्वये शुभम् ॥ ४ ॥
वारुणे पौष्पदन्ते वा यद्वा मैत्रेऽथवासुरे।
शूद्रस्य सदनं कार्यं भल्लाटद्वारमुत्तमम् ॥ ५ ॥
विप्राणां प्राङ्मुखं वास्तु गृहं स्याद् दक्षिणामुखम्।
वर्धते धनधान्येन पुत्रपौत्रैश्च नित्यशः ॥ ६ ॥
दक्षिणाभिमुखं वास्तु भवनं पश्चिमामुखम्।
क्षत्रियस्य धनं धान्यं विक्रमश्चेह वर्धते ॥ ७ ॥
वास्तुनः पश्चिमं द्वारं भवनस्योत्तरामुखम्।
तत्रैधते धनैर्धान्यैः पुत्रपश्वादिभिश्च विट् ॥ ८ ॥
वास्तु स्यादुत्तरद्वारं गृहं पूर्वामुखं तथा।
शूद्रस्य कर्मवृत्तिस्तु धनधान्यैर्विवर्धते ॥ ९ ॥
एकस्यामपि शालायां चत्वारः संप्रकीर्तिताः।
निवेश्यद्वारभागाश्च[2] कथ्यन्ते च शुभाशुभाः ॥ १० ॥
उत्सङ्गो हीनबाहुश्च पूर्णबाहुस्तथापरः।
प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च[3] निवेशः परिकीर्तितः ॥ ११ ॥
उत्सङ्ग †एवदीक्षाभ्यां(?) द्वाराणां वास्तुवेश्मनोः।
स सौभाग्यप्रजावृद्धिधनधान्यजयप्रदः ॥ १२ ॥

---

१. 'स्ते' ख. ग. पाठः। २. 'श्यगृहद्वाराश्च', ३. 'क्षो' ख. पाठः।

---

†'एकादिक्काभ्यां द्वाराभ्याम्' इति पाठः स्यात्।

"Aho Shrut Gyanam"

यत्र प्रवेशतो वास्तु(?)गृहं भवति वामतः
तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः ॥ १३ ॥

तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पबान्धवः ।
स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः ॥ १४ ॥

वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत् ।
प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम् ॥ १५ ॥

तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च ।
प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम् ॥ १६ ॥

गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत् ।
प्रत्यक्षायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्तप्रवेशवत् ॥ १७ ॥

ब्राह्मणो निवसेन्मुख्ये ह्निनाम्नि क्षत्रियो वसेत् ।
वितथे निवसेद् वैश्यः शूद्रः सुग्रीवनामनि ॥ १८ ॥

एते वैशेषिकाः सर्वे वर्णानामनुपूर्वशः ।
वास्तुद्वारनिवेशाश्च वासैः सह निरूपिताः ॥ १९ ॥

यथोत्तरमथोच्यन्ते वर्णानां गृहकल्पनाः ।
†शूद्रविट्क्षत्रियाणां च राज्ञां च जयकाङ्क्षिणाम् ॥ २० ॥

सा[1]र्ध[2]त्रिभूमि शू[3]द्राणां वेश्म कुर्याद् विभूतये ।
अतोऽधिकतरं यत् स्यात् तत् करोति कुलक्षयम् ॥ २१ ॥

वैश्यस्य वर्धयेद् गेहमर्धपञ्चमभूमिकम् ।
अतिप्रमाणे तत्रास्य धनबन्धुपरिक्षयः ॥ २२ ॥

क्षत्रियस्य गृहं कुर्यादर्धषष्ठतलं परम् ।
सम्पद्बलसमृद्ध्यै तदतिरिक्ते तु तच्छिदे ॥ २३ ॥

परं विप्रस्य भवनमर्धसप्तमभूमिकम् ।
स्वाध्यायाचारभोगार्थमत्युच्चं तु भयावहम् ॥ २४ ॥

यजन्ते राजसूयाद्यैः क्रतुभिर्येऽवनीश्वराः ।
तलैरर्धाष्टमैस्तेषां कारयेद् भवनोत्तमम् ॥ २५ ॥

१. 'शि' २. 'र्ध', ३. 'द्रेण वे' ख. ग. पाठः ।

† 'शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां राज्ञाम्' इति पाठः स्यात् ।

"Aho Shrut Gyanam"

आहर्तानेकयज्ञानां राजा राजाधिपश्च यः ।
तस्याप्यष्टमतलं भवनं सन्निवेशयेत् ॥ २६ ॥
वाजपेयेन वा यष्टा यो द्विजः स्यात् समाहितः ।
गवां कोटि[1]प्रदो यो वा सोऽपि तस्मिन् भवे(वु?द)भीः ॥ २७ ॥
यथाप्रमाणनिर्दिष्टे वसन्तस्ते नृपादयः ।
प्राप्नुवन्ति परामृद्धिमवृद्धिं तु विपर्यये ॥ २८ ॥
सर्धाष्टतलकं वेश्म मानतः संप्रकीर्तितम् ।
साधारणेन हस्तेन परं शूद्रस्य विंशतिः ॥ २९ ॥
चत्वारिंशद् विशः षष्टिः क्षत्त्रियस्य प्रशस्यते ।
अशीतिर्द्विजमुख्यस्य[3] शतहस्ता महीपतेः ॥ ३० ॥
नातः परं नृणामूर्ध्वप्रमाणं शस्तमुच्यते ।
देवदानवदैत्यानां पिशाचोरगरक्षसाम् ॥ ३१ ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाणां विधातव्यमतोऽधिकम् ।
एकभौमादधो नैव गृहं शूद्रस्य विद्यते ॥ ३२ ॥
वैश्यस्य भवनं कार्यमधो ना(न्य?ध्य)र्धभूमिकात् ।
द्विभूमिकादधः कार्यं क्षत्त्रियस्य न मन्दिरम् ॥ ३३ ॥
सार्धद्विभौमाद् विप्रस्य त्रितलादपि भूपतेः ।
हीनप्रमाणादमुतो गृहं यत् कुशिल्पिना स्याद् विहितं कथञ्चित् ।
भर्तुर्भिये सिद्धिविनाशनं तत् प्रशस्तशीलादिविपर्ययाय ॥ ३४ ॥
गुणदोषान् प्रवक्ष्यामि द्वाराणां सर्ववास्तुषु ।
सुस्थितं चतुरश्रं च कान्तं स्वद्रव्ययोजितम् ॥ ३५ ॥
ऋजु[5] स्वकीयदिग्भागे नह्रस्वं[6] नतथोच्चकैः ।
नाल्पं नकुब्जं नाप्यनि(?)पिण्डितं नबहिर्गतम् ॥ ३६ ॥
नाध्मातं नकृशं मध्ये गतं नान्तरकुक्षिषु ।
नविद्रुतं नसंक्षिप्तं यत् तत् स्याद् द्वारमृद्धिदम् ॥ ३७ ॥

---

१. 'टिःप्रदेया वा', २. 'भवेदुभी।', ३. 'तिर्द्वयमु', ४. 'द्वित्रिवि'(?), ५. 'जू', ६. 'स्वे' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पदस्य द्वादशे भागे पदमध्यात् प्रदक्षिणम् ।
स्थापितं वृद्धिमायाति द्वारं पुष्टिं करोति च ॥ ३८ ॥

रथ्याचत्वरशृङ्गाटवापीकूपाद्द(?)कुम्भकैः ।
कुड्यकोणतरुस्तम्भै[1]र्भवनैस्यन्दनादिभिः ॥ ३९ ॥

यद् विद्धं भवनद्वारं तच्छुभाय न जायते ।
द्वारं द्वारे प्रविष्टं च कर्तव्यं वितनेतन(?) ॥ ४० ॥

[2]पेद्यां प्रवेशयेन्नै[3]कामन्यद्वारे कदाचन ।
द्वारं प्रवेशयेत् पेद्यां नारोहणगवाक्षयोः ॥ ४१ ॥

पक्षद्वारस्य वा नैकां कथञ्चिदपि बुद्धिमान् ।
न बाह्यगान्तरे द्वारे प्रविष्टं कारयेत् क्वचित् ॥ ४२ ॥

विहितं हि तथा तत् स्याद् बहुदोषकरं सदा ।
तोरणं गोपुरद्वारैमट्टो येषां गृहे भवेत् ॥ ४३ ॥

गृहाणां मौलिकद्वारं श्रोत्रे चैतान् प्रवेशयेत् ।
द्वारं द्वारस्य कर्तव्यमुपर्युपरि भूमिषु ॥ ४४ ॥

प्रदक्षिणेन वा कार्यं कार्यं नापरथा पुनः ॥ ४५ ॥
उपर्युपरिभूमीनां मुखं कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
नापसव्येन कुर्वीत द्वारमारोहणानि च ॥ ४६ ॥

यस्यां भित्तौ कृतं पूर्वं तस्यामुपरि कारयेत् ।
तथान्यभित्तौ तद्द्वारं विधातव्यं प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥

न मध्ये सद्मनो द्वारं कुर्यादेव पदस्य च ।
न स्थू[6]ले(?) न पदे नापि सिरापाते तदिष्यते ॥ ४८ ॥

निरंशावस्थितैर्द्रव्यैस्तियक्(का?का)न्तैश्च मन्दिरे ।
मर्मवेधो न दोषाय द्वारवेधोऽथवा क्वचित् ॥ ४९ ॥

यवनाट्टालकच्छाया पुरदेवकुलस्य च ।
न प्रवेश्या गृहद्वारे रश्मयः सोमसूर्ययोः ॥ ५० ॥

---

१. 'नो' ख. ग. पाठः । २. 'ऐन्द्यां प्र' ग. पाठः । ३. 'नै', ४. 'रं पट्टो' ख. ग. पाठः । ५. 'व', ६. 'स्त' ग. पाठः । ७. 'रा दे' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

न प्राकारेण कुड्येन न विटङ्केन वा पुनः ।
अन्तर्हितानि दुष्यन्ति द्वारमर्माणि कुत्रचित् ॥ ५१ ॥

अत्युच्चे स्याद् भयं राज्ञो निम्ने तस्करतो भयम् ।
कुलपीडा भवेत् कुब्जे बहिर्याते पराभवः ॥ ५२ ॥

आध्माते स्यन्तदारिद्र्यं कृशमध्ये क्षयो नृणाम् ।
रथ्याविद्धे भवेद् रोगो मरणं चत्वरेण च ॥ ५३ ॥

शृङ्गाटकेन वैधव्यं दुहितॄणां प्रजायते ।
वाप्या कूपेन वा विद्धे स्यादतीसारतो भयम् ॥ ५४ ॥

कोणान्मृत्युभयं दद्याद् वृक्षै रोगभयं भवेत् ।
स्तम्भेन म्रियते स्वामी भ्रमेणार्थो न तिष्ठति ॥ ५५ ॥

प्रणालेन महद् दुःखं महाभीतिर्महाकलिः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्वारवेधं विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥

यस्याग्रतः पृष्ठतश्च द्वारे भित्त्योर्द्वयोरपि ।
अन्योन्यं भिद्यते यस्मिन्नेकगत्याश्रिते उभे ॥ ५७ ॥

वास्तु तद् भिन्नदेहाख्यं भिन्नस्वामिविधायकम् ।
न तत्र जायते वृद्धिः स्थापितस्य न कस्यचित् ॥ ५८ ॥

गृहकुक्षौ कृतं द्वारं सर्वरोगभयङ्करम् ।
पूर्वद्वारं तु माहेन्द्रं प्रशस्तं सर्वकामदम् ॥ ५९ ॥

गृहक्षतं तु विहितं दक्षिणेन शुभावहम् ।
गन्धर्वमथवा तत्र कर्तव्यं श्रेयसे (त?स)दा ॥ ६० ॥

पश्चिमेन प्रशस्तं स्यात् पुष्पदन्तं जयावहम् ।
भल्लाटमुत्तरे द्वारं प्रशस्तं स्याद् गृहेशितुः ॥ ६१ ॥

एकाशीतिपदे तस्मिंश्चतुरश्रपदेऽपि वा ।
द्वारोऽप्य(प)दगास्तासां ब्रूमो वह्न्यादितः फलम् ॥ ६२ ॥

हुताशभीतिः स्त्रीजन्म भूत्यर्थः म्रियते नृपे ।
क्रोधे चानृतता(?) पुंसः क्रौर्यं स्यात् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ६३ ॥

---

१. 'स्मिन्नेक', २. 'वा' ख. ग. पाठः । ३. 'या' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सुता(पि?षि)प्रैष्यनीचत्वे भक्षयानसुतर्द्धिकृत् ।
रौद्रं कृतघ्नमवसं याम्यतः सुतवीर्यहृत्(?) ॥ ६४ ॥

सुतोपपीडा रिपुवृद्धिरर्थसुतानवाप्तिस्तनयार्थसम्पत् ।
स्वाप्तिर्नृशंसाद् भयमर्थनाश उक्तः क्रमादित्यपरोन्मुखेषु ॥ ६५ ॥

बन्धव्यसत्वे(?) रिपुवृद्धिरर्थसुताप्तिरघ्या गुणसम्पदश्च ।
सुतार्थलब्धिर्द्विषयात्मजेन दोषास्त्रिया नैर्ऋतदिङ्मुखेषु ॥ ६६ ॥

गुणाश्च दोषाश्च यथावदेते निरूपिता द्वारसमाश्रिता ये ।
तान् शिल्पविच्छास्त्रविदां वरिष्ठो विज्ञाय पूज्यत्वमुपैति लोके ॥ ६७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्वारगुणदोषो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

देवानां मनुजानां च पीठमानमथोच्यते ।
पीठं कनीयो भागं च सार्धभागं तु मध्यमम् ॥ १ ॥

द्विभागमुत्तमं तत् स्यादेषा पीठसमुच्छ्रितिः ।
महेश्वरस्य विष्णोश्च ब्रह्मणश्चोत्तमं भवेत् ॥ २ ॥

इतरेषां च देवानां कर्तव्यं तत्र धीमता ।
ईश्वरस्य यथाकामं पीठं कार्यं विचक्षणैः ॥ ३ ॥

यस्मिन् स्थाने विधातव्यो ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।
ईश्वरः सर्वतः कार्यो न दोषस्तत्र विद्यते ॥ ४ ॥

इतरेषां तु देवानां पीठं भागं समुच्छ्रितम् ।
यस्य येन विभागेन वास्तुमानं विधीयते ॥ ५ ॥

तस्य तेनैव भागेन पीठोच्छ्रायो विधीयते ।
मनुजानां च पीठानि वेश्मनां देवपीठकैः ॥ ६ ॥

---

१. 'पा' ग. पाठः । २. 'र्थे', ३. 'र्थि', ४. 'तश्चङ्', ५. 'ठके' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तुल्यानि कुर्यादुपरि कृता वृद्धिकराः सुराः ।
पुरमध्ये तु कर्तव्यं ब्रह्मणो गृहमुत्तमम् ॥ ७ ॥

चतुर्मुखं च तत् कार्यं यथा पश्यति तत् पुरम् ।
अधिकं सर्ववेश्मभ्यस्तथा राजगृहादपि ॥ ८ ॥

राजवेश्माधिकमपि शस्यतेऽन्यसुरालयात् ।
पञ्चमो लोकपालनां राजा श्रेष्ठतमो यतः ॥ ९ ॥

एवमेतानि देवानां पीठान्युक्तान्यशेषतः ।
चातुवर्ण्यस्य पीठानि ब्रूमो विभाग्यनुक्रमात् ॥ १० ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलोत्सेधं पीठं विप्रस्य शस्यते ।
इतरेषां तु वर्णानां ह्रस्वं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ ११ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य पीठानि भुङ्क्ते विप्रो गृहाणि च ।
त्रयाणां क्षत्रियो वैश्यो द्वयोः शूद्रः क्रमात् स्वकम् ॥ १२ ॥

एवं विभागं पीठानां स्थपतिः परिकल्पयेत् ।
हितं कारयितुर्वाञ्छन् नृपतेश्च समृद्धये ॥ १३ ॥

प्रमाणे स्थापिता देवाः पूजार्हाश्च भवन्ति हि ।
प्रमाणं पीठानामिदमभिहितं ब्रह्ममुरजि-
त्पुरारीणामत्रापरदिविषदां यच्च नियतम् ।
ततो विप्रादीनामपि निगदितं यत् तदखिलं
यथौचित्यायोज्यं श्रियमभिलषद्भिः स्थपतिभिः ॥ १४$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
पीठमानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चयविधिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधीयन्ते चयस्येह गुणागुणाः ।
सुविभक्तः समश्चारुश्चतुरश्रश्चयः शुभः ॥ १ ॥

---

१. 'र्णाश्च पी', २. 'णामन्यजातीनां गृहं शूद्रकमाशकम्', ३. 'यथौ', ४. 'त्याद्योज्यं' ख. ग. पाठः । ५. 'श्शुभश्चयः ।' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

असंभ्रान्तमसन्दिग्धमविनाश्यै[1]न्यबर्हितम् ।
अनु[2]त्तममनुद्वृत्तमकुब्जं नच पीडितम् ॥ २ ॥

समानखण्डमृज्वन्तमन्तरङ्गं तथैव च ।
सुपार्श्वं सन्धि[3]सुश्लिष्टं सुप्रतिष्ठं सुसन्धि च ॥ ३ ॥

अजिह्मं चेति चेयस्य गुणा विंशतिरित्यमी ।
एतेषां वैपरीत्येन दोषाणामपि विंशतिः ॥ ४ ॥

दक्षिणं तु यदा कुड्यं विचिनोति बहिर्मुखम् ।
तदा व्याधिभयं विद्यान्मृत्युदण्डं च निर्दिशेत् ॥ ५ ॥

पश्चिमं तु यदा कुड्यं विचिन्वन्ति बहिर्मुखम् ।
धनहानिं[4] तदा विद्याद् दस्युभ्यश्च भयं भवेत् ॥ ६ ॥

उत्तरं तु यदा कुड्यं विचिनोति बहिर्मुखम् ।
कर्तारं स्वामिनं वापि व्यसनं प्रापयेत् तदा ॥ ७ ॥

प्राच्यं बहिर्मुखं कुड्यं चिनोति स्थपतिर्यदा ।
राजदण्डभयं तत्र निर्देष्टव्यं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

एतदेव फलं ब्रूयात् पतिते दलिते तथा ।
यस्य प्राग्दक्षिणः कर्णः प्रवर्तेत बहिर्मुखः ॥ ९ ॥

स्यात् तत्राग्निभयं घोरं गृहभर्तुश्च संशयः ।
गच्छेद् बहिर्मुखः कर्णो यदा दक्षिणपश्चिमः ॥ १० ॥

कलहोपद्रवस्तत्र स्याद् भार्यायाश्च संशयः ।
पश्चिमोत्तरकर्णे तु सम्प्रयाते बहिर्मुखे ॥ ११ ॥

पशुवाहनपुत्राणां संशयस्तत्र जायते ।
प्रागुत्तरो यदा कर्णः प्रचीयेत बहिर्मुखः ॥ १२ ॥

गुरूणां संशयस्तत्र गोत्रपादेश्च जायते ।
विशालं यदि जायेत सर्वबाहुषु चिन्वतः ॥ १३ ॥

कर्णिकासमसंस्थानं तद् भवेन्मल्लिकाकृति ।
न तादृशो भवेदायस्तत्र यादृग् व्ययो भवेत् ॥ १४ ॥

---

१. 'श्यं च ग ख, 'शं च ग' ग. पाठः । २. 'मत्तम' ख. ग. पाठः । ३. 'श्रु', ४. 'नि', ५. 'मि', ६. 'दा', ७. 'य' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चयस्य तस्य दोषेण गृ(ह?ही)क्षीर्णः पलायते ।
चिन्वतो यदि संक्षिप्तमत्यर्थं तत्र जायते ।। १५ ।।

ब्रह्मसंज्ञं तदुद्दिष्टं तत्र राजभयं भवेत् ।
विस्तृतं यदि बाह्येषु संक्षिप्तं चैव मध्यतः ।। १६ ।।

तनुमध्यं तदुद्दिष्टं तत्र विद्यात् क्षुधो भयम् ।
उच्छ्रितं यदि कर्णेषु परिहीणं च मध्यतः ।। १७ ।।

निर्णतं नाम तद् विद्यात् तत्र चौरभयं भवेत् ।
कर्णेषु परिहीणं चेदुच्छ्रितं चापि मध्यतः ।। १८ ।।

कूर्मोन्नतमिति ज्ञेयं सर्वदोषभयावहम् ।
विषमोन्नतकर्णेषु निर्दिशेद् द्रविणक्षयम् ।। १९ ।।

प्राज्यान्नपानं तद् विद्यात् समेषु विहितेषु च ।
इत्येते चीयमानस्य गुणदोषाः प्रकीर्तिताः ।। २० ।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चयकर्म प्रयोजयेत् ।
उदकेन समं नीत्वा सम्यङ्निश्चयकारणम् ।। २१ ।।

त(त्रा?स्मा)द्दते न चान्यत् स्यान्निश्चयार्थं चयस्य च ।
तस्माज्जलेन वलयं गृह्णीयात् पूर्वमादृतः ।। २२ ।।

ततः सुताडिते सूत्रे चयं कुर्याद् विचक्षणः ।
द्विगुणां क्षेत्रमानस्य रज्जुं कृत्वा तदन्तयोः ।। २३ ।।

योऽसौ(?) कार्यौ ततस्तस्यां पादोनक्षेत्रमानतः ।
दद्यान्निरिञ्छनं कीलौ क्षेत्रगर्भान्तगामिनौ ।। २४ ।।

निधाया(याः?य)सकौ तस्याः प्रान्तस्थौ योजयेत् तयोः ।
निरञ्छनाभिकृष्टायां पादोनक्षेत्रसंमितम् ।। २५ ।।

भुजगत्या भवेद् रज्जुस्तस्यामिष्टानुमानतः ।
चिह्नं दद्यात् स कर्णः स्यादेवं दोषान् प्रसाधयेत् ।। २६ ।।

---

१. 'णे', २. 'वा तेषु', ३. 'र्न' क. ख. ग. पाठः । ४. 'या' ख. ग. पाठः । ५. 'र', ६. 'यामकौ', ७. 'ण्णा' क. पाठः । ८. 'तः', ९. 'ञ्ज', १०. 'नै' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भूरि नो[1]च्छादनं दद्यान्न भिन्द्यात् तत्र चेष्टकाः ।
विषमस्थाः कुठारेणच्छित्त्वा ताः कल्पयेत् समाः ॥ २७ ॥

यथा नच स्पृशेत् सूत्रं विचिन्वीत तथा बुधः ।
कुड्ये च सादिमध्यान्ते [2]हेष्टिमेकां निपा[3]तयेत् ॥ २८ ॥

यदा सर्वपरिक्रान्तं तलं चोद्घाटितं भवेत् ।
तदा नैकत्र कुर्वीत पर्यायेण विचक्षणः ॥ २९ ॥

उद्घाटनं स्त[4]राणां(?) तु यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
तत्र तत्र चयं कुर्याद् यदि संविद्धकं हितम् ॥ ३० ॥

[5]दुर्वहं हि भवेत् तेन तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ।
उपरिष्टात् समं पार्श्वे [6]भुजं कुर्याद् विचक्षणः ॥ ३१ ॥

समन्ताद्[7] रुचकच्छिन्नश्चयो भित्तिषु पूजितः ।
तस्मात् प्रयत्नः कर्तव्यश्चयकर्मणि नित्यशः ॥ ३२ ॥

इति भाषितरूपितमाचरतश्चयकर्म यथाविधि शिल्पिकृतम् ।
भवतीह यशो भुवने विततं गृहभर्तुरपि प्रचुरो विभवः ॥ ३३ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
चयविधिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ शान्तिकर्मविधिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामो विधानं शान्तिकर्मणः ।
यथावदिष्ट्वा दिक्पालान् हुत्वा शान्तीर्यथाक्रमम् ॥ १ ॥

स्नपयेत् कर्णि[8]कां कुम्भैः सहिरण्यैर्विचक्षणः ।
सर्वगन्धानुलिप्तां च माल्यदामविभूषिताम् ॥ २ ॥

कृतमाल्यानिवसि[9]तां(?) मूले च मधुलेपिताम् ।
दोषप्रशमनार्थाय तां मूलेषु निखातयेत् ॥ ३ ॥

---

१. 'मा' ख. पाठः । २. 'द्विष्टमे', ३. 'योजये', ख. ग. पाठः । ४. 'न' ख, 'त' ग. पाठः । ५. 'दुर्बलं हि', ६. 'भयं कु' ख. ग. पाठः । ७. 'दु+क' क, 'हुचक' ग. पाठः । ८. 'का' ख. ग. पाठः । ९. 'स' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

मधुकुम्भमरिष्टं च शेवालं च विधानवित् ।
वाचयित्वा तु विप्रेन्द्रान् कृतपुण्याहमङ्गलान् ॥ ४ ॥

स्थापयेत् कर्णिकाः सर्वाः स्थपतिः प्रयतः शुचिः ।
एतेन विधिना कर्म चातुर्वर्ण्यस्य कारयेत् ॥ ५ ॥

कर्णिका रोपिता यत्र पुनरुत्पाट्य रोप्यते ।
न तन्निष्पद्यते वेश्म स्वामी चात्र विनश्यति ॥ ६ ॥

निखातं तु यदा दारुच्छिद्यते ताड्यते पुनः ।
तन्नाशो धनधान्यस्य स्वामिनश्चात्र सर्वथा ॥ ७ ॥

वल्लीनिपीडितं दारु प्रवेशे चेन्निखन्यते ।
आशीविषभयं घोरं तस्मिन्नुत्पातलक्षणम् ॥ ८ ॥

उत्थाने कर्णिका रक्ष्या सर्वसत्त्वाभिधर्षणात् ।
नत्रे कर्मण्यशकुना मृगव्यालसरीसृपाः ॥ ९ ॥

कर्णिकामधिरोहन्ति दोषांस्तत्र वदेदमून् ।
कृतापीडां परिहृतां यद्यारोहन्ति वायसाः ॥ १० ॥

गृहिणस्तत् प्रवासः स्यादन्नं पानं च हीयते ।
मयूरे तद्गृहं राजा हरेत् पञ्चाब्दतः परम् ॥ ११ ॥
वराङ्गे जायते व्याधिः कोकिलै[1]र्द्व्य[2]ब्दतः परम् ।
काकोलैस्त्रीणि वर्षाणि जायते सुमहद् भयम् ॥ १२ ॥
शुके स्युः कलहाद्या[3]नि नच निष्पद्यते गृहम् ।
कुक्कुटेऽग्निभयं विद्याद् राजतो वा महद् भयम् ॥ १३ ॥
सारिकायां तु दौःशील्यं स्त्रीणां गृहपतेस्तथा ।
स[4]र्प[5]रूपे(तं?तु)विघ्नेन गृहं निष्ठां न गच्छति ॥ १४ ॥

स्त्रीपुंसयोः कुलिङ्गे तु जायते पापकारिता ।
पारावते तु जायेते स्त्रीपुंसौ गुरुतल्पगौ ॥ १५ ॥

विडाले तु कुलं दासैः सह रोगैर्निपीड्यते ।
ज्वलनो वा जलं वापि हस्ती वा हन्ति तद्गृहम् ॥ १६ ॥

---

१. 'च', २. 'द्वौ' ख. ग. पाठः । ३. 'ज्यानि' ख. पाठः । ४. 'सर्पे', ५. 'न' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

आरण्यैः शकुनैरेतत् स्यद् वर्षाद् धर्षणे फलम् ।
यूनां च जायते मृत्युर्मध्यासङ्गे धनक्षयः ॥ १७ ॥

दुःस्वप्नदर्शनं घूके बालानां मरणं तथा ।
त्रस्तभीते निर्लीने तु राजा शून्यं हरेद् गृहम् ॥ १८ ॥

यदा त्वग्रे प्रदृश्येत धूम्रः कर्णगतोऽपि वा ।
अग्निर्दहति तत् क्षिप्रं विद्युद् वा हन्ति मन्दिरम् ॥ १९ ॥

यत्रारोहति गृध्रस्तद् द्विजाङ्घ्रिस्पृष्टमाचरेत् ।
कृत्वा हलशतैः कृष्टं ततो बीजानि वापयेत् ॥ २० ॥

गावश्चात्र प्रदुह्येरन् शान्तिकानि च कारयेत् ।
मन्त्रेऽभिहृष्टे भूयोऽपि तत्र कुर्वीत मन्दिरम् ॥ २१ ॥

येषु येषु गृहाङ्गेषु मधुनः सञ्चयो भवेत् ।
तस्याङ्गस्य वधं ब्रूयात् प्रेषिण्यां चाप्युपद्रवम् ॥ २२ ॥

तस्माद्धेतोः शिखाग्रेषु मुकुटान् प्रणिधापयेत् ।
यावन्न रोपयेत् सौम्यं तावद् रक्षेत् समन्ततः ॥ २३ ॥

अभिलीनं तु शकुनैर्नहि किञ्चित् प्रशस्यते ।
तस्मात् प्रयत्नतो रक्षेदुत्पातात् प्रागुदीरितात् ॥ २४ ॥

भङ्गे गृहाणां दारूणां शान्तिहोमोऽथ कथ्यते ।
इन्द्रकीलो महाकूटः पृष्ठवंशोत्तरौ धरौ ॥ २५ ॥

प्रग्रहो(?)ऽलिन्दपादौ वा स्वामिनं घ्नन्त्युपद्रवाः ।
तुलास्थपत्यः(?) कूटं वा वेदिका कर्णपालिका ॥ २६ ॥

नेत्रं कपोतपालिश्च हनप्रविष्टं कुटुम्बिनी(?) ।
अन्वग्राः पं(क्षि?क्ष)वंशाश्च मल्लकाः सकुमारकाः ॥ २७ ॥

गोपानस्यो मृगाल्यश्च स्थपिताः स्वकुमारिकाः(?) ।
परिघा द्वारपक्षाश्च भ्रातरं घ्नन्त्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

---

१. 'नृणां च ग. पाठः । २. 'ह्वि' क. पाठः । ३. 'क्षेत् प्रातान्', ४. 'दाद्धतात् ।' ख. ग. पाठः । ५. 'व', ६. 'काः', ७. 'रि' ख. ग. पाठः । ८. 'ट' क. पाठः । ९. 'वञ्चवं' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

संयुक्तं सङ्ग्रहो हन्ति निकृष्टांश्चाधरो धरः ।
स्थौण्यानि प्रतिमोको वा हन्युरिष्टान् परिच्छदान् ॥ २९ ॥

उ(द्?प)[1]धिर्भगिनीं हन्यादथवा परिचारकान् ।
पुंसां पुन्नामभिर्द्रव्यैः स्त्रीणां स्त्रीनभिर्भवेत् ॥ ३० ॥

उपघातो हतैर्नित्यं द्रव्याणां तु नपुंसकैः ।
[2]भूलिका स्त्रीविनाशाय गृहनाशाय वेधनम् ॥ ३१ ॥

कीला वा सन्धिपालिर्वा मित्रनाशाय दुष्यति ।
नवे गृहे नवं दारु क्रियमाणमथो कृतम् ॥ ३२ ॥

आयोज्यमानं युक्तं वा[3] न्यूनसंवत्सरं स्थितम् ।
भज्यते देहनाशाय स्फुटत्य[4]थ विभज्यते ॥ ३३ ॥

गृहं ब्राह्मणसात् कृत्वा रत्नैरालिख्य चापरम् ।
नवैर्वस्त्रैः परिच्छाद्य[5] पुनर्भिद्यानि(?)कारयेत् ॥ ३४ ॥

दग्धे भिन्ने[6] प्रचलिते विनते विद्युता हते ।
विरूढे दलिते सन्ने सर्वत्रौषधिभिः स्मृताः ॥ ३५ ॥

शान्तयो विविधं हुत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य वा ।
स्थूणिका भज्यते यस्य कीर्त्तिस्तस्योपहन्यते ॥ ३६ ॥

चन्द्रसूर्यौ यजेत् तत्र ततः शाम्यति पातकम् ।
तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तां प्रति कारयेत् ॥ ३७ ॥

एवं कृते सुखी स स्यात् कीर्त्तिश्चायुर्ध्रुवा भवेत् ।
मल्लको [7]भज्यते य[8]स्य पौरुषं तस्य हन्यते ॥ ३८ ॥

इष्टानभसनक्षत्रं(?) प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
तद्विधं वृक्षमानीय प्रति कुर्वीत मल्लकम् ॥ ३९ ॥

एवं कृत्वा सुखी स स्याद् ब[9]लं चास्याभिवर्धते ।
पृष्ठवंशस्य भङ्गेन गृही बन्धमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥

---

१. 'धिर्भगिना' क, 'भग्नि ह' ख. ग. पाठः । २. 'चू', ३. 'स्यान्न्यू' ख पाठः । ४. 'न्त्य', ५. 'द्य भेद्यतितु कार', ६. 'कम्रै' ख. ग. पाठः । ७. 'भु' क. पाठः । ८. 'स्य तस्य पुरुषोऽपहन्य', ९. 'घनं चा' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

राजराजं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
सुखी भवति तत् कृत्वा सर्वतश्चाभिवर्धते ॥ ४१ ॥

सर्वेषु स्वस्ति वाच्याश्च ब्राह्मणा दक्षिणाक्षतैः ।
[1]वारणो भज्यते यस्तु ज्येष्ठं पुत्रं स (वा[2]ज्य?बाध)ते ॥ ४२ ॥

पृथ्वीधरं यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं [3]तथाचरेत् ।
तद्विधं वृक्षमानीय पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ४३ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं पुत्रैश्चापि विवर्धते ।
संग्रहो भज्यते यस्तु कुलज्येष्ठं स (वार्ध?बाध)ते ॥ ४४ ॥

पितॄन् देवान् यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
सुखी भवति कृत्वैवं प्रीयन्ते पितरस्तथा ॥ ४५ ॥

स्थूण्यं तु भज्यते यस्य तनयस्तस्य बाध्यते ।
देवानेव यजेत् तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४६ ॥

तद्विधं वृक्षमानीय तत् स्थौण्यं प्रति कारयेत् ।
सुखी भवति कृत्वैवं पुत्रैश्चापि विवर्धते ॥ ४७ ॥

उपधी व्यथते यत्र तत्रामात्यो विनश्यति ।
यजेत वासवं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ४८ ॥

आनीय तद्विधं वृक्षमुपधिं प्रति कारयेत् ।
एवं कृते भवेत् सौख्यममात्यैश्च वि[4]वर्धते ॥ ४९ ॥

कायस्तु व्यथते यस्यं[5] प्रेष्यस्तस्योपहन्यते ।
यक्षं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५० ॥

तद्विधं काष्ठमानीय कायं तं प्रति कारयेत् ।
एवं कृते सुखी स स्यात् प्रेष्यैरपि विवर्धते ॥ ५१ ॥

तुला तु व्यथते यस्य व्यथतेऽस्य कुटुम्बिनी ।
यजेत मेदिनीं तत्र प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ॥ ५२ ॥

---

१. 'ता' ख. ग. पाठः । २. 'चाल्यते' ख., 'पाल्यते' ग. पाठः । ३. 'समाच', ४. 'सर्धयेत्' क. पाठः । ५. 'स्याः प्रेष्यस्त' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तद्विधं वृक्षमानीय स्थापयेत् तां स्वलङ्कृताम् ।
ततस्त्वन्याः क्रियाः पश्यन् कारयेन्मतिमान् नरः ॥ ५३ ॥

वधूमिव नवैर्वस्त्रैः प्रतिच्छाद्य स्वलङ्कृताम् ।
ब्राह्मणान् वाचयेत् स्वस्ति ततस्तां प्रति कारयेत् ॥ ५४ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं धनैर्नित्यं विवर्धते ।
कर्णिकास्वान्तरस्थूणामालापादोऽथ भज्यते ॥ ५५ ॥

तद्गृही दुःखमाप्नोति तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।
आनीय स्थपतिं तत्र प्रज्ञावन्तं बहुश्रुतम् ॥ ५६ ॥

तत्र वास्तुविभागेन यो देवः स्याद् विनिश्चितः ।
तस्मै देवाय जुहुयात् प्रायश्चित्तं च कारयेत् ॥ ५७ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं सर्वतश्चाभिवर्धते ।
युगं तु व्यथते यत्र तत्र स्यात् पशुपीडनम् ॥ ५८ ॥

यजेत तस्मिन्नीशानं प्रायश्चित्तं च कारयेत् ।
तद्विधं वृक्षमानीय युगं तत् प्रति कारयेत् ॥ ५९ ॥

एवं कृते सुखं तस्य पशुवृद्धिश्च जायते ।
तुलया अगयोर्वापि(?) पादो यस्य प्रभज्यते ॥ ६० ॥

आयुर्हानिर्भवेत् तत्र बलदेवं प्रपूजयेत् ।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनस्तं प्रति कारयेत् ॥ ६१ ॥

सुखी भवति कृत्वैवं कुटुम्बी शान्तिकं च तत् ।
द्वाराङ्गं यस्य माहेन्द्रं हिंस्यते नवकर्मणि ॥ ६२ ॥

इन्द्रं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
गृहक्षतस्य द्वाराङ्गे पूजयेद् यममेव त(त्?म्) ॥ ६३ ॥

पुष्पदन्तस्य द्वाराङ्गे वरुणं तत्र पूजयेत् ।
द्वाराङ्गं यस्य भल्लाटं हिंस्यते नवकर्मणि ॥ ६४ ॥

---

१. 'स्त्विमाः कि', ख. ग. पाठः । २. 'प्रतिमान', क. पाठः । ३. 'धनैश्च व' ख. ग. पाठः । ४. 'तथाचरेत' क. ग. पाठः । ५. 'आ' ख. पाठः । ६. यहानिः, ७. 'कर्म तत्' ख. ग. पाठः । ८. 'न्द्रे' क. पाठः ९. 'त्वा' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सोमं तत्र यजेद् देवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
सुखी भवति कृत्वैवं कुटुम्बी शान्तिकं[1] च तत् ॥ ६५ ॥

स्थूणाराजस्य यस्याग्रं वक्रं दक्षिणतो भवेत् ।
शरीरं व्यथते तत्र प्रतिसंवत्सरं स्थिरम्[2] ॥ ६६ ॥

पृष्ठतो दीर्घशोकः स्यादुत्तरेण धनक्षयः ।
पूर्वतो राजदण्डः स्यात् तस्मात् तद् ऋजु शस्यते ॥ ६७ ॥

चत्वार्यङ्गानि हिंस्यन्ते शरीरा ये च वेश्मनः ।
तुला वा पृष्ठवंशो वा धार(ण्यां?णी)चोत्त[3]राम्बरः ॥ ६८ ॥

उक्तांस्तत्र बलीन् कुर्यात् प्रायश्चित्तं तथाचरेत् ।
एवं धन्यं शिवं पुष्टिप्रजावृद्धिकरं भवेत् ॥ ६९ ॥

इत्थं निमित्तानि गृहाश्रितानि
ज्ञात्वा प्रदृ[4]ष्टान् शकुनांश्च सर्वान् ।
शान्तिं प्रकुर्वन् पृथगुक्तरूपां
प्राप्नोति कीर्त्तिं सुखमर्थमायुः ॥ ७० ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
शान्तिकर्मविधिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वारभङ्गफलं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

यदत्र नवकर्मोक्तं तद् यज्ञेषु गृहेषु च ।
ज्ञेयं ग्रामे पुरे वापि नगरे पत्तने तथा ॥ १ ॥

संस्थानमाकृतिर्मानं ह्रासवृद्धी च बाहुषु ।
एकमेव विजानीयात् सर्वत्रैव विचक्षणः ॥ २ ॥

यूपस्यैव निमित्तानि दारुकर्मणि निर्दिशेत् ।
पातं पते विजानीयात् तक्षणं तक्षणेन च ॥ ३ ॥

---

१. 'कर्म त' ख, 'कर्मवित्' ग. पाठः । २. 'ते ।' क. पाठः । ३. 'थोत्त' ख. ग. पाठः । ४. 'ह्व' क. पाठः । ५. 'सं' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

यूपोच्छ्रायमिव ब्रूयाद् दारूणामपि चोच्छ्रयम् ।
भङ्गेन भङ्गो नि(र्दि?र्द्दे)श्यः समाधिश्च समाधिना ॥ ४ ॥

नवकर्मणि यत् स्निग्धं सुगन्धि प्रियदर्शनम् ।
गम्येद्दरं(?) मनुष्याणां धन्यं तदभिनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥

पुरं वा यदि वा ग्रामो गृहं वा यदि निष्प्रभम् ।
आयासबहुलं तद्धि तादृशैर्लक्षणैर्भवेत् ॥ ६ ॥

परिध्वस्तोपमं रूक्षं नवकर्मणि यद् भवेत् ।
भ्रमं रोगं च शोकं च तस्मिन् वेश्मनि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

जनेन च यदाकीर्णं निश्छायमिव ल(क्ष?क्ष्य)ते ।
कुटुम्बी तत्र षण्मासान् नात्र जीवेन्न संशयः ॥ ८ ॥

यच्छून्यमप्यशून्याभं वेश्म वा यदि वा पुरम् ।
सर्वकामगुणैर्युक्तं ध(नं?न्यं) तदभिनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

पूर्वो नगरभागश्चेद् रम्यः स्यात् प्रियदर्शनः ।
प्रियभार्या मनःस्वास्थ्यं धनं धान्यं च भूपतेः ॥ १० ॥

पूर्वदक्षिणभागश्चेत् पुरस्य प्रियदर्शनः ।
महद् यशस्तदाप्नोति राजा हेम च पुष्कलम् ॥ ११ ॥

पुरस्य दक्षिणो भागो यदा रम्यस्तदा भवेत् ।
राज्ञः सेनापतिप्राप्तिर्धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १२ ॥

रमणीयो यदा भागः पुरदक्षिणपश्चिमः ।
अर्थसंपत् तदा राज्ञः प्रजावृद्धिश्च जायते ॥ १३ ॥

पुरपश्चिमभागेन रमणीयेन पार्थिवः ।
पुत्रबान्धवधान्याढ्यः संप्राप्नोत्युन्नतिं पराम् ॥ १४ ॥

पश्चिमोत्तरभागे तु रमणीये नराधिपः ।
प्रेष्यैः पुत्रैर्वाहनैश्च वृद्धिमेत्युत्तरोत्तराम् ॥ १५ ॥

उत्तरे रमणीये तु पुरभागे नरेश्वरः ।
शत्रून् विजयते सर्वान् वर्धते च पुरोहितः ॥ १६ ॥

---

१. 'य', २. 'वान् धनवानाढ्यः' ख. ग. पाठः । ३. 'ति नरोत्तमः ।' क, 'त्युत्तरोत्तरः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

यदि पूर्वोत्तरो भागः पुरस्य प्रियदर्शनः ।
तत्राभ्युत्तरमानन्दं क्षिप्रं राज्ञो विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
निष्पन्नस्य पुरादेर्यो भागो न स्यान्मनोरमः ।
तस्य तस्यैव भागस्य परिहाणिं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥
नवे यदि पुरद्वारे कपाटं प्रविशीर्यते ।
स्त्रीनामधेयमन्यद् वा स्त्रीनाशं तद् विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
देवागारे पुरद्वारे प्राकाराट्टालकेषु च ।
हस्तिशालाश्वशालासु रथशाला(स्तऽस्व)थापि वा ॥ २० ॥
कोष्ठागारायुधागारे निमित्तं तु शुभाशुभम् ।
यदि किञ्चित् प्रदृश्येत राज्ञस्तदभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥
भग्नो यत्रोर्ध्ववंशस्य तत्र राजा विनश्यति ।
अर्गलापीलिकाकुञ्चीभङ्गे च नवकर्मणि ॥ २२ ॥
ग्रामे नश्यन्ति चैतानि तदा ग्रामो विनश्यति ।
दिगुत्थितं तु राष्ट्राणां गृहार्थेषु कुटुम्बिनाम् ॥ २३ ॥
नवकर्मणि यत्किञ्चिद् भज्यते यदि वा नमेत् ।
वि(ध्व)स्ते वा स्फुटे वापि कुटुम्बिमरणं ध्रुवम् ॥ २४ ॥
फलं सर्वनिमित्तेषु शुभं वा यदि वाशुभम् ।
संवत्सरं परं ग्राह्यं नवकर्मकृते गृहे ॥ २५ ॥
परिसंवत्सरान्ते च पुराणमिति निर्दिशेत् ।
तुम्बिका भज्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ २६ ॥
श्रेष्ठा तु महिला तत्र षड्भिर्मासैर्विनश्यति ।
एवमेव नवं यस्य सदनं तु विनश्यति ॥ २७ ॥
प्रेष्यदासादिविश्वासात् तद् विनाशयति ध्रुवम् ।
पृष्ठवंशो नवो यस्य नवकर्मणि भिद्यते ॥ २८ ॥

---

१. 'त् ॥ देवागारे पुरद्वारे पुन्नाम यदि भज्यते । तत्र राजा विनश्येत स्त्रीनाम यदि तत् स्त्रियः ॥ देवा', ख. ग. पाठः । २. 'पि' क. ३. 'शुञ्चीभ ख, 'शुञ्ची' ग. पाठः । ४. 'विथज्ञे वा' ख. ग. पाठः । ५. 'गुह्यका', ६. 'क्ष' क. पाठः । ७. 'सिविश्वास्यास्तद् विभासय' ख. ग. पाठः । ८. 'तं वि' क. पाठः । ९. 'भज्यते' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कुटुम्बी म्रियते तत्र गृहं संवत्सरात् परम् ।
प्रेष्याश्चात्र विनश्यन्ति दीयमाणे[1][2] विशेषतः ॥ २९ ॥
लुमासु भिद्यमानासु[3] कन्यामरणमादिशेत् ।
मुण्डकेषु विनष्टेषु सुहृदंस्य विनश्यति ॥ ३० ॥
अनुपूर्वेषु भिन्नेषु पुत्राणां मरणं ध्रुवम् ।
विपत्तौ मुण्डगोधानां माता तस्य विनश्यति ॥ ३१ ॥
नागपाशकभङ्गे तु भृत्यानां मरणं भवेत् ।
कपाटे भ्रातृमरणमर्गलायां स्त्रिया वधः ॥ ३२ ॥
सुतस्य चार्गलापार्श्वे विनष्टे मरणं भवेत् ।
द्वारबन्धे विनष्टे तु शीघ्रं कुर्यात् कुलक्षयम् ॥ ३३ ॥
इन्द्रकीलो दृढो यस्य भङ्गमायाति मूलतः ।
सपुत्रपशुवर्गस्य तस्य ब्रूयात् कुलक्षतिम् ॥ ३४ ॥
तोरणं भज्यते यस्य द्रव्यं तस्य विनश्यति ।
गृहभर्तुश्च मरणं त्रिदशैरवधारयेत् ॥ ३५ ॥
वास्तुमध्ये विनष्टे तु कुलवृद्धो विनश्यति ।
सोपानं भिद्यते यत्र नवकर्मणि निष्ठिते ॥ ३६ ॥
तस्य प्रेष्याश्च गावश्च हिरण्यं च विनश्यति ।
वेदिका भज्यते यस्य भार्या तस्य विनश्यति ॥ ३७ ॥
गवाक्षस्तु विनश्येत पट्टस्तम्भो[10]ऽपि वा दृढः ।
गजशुण्डाथ[11] भिन्नो[12]ऽश्वः कपोतालयथवा नवा ॥ ३८ ॥
स्थपनीपट्टिकाश्चैव[13] स्त्रीविनाशं तदादिशेत्[14] ।
विटङ्कस्य तुलाया वा भङ्गे जाते कथञ्चन ॥ ३९ ॥
शालास्तम्भस्य[15] वा नाशे भार्या तस्य विनश्यति ।
स्तम्भशीर्षं[16] यदि भ्रश्येत्[17] स्फुटेत् स्तम्भोऽपि वा दृढः ॥ ४० ॥

---

१. 'वी' ख. ग. पाठः । २. 'प्यमानो वि' क. पाठः । ३. 'भज्यमा', ४. 'त्त' ख. ग. पाठः । ५. 'षु', ६. 'व्य' क. पाठः । ७. 'ब्रूयात्', ८. 'यम्', ९. 'भज्यते', १०. 'पुटस्त' ख. ग. पाठः । ११. स्त्वंद्राथ' ख, 'स्वंड्यथ' ग. पाठः । १२. 'श्नश्च', १३. 'नै' ख. ग. पाठः । १४. 'भवेत्' क. पाठः । १५. 'मा' ख. पाठः । १६. 'र्षे', १७. 'छे', ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भज्यते प्रतिमोको वा स्वामिनस्तु वधो भवेत् ।
भङ्गे तु भङ्गवाहिन्याः कुलवृद्धवधो भवेत् ॥ ४१ ॥

आकाशतलके पुत्राः प्रतिच्छिन्ने कुटुम्बिनः ।
विनष्टे च विनश्यन्ति षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ ४२ ॥

प्रासादमण्डले भग्ने भग्नासु वलभीषु च ।
भार्या कुटुम्बिनस्तस्य नाशमायात्यसंशयः ॥ ४३ ॥

प्रलीनो वा विलीनो वा प्रासादो यस्य भज्यते ।
प्रलीने भृत्यमृत्युः स्याद् विलीने तु धनक्षयः ॥ ४४ ॥

मिश्रे[1] विनष्टे प्रासादे हीयन्ते[2] सर्ववृद्धयः[3] ।
मरणं वा भवेत् तत्र कुष्ठव्याधिं[4] च निर्दिशेत् ॥ ४५ ॥

येषु स्थानेषु भङ्गो वा विनतिर्वा[5] प्रकीर्तिता ।
उपद्रुतिर्विघातो वा तेषां[6] फलमपीरितम् ॥ ४६ ॥

स्निग्धानि यदि दृश्यन्ते तानि दार्ढ्यान्वितानि च ।
धनमायुश्च हर्षं च पूर्वोक्तानां तदादिशेत् ॥ ४७ ॥

कर्णिकाभ्यन्तरी स्थूणा शालापादोऽथ हीयते ।
यदि तद् दुःखमाप्नोति गृहभर्ता न संशयः ॥ ४८ ॥

संप्रधार्य च मेधावी बलाबलमतन्द्रितः ।
निर्दिशन्[7] बलमाप्नोति धनमायुर्यशस्तथा ॥ ४९ ॥

एवमादिकनिमित्तसूचितं संप्रधार्य मतिमान बलाबलम् ।
स्पष्टमादिशति योऽत्र शास्त्रवित् कीर्तिवित्त(+ध?भव)[8]नानि सोऽश्नुते ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
द्वारभङ्गफलं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

स्थापत्यमुच्यतेऽस्माभिरिदानीं प्रक्रमागतम् ।
ज्ञातेन येन ज्ञायन्ते स्थपतीनां गुणागुणाः ॥ १ ॥

१. 'श्रे' क. पाठः । २. 'यते', ३. 'वृद्धिदः' ख. ग. पाठः । ४. 'वि' क. पाठः । ५. 'तः' क. ख. ग. पाठः । ६. 'ये' ख. ग. पाठः । ७. 'श्यनश्च', ८. 'ननानि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

शास्त्रं कर्म तथा प्रज्ञा शीलं च क्रिययान्वितम्।
लक्ष्यलक्षणयुक्तार्थशास्त्रनिष्ठो नरो भवेत् ॥ २ ॥

सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च।
सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥ ३ ॥

एतान्यङ्गानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान्।
शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ ४ ॥

प्रसिद्धशास्त्रदृष्टान्तैर्वास्तुज्ञानं प्रसाधयेत्।
वास्तुनः ससिरावंशैर्मर्मवेधैः सुनिश्चितैः ॥ ५ ॥

वास्तुद्वारक्षणान् भूयः सर्वान् जानाति शास्त्रतः।
यस्तु शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्ता स्थपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥

हन्तव्यः स स्वयं राज्ञा मृत्युवद् राजहिंसकः।
मिथ्याज्ञानादहङ्कारी शास्त्रे चैवाकृतश्रमः ॥ ७ ॥

अकालमृत्युर्लोकस्य विचरेद् वसुधातले।
यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ॥ ८ ॥

स मुह्यति क्रियाकाले दृष्ट्वा भीरुरिवाहवम्।
केवलं कर्म यो वेत्ति शास्त्रार्थं नाधिगच्छति ॥ ९ ॥

सोऽचक्षुरिव नीयेत विवशोऽन्येन वर्त्मसु।
कर्म वास्तुविधेः स्थानं मानमुन्मानमेव च ॥ १० ॥

क्षेत्रजा(ति?नि) च कर्माणि लुमालेखा(च?श्च)तुर्दश।
च(त्वा?तु)रो गण्डिकाच्छेदान् वृत्तच्छेदेषु सप्तसु ॥ ११ ॥

सुश्लिष्टं सन्धिसन्धानैरधरोत्तरसंयुतम्।
बाह्यरेखान्वितं शुद्धं यो जानाति स कर्मवित् ॥ १२ ॥

शास्त्रकर्मसमर्थोऽपि स्थपतिः प्रज्ञया विना।
फलेयुः कर्मभिरन्याभिः(?) स्यान्निर्मद इव द्विपः ॥ १३ ॥

---

१. 'वित्तो न', २. 'शल्यं य', ३. 'णेन च', ४. 'वे' ख. ग. पाठः। ५. 'ल्पे' ख. पाठः। ६. 'ष्ठि' क. पाठः। ७. 'दा वृ' ख. ग. पाठः। ८. 'च्छा' क. ख. ग. पाठः। ९. 'ण्य' ख. ग. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रत्युत्पन्नमतिर्यः स्याद् वाहं(तः?कः) स्थपतिस्तथा ।
कर्मकाले न मुह्येत् स प्रज्ञानेनोपबृंहितः ॥ १४ ॥

अप्रज्ञेयं दुरालोकं गूढार्थं बहुविस्तरम् ।
प्रज्ञापोतं समारुह्य प्राज्ञो वास्तुनिरं(?) तरेत् ॥ १५ ॥

ज्ञानवांश्च तथा वाग्मी कर्मस्वपि च निष्ठितः ।
एवं युक्तोऽपि न श्रेयान् यदि शीलविवर्जितः ॥ १६ ॥

रोषाद् द्वेषात् तथा लोभान्मोहाद् रागात् तथैव च ।
अन्यचिन्त्यत्वमायाति दुःशीलानामविक्षयात्(?) ॥ १७ ॥

शीलवान् पूजितो लोके शीलवान् साधुसम्मतः ।
शीलवान् सर्वकर्मार्हः शीलवान् प्रियदर्शनः ॥ १८ ॥

शीलाधाने परं यत्नमा(धि?ति)ष्ठेत् स्थपतिः सदा ।
ततः कर्माणि सिध्यन्ति जनयन्ति शुभानि च ॥ १९ ॥

तथाचाष्टविधं कर्म ज्ञेयं स्थपतिना सदा ।
आलेख्यं लेख्यजातं च दारुकर्म चयस्तथा ॥ २० ॥

पाषाणसिद्धहेम्नां च शिल्पं कर्म तथैव च ।
एभिर्गुणैः समायुक्तः स्थपतिर्याति पूज्यताम् ॥ २१ ॥

स्थापत्यमङ्गैरिदमष्टभिर्यश्चतुर्विधं वेत्ति विशुद्धबुद्धिः ।
स शिल्पिनां संसदि लब्धपूजः परां प्रतिष्ठां लभते चिरायुः ॥ २२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

स्थपतिलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'ह्य' ख. पाठः । २. 'स्तुर्ननाचरे' ख. ग. पाठः । ३. 'वी' क. पाठः । ४. 'ल' ख. ग. पाठः । ५. 'वेध्वे स्थ' ग. पाठः । ६. 'त्त', क. पाठः । ७. 'कल्पे धर्म' ख. ग. पाठः । ८. 'य' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ अष्टाङ्गलक्षणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

प्रोक्तं चतुर्धा स्थापत्यं वास्तुतत्त्वस्य सिद्धये ।
ब्रूमस्तदेव चेदानीमङ्गैः संयुक्तमष्टभिः ॥ १ ॥

तेष्वङ्गं प्रथमं प्रोक्तं वास्तुपुंसो विकल्पना ।
पुरस्य विनिवेशस्तु द्वितीयं द्वारकर्म च ॥ २ ॥

रथ्याविभागः प्राकारनिवेशोऽट्टालकस्य च ।
विनिवेशः प्रतोलीनां विभागस्थानकानि च ॥ ३ ॥

प्रासादश्च तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु ध्वजोच्छ्रितिः ।
पञ्चमं नृपतेर्वेश्म स्थानान्तरविभक्ति च ॥ ४ ॥

चातुर्वर्ण्यविभागश्च गृहभागश्च षष्ठकम् ।
सप्तमं यजमानस्य शालायां मानमीरितम् ॥ ५ ॥

यज्ञवेदीप्रमाणं च कोटिहोमविधिस्तथा ।
अष्टमं राजशिबिरनिवेशो दुर्गकर्म च ॥ ६ ॥

यो वेत्त्यङ्गान्यमून्यष्टौ सोऽत्र स्थपतिसत्तमः ।
यशो मानं स लभते पूज्यते च नराधिपैः ॥ ७ ॥

अशास्त्रज्ञमकर्मज्ञं स्थपतिं यः प्रयोजयेत् ।
न तस्य वास्तु सिध्येत सिद्धमप्यसुखावहम् ॥ ८ ॥

तस्मात् कर्म च शास्त्रं च यो वेत्ति द्वितयं नरः ।
अष्टाङ्गमपि यो वेत्ति स राज्ञः स्थपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥

अङ्गानि पूर्वमुक्तानि वास्तुशास्त्रोक्तविस्तरात् ।
तेषु प्रासादिकं यत् तद् वक्ष्यामोऽग्रे सविस्तरम् ॥ १० ॥

अथाङ्गं सप्तमं ब्रूमो यत् तद् यज्ञेषु युज्यते ।
विनिविष्टे पुरे पूर्वं क्लृप्तेषु सुरधामसु ॥ ११ ॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां यज्ञार्थं मापयेद् भुवम् ।
निवेशं तत्र कुर्वीत चतुरश्रं समन्ततः ॥ १२ ॥

१. 'त्त्येतान्य' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

आयामेन विधातव्यो हस्ताष्टादशविस्तृतः ।
पूर्वद्वारं विधातव्यमादित्यस्य पदे बुधैः ॥ १३ ॥

तस्य पश्चिमभागे तु यजमानकुटी भवेत् ।
षोडशायामविस्तारा प्राङ्मुखी सा प्रशस्यते ॥ १४ ॥

यजमानकुटीद्वारे देवता या च कीर्तिता ।
ततः प्रभृति पूर्वेण प्राग्वंशं परिकल्पयेत् ॥ १५ ॥

वेदिमध्ये स्थितं तत् स्यान्मानं वेद्याश्च शस्यते ।
पूर्वापरेण षट्त्रिंशत् कर्तव्याः प्रक्रमा बुधैः ॥ १६ ॥

एकत्रिंशत् कुटीभागे मध्येऽष्टादश कल्पयेत् ।
प्रक्रमाः स्युः शिरस्थाने विंशतिश्चतुरुत्तरा ॥ १७ ॥

पुरुषस्य शिरस्तत्र प्राग्वंशे तु प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात् पूर्वोत्तरं ज्ञेयं सर्वयज्ञेषु पूजितम् ॥ १८ ॥

वेद्यन्तरं तु कर्तव्यं शकटं येन गच्छति ।
तस्मादुत्तरवेदी या कार्या प्रत्युत्तरेण तु ॥ १९ ॥

द्विहस्तायामविस्तारो होमश्चेष्टः कृतोऽत्र हि ।
प्राग्दक्षिणेन संस्थानं यजमानस्य शस्यते ॥ २० ॥

कटिमात्रं सदा कार्यं नाभिमात्रमथापि वा ।
ततोऽधिकेन दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च जायते ॥ २१ ॥

एषा यज्ञक्रिया प्रोक्ता कोटिहोमोऽथ वक्ष्यते ।
पुरस्याभ्यन्तरे भागे हुताशस्य पदे तथा ॥ २२ ॥

तस्मिन् स्थाने विधातव्यः कोटिहोमः सदा पुरे ।
लक्षहोमश्च कर्तव्यो नित्यो नैमित्तिकोऽपि वा ॥ २३ ॥

अथ भूमिवशात् स्थानं कदाचिन्नैव लभ्यते ।
सर्वतो ब्रह्मणः स्थानाद्धोमस्थानं निवेशयेत् ॥ २४ ॥

ऐशानीं दिशमाश्रित्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
पुरश्चरणतत्त्वज्ञैः षट्कर्मनिरतैः सदा ॥ २५ ॥

---

१. 'प्रतिक' क. पाठः । २. 'कथ्यते', ३. 'रो' क. ख. ग. पाठः ।
४. 'राः' क, ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नित्यं शान्तिपरैर्विप्रै राजा तु विजयी भवेत् ।
नोपसर्गास्तु जायन्ते नच लक्ष्मीः पुरं त्यजेत् ॥ २६ ॥

अनावृष्टिभयं नास्ति सुभिक्षं जायते सदा ।
उक्तं याज्ञिकमङ्गं तु सर्वाङ्गेभ्यः प्रशस्यते ॥ २७ ॥

सर्वं स्थपतिना ज्ञेयं तत्त्वज्ञैर्ब्राह्मणैः सह ।
एकाशीतिपदेनैव यज्ञभूमिं तु मापयेत् ॥ २८ ॥

निवेशं शिविरस्याथ कथयामोऽङ्गमष्टमम् ।
यदा तु नृपतिः स्थानात् स्याद् यात्राभिमुखो भवेत् ॥ २९ ॥

शिविरस्य निवेशं च तत्त्ववेत्ता परीक्षयेत् ।
अर्थशास्त्रविधिज्ञो वा स्थपतिर्वा प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥

शिविरं चतुरश्रं स्याद् वृत्तं वृत्तायतं क्वचित् ।
चतुरश्रायतं वापि विषमं वा क्वचिद् भवेत् ॥ ३१ ॥

भूमिभागवशात् क(ल्पं?ल्प्यं)महारथ्योभयान्वितम् ।
शिविरस्य तु चत्वारि कुर्याद् द्वाराणि यत्नतः ॥ ३२ ॥

रथ्या सार्धा तु सेनायाः पुररथ्याप्रमाणतः ।
मित्रे स्थानं नरपतेः कार्यं पृथ्वीधरेऽपि वा ॥ ३३ ॥

आर्यम्णे वा विधातव्यं पदे वैवस्व(तो?ते)ऽथवा ।
निवेशो मन्त्रिणां कार्यः पश्चि(मो?मे) राजवेश्मनः ॥ ३४ ॥

पुरोहितस्योत्तरतो बलाध्यक्षस्य पूर्वतः ।
अन्तःपुरं दक्षिणतो भाण्डागारं तथैव च ॥ ३५ ॥

गृहं प्रविशतो राज्ञो न्यस्येद् दक्षिणतो हयान् ।
वामे च दन्तिनो न्यस्येदेवं सैन्यं निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

बाह्यतः परिखां तस्य कारयेद् राजवेश्मनः ।
हस्तांस्त्रींश्चतुरो वापि पञ्चहस्तानथापि वा ॥ ३७ ॥

चतुष्षष्टिपदाख्येन विभाज्यं शिविरं बुधैः ।
निवेशः शिबिरस्योक्तो दुर्गकर्माथ कथ्यते ॥ ३८ ॥

---

१. 'वे' क. ख. ग. पाठः । २. 'शि', ३. 'ज्यं' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

दुर्गं तु षड्विधं प्रोक्तं राज्ञां तु विजिगीषताम् ।
अब्दुर्गं पङ्कदुर्गं वा वनदुर्गं[1]रिणं तथा ॥ ३९ ॥

पार्वतीयं[2] म[3]हादुर्गमिति कल्प्यानि पार्थिवैः ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां पार्वतीयं प्रशस्यते ॥ ४० ॥

दुर्गस्थानविभागोऽत्र षोडशांशेन कीर्तितः ।
मध्ये तु ब्रह्मणः स्थानमसम्बाधं विधीयते ॥ ४१ ॥

ब्रह्मस्थानं समारभ्य हर्म्यं[4] पञ्चशयाः स्मृताः ।
उपरथ्या त्रिहस्ता तु शेषास्तु द्विशयाः स्मृताः ॥ ४२ ॥

सन्निकृष्टा विधातव्या दु(र्गा?र्गे)रथ्या समन्ततः ।
द्वारं रथ्याप्रमाणेन कार्यं नात्यन्तमुच्छ्रितम् ॥ ४३ ॥

परचक्रसमं बाधं(?) सुरक्षं तत् सदा भवेत् ।
दुर्गेश्वरगृहस्थानं ब्रह्मणः परितो भवेत् ॥ ४४ ॥

वैवस्वतेऽथवार्यम्णे मैत्रे पृथ्वीधरेऽपि वा ।
यथा पुरे पुरा प्रोक्तं स्थानं दुर्गेऽपि तत् तथा ॥ ४५ ॥

वीराः शुभा ह्यदोषाश्च भूमिपालस्य संमताः ।
धनुर्वेदविधिज्ञाश्च कृतास्त्राः शास्त्रपारगाः ॥ ४६ ॥

दुर्गे स्थाप्याः सुरूपाश्च बहवश्च वरस्त्रियः ।
अन्तःपुरं च कोशं च कुमारांश्चात्र वासयेत् ॥ ४७ ॥

एवं दुर्गविधानस्य समासोऽयमुदाहृतः ।
इत्यष्टाङ्गो वास्तुशास्त्रस्य सारः संक्षेपेण स्पष्टमस्माभिरुक्तः ।
यत्र ज्ञाते शिल्पिवृंद् वास्तुविद्यापाथोनाथं सन्तरन्त्यप्रयासात् ॥ ४८ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

अष्टाङ्गलक्षणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'णो' ग. पाठः । २. 'प', ३. 'यु', ४. 'र्थ' ख. ग. पाठः ।
५. 'वृद्धास्तु वि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ तोरणभङ्गादिशान्तिको नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरातनं नवं वापि कृतं वाथार्धनिर्मितम् ।
देवतानां नृपाणां[1] च तोरणं निपतेद् यदि[2] ॥ १ ॥

भज्यते दह्यते वाथ नमते सज्जतेऽथवा ।
दवविद्युज्जलाद्यैर्वा हन्यते तत् कदाचन ॥ २ ॥

तत्र दोषान् प्रवक्ष्यामो दोषप्रशमनानि च ।
तोरणं निपतेत् सर्वं शिरो वास्य कथञ्चन ॥ ३ ॥

राज्ञां सेनापतीनां च प्रतीहारपुरोधसाम् ।
प्रधानां[3]श्वगजानां च विप्रपौरजनस्य च ॥ ४ ॥

तत्र मृत्युभयं विद्याद् दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत् ।
तस्मात् प्रशमहेत्वर्थं विधिं कुर्यादिमं बुधः ॥ ५ ॥

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैर्धीरः[4] स्थपतिः सपुरोहितैः ।
रात्रौ होमबलिं कुर्यान्नगरे तु चतुर्दिशम् ॥ ६ ॥

कर्णचत्वरशृङ्गाटेष्ववनीपालवेश्मनि ।
स्थानेष्वेतेषु विप्राद्यैर्वेदिं निष्पाद्य साक्षताम् ॥ ॥ ७ ॥

कलशैर्द्रव्यगन्धैश्च श्वेतमाल्याम्बरैर्वृताम् ।
तत्र होमं प्रकुर्वीत शान्तिकं बलिमेव च ॥ ८ ॥

एवं प्रशमयेत् सर्वं यत्किञ्चिद् दुरितोत्थितम् ।
तोरणं भज्यते चेत् तद्राष्ट्रभङ्गं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

अस्य प्रशमहेत्वर्थं पूर्वोक्तं कारयेद् विधिम् ।
तदेवैकं[5] प्रदह्येत तोरणं नगरे[6](यौ?य)दि ॥ १० ॥

तदा वह्निभयं ब्रूयाद् राष्ट्रस्य नगरस्य च ।
सबाह्याभ्यन्तरं विप्रैर्विधिमेनं प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

---

१. 'ऋषीणां च' ख. ग. पाठः । २. 'पत्यते य' क, नृपतेर्यदि' ग. पाठः । ३. 'नानां ग' ख. ग. पाठः । ४. 'वीं' । ५. 'तदा चैकं' क. पाठः । ६. 'रै'. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नते वा शीर्णभग्ने वा व्याधिपीडां विनिर्दिशेत् ।
होमं बलिं च कुर्वीत पुनःसंस्कारमस्य च ॥ १२ ॥

वातेन विद्युता वापि तोरणं यदि भज्यते ।
तस्मिन् रोगाः प्रवर्तन्ते कुलपीडाधनक्षयाः ॥ १३ ॥

शान्तिकर्म प्रकुर्वीत ततः शान्तिकरं भवेत् ।
एवमादौ कृते पश्चात् पुनः संस्कारयेद् बुधः ॥ १४ ॥

पूर्वावयवनिर्माणाद् विशिष्टं रचयेत् पुनः ।
दृढसन्धिनिगूढं च दृढद्रव्यसमन्वितम् ॥ १५ ॥

विविधं रूपकर्माढ्यं सुसंस्थानं मनोरमम् ।
अकुब्जमनतं चैव पूर्वोत्कृष्टतरं तथा ॥ १६ ॥

नियुक्ते तु पुनः शान्तिं ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।
पुराणे वा नवे वाथ कृते वार्धकृतेऽथवा ॥ १७ ॥

प्रासादे वा गृहे वापि कपोतः प्रविशेद् यदि ।
तत्र दोषाः प्रपद्यन्ते शान्तिकर्म तथैव च ॥ १८ ॥

कालमूर्तिः कपोतश्च पापमूलकरण्डकम् ।
विहङ्गापशदो हीनः कृष्णचारी विहङ्गमः ॥ १९ ॥

चतुर्विधः समाख्यातो मुनिभिः स तपोधनैः ।
श्वेतो विचित्रकण्ठश्च विचित्रोऽन्योऽथ कृष्णकः ॥ २० ॥

कपोतो भवने यस्य श्वेतवर्णो विशेत् क्वचित् ।
कीर्तिविद्याधनं पुण्यं शीघ्रं च नयते क्षयम् ॥ २१ ॥

नित्यं रोगाः प्रवर्धन्ते शिशुपीडा च जायते ।
चित्रकण्ठो हरेज्जायां पुत्रान् सर्वान् विचित्रकः ॥ २२ ॥

सर्वाः सिद्धीश्च कृष्णाङ्गः प्रदुष्यं च कुलं हरेत् ।
रोगाः सर्वेऽपि वर्धन्ते विपदो व्यसनानि च ॥ २३ ॥

बन्धनानि च जायन्ते प्रविष्टे तु कपोतके ।
तस्माद् यत्नपरो भूत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २४ ॥

---

१. 'यः' क. ग. पाठः । २. 'दृढं' ख. ग. पाठः । ३. 'न' ग. पाठः । ४. 'कलिसूत्रं क' क. पाठः । ५. 'द्यु' क. पाठः । ६. 'ध्यं' ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्नातस्त्रिकालशुद्धात्मा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
देवपूजार्चनरतो नित्यं दानपरः शुचिः ॥ २५ ॥

यवान्नप्रायभोजी च नित्यं होमपरायणः ।
गुरुविप्ररतश्चैव श्वेतमाल्याम्बरस्तथा ॥ २६ ॥

गृही सगृहिणीकस्तु व्रतमेतत् समाचरेत् ।
श्वेतके पञ्चरात्रं च चित्रकण्ठे दशैव तत् ॥ २७ ॥

चित्रे पञ्चदशाहानि कृष्णे दिवसविंशतिः ।
व्रतस्थेन तु कर्तव्यमग्निकार्यं मनोरमम् ॥ २८ ॥

यथालाभं समादाय तस्य देहं सपिच्छकम् ।
निकृन्तेत् खण्डखण्डानि विभागाष्टशतानि तम् ॥ २९ ॥

घृतप्लुतानि पुण्यानि मधुलाजान्वितानि च ।
पञ्चवारुणसंज्ञेन वह्निकार्ये कृतेऽक्षतैः ॥ ३० ॥

ततश्च मांसं जुहुयाद्धव्यपात्रेण मन्त्रवित् ।
हुते कव्ये ततः क्षीरं दधि मध्वाज्यमेव च ॥ ३१ ॥

संपूजयेद् ग्रहान् सर्वान् ब्राह्मणान् वाचयेत् ततः ।
स्ववित्तपादं श्वेते तु विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३२ ॥

वित्तार्धं चित्रकण्ठे तु पादोनं सर्वचित्रके
कृष्णे सर्वधनत्यागः कर्तव्यो ब्राह्मणात् पुनः ॥ ३३ ॥

एवं शान्तिर्भवेद् गेहे सर्वदोषक्षयावहा ।
महतीं श्रियमाप्नोति धनलाभश्च जायते ॥ ३४ ॥

पुत्रैः पौत्रैर्वृद्धिमाप्नोत्यनन्तामायुर्दीर्घं प्राप्नुयात् संयतात्मा ।
एतत् कृत्वा मुच्यते सर्वपापैर्मेघैर्यद्वच्छारदः शीतरश्मिः ॥ ३५ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

तोरणभङ्गकपोतप्रवेशशान्तिको नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'था' ग. पाठः । २. 'तत्' क, 'ते' ग. पाठः । ३. 'ताक्षतानि पुष्पाणि म' ख. ग. पाठः । ४. 'गान् पु', ५. 'मि' ६. 'पहः' क. पाठः । ७. 'यु' क. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अथ वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

वेद्यश्चतस्रो विज्ञेया याः पुरा ब्रह्मणोदिताः ।
वयं ताः संप्रवक्ष्यामो नामसंस्थानमानतः ॥ १ ॥

प्रथमा चतुरश्रा स्यात् सभद्रा च द्वितीयका ।
तृतीया श्रीधरी नाम चतुर्थी पद्मिनी स्मृता ॥ २ ॥

यज्ञकाले तथोद्वाहे देवतास्थापनेषु च ।
नीराजनेषु सर्वेषु वह्निहोमे च नित्यशः ॥ ३ ॥

नृपाभिषेचने चैव शक्रध्वजनिवेशने ।
नृपयोग्या भवन्त्येता वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४ ॥

चतुरश्रा तु या वेदी नवहस्ता समन्ततः ।
अष्टहस्ता प्रमाणेन सर्वभद्रा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

श्रीधरी सप्त विज्ञेया हस्तान्[२] मानेन वेदिका ।
षड्ढस्ता चैव शास्त्रज्ञैर्नलिनीह विधीयते ॥ ६ ॥

चतुरश्रा तु कर्तव्या चतुरश्रा समन्ततः ।
भद्रैस्तु सर्वतोभद्रा भूषणीया चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

श्रीधरी चापि विज्ञेया कोणविंशतिसंयुता
नलिनीति च विज्ञेया पद्मसंस्थानधारिणी ॥ ८ ॥

कर्तव्या[३]ः स्वस्वविस्तारादुच्छ्रयेण त्रिभागिका[४]ः ।
कुर्यान्मन्त्रवतीभिस्ता इष्टकाभिस्तु चा(य?यि)ताः ॥ ९ ॥

चतुरश्रा यज्ञकाले विवाहे श्रीधरी स्मृता ।
देवतास्थापने वेदीं सर्वभद्रां निवेशयेत् ॥ १० ॥

नीराजने साग्निकार्ये तथा राजाभिषेचने ।
वेदी पद्मावती या च तथा शक्रध्वजोच्छ्रये ॥ ११ ॥

चतुर्मुखा तु कर्तव्या सोपानैश्च चतुर्दिशम् ।
प्रतीहारसमायुक्ता चार्धचन्द्रोपशोभिता ॥ १२ ॥

---

१. 'तासां प्र', २. स्तोन्मा', ३. 'व्या स्व', ४. 'का' क. पाठः। ५. 'काः'
ख. ग. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

चतुःस्तम्भसमायुक्ता चतुष्कुम्भविराजिता ।
काञ्चनै राजतैस्ताम्रैर्मृन्मयैः कलशैस्तथा ॥ १३ ॥

कोणेकोणे तु विन्यस्तैर्वस्त्रवानरभूषितैः ।
स्तम्भप्रमाणं वेदीनां कार्यं छाद्यवशेन च ॥ १४ ॥

एकेन द्वित्रिभिर्वापिच्छाद्यैः सामलसारिकैः ।
स्तम्भमूलानि चाभ्यज्य गुडेन मधुसर्पिषा ॥ १५ ॥

परमान्नेन वाभ्यज्य तान् विन्यस्येद् यथातथम् ।
देवताः पूजयित्वा तु ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ॥ १६ ॥

चतुर्विधमितीरितं यदिह वेदिकालक्षणं
समग्रमपि वर्तते मनसि यस्य तच्छिल्पिनः ।
स याति भुवि पूज्यतामवनिभोक्तुराप्नोति च
श्रियं स्थपतिसंसदि स्फुरति चास्य शुभ्रं यशः ॥ १७ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
वेदीलक्षणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अतः परं गृहादीनामप्रशस्तसमुच्छ्रितम् ।
क्रियते कथितं यस्मादेकत्र सुलभं भवेत् ॥ १ ॥

रक्षोम्बुनाथकीनाशमरुद्दहनदिक्प्लवा ।
मध्यप्लवा च भूर्व्याधिदारिद्र्यमरकावहा ॥ २ ॥

वह्निप्लवा वह्निभिये मृतये दक्षिणप्लवा ।
रुजे रक्षःप्लवा प्रत्यक्प्लवा धान्यधनच्छिदे ॥ ३ ॥

कलहाय प्रवासाय रोगाय च मरुत्प्लवा ।
मध्यप्लवा तु भूमिर्या सर्वनाशाय सा भवेत् ॥ ४ ॥

१. 'र' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

तुषास्थिकेश[1]कीटत्वं[2](क)शङ्खभस्मोषरान्विताम् ।
कर्पराङ्गारिणीं दुष्टसत्त्वानार्यजनां त्यजेत् ॥ ५ ॥

चैत्रे शोककरं वेश्म ज्येष्ठे मृत्युप्रदायकम् ।
पशुनाशनमाषाढे शून्यं भाद्रपदे कृतम् ॥ ६ ॥

[3]आश्विने कलहाय स्यात् कार्त्तिके भृत्यनाशनम् ।
माघे चाग्निभयाय स्यान्मासेष्वेषु न कारयेत् ॥ ७ ॥

पावकस्य पदे पृष्ठवंशस्यापि च पश्चिमे ।
पुरप्रासादकर्णे च कीलादि प्राक् प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

पूर्वपश्चिमदिङ्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकृद् भवेत् ।
उदङ्मूढं न निष्पत्तिं याति सर्वं च नाशयेत् ॥ ९ ॥

यत्तु दक्षिणदिङ्मूढं जायते मरणाय तत् ।
प्राग्वास्तुनि (तु) कुर्वीत प्रासादं मन्दिरं पुरे ॥ १० ॥

वलितं चलितं भ्रान्तं विसूत्रं च समुत्सृजेत् ।
यत् स्यान्मुखविनिष्क्रान्तं वलितं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ११ ॥

चलितं पृष्ठनिष्क्रान्तं दिङ्मूढं भ्रान्तमुच्यते ।
विसूत्रं कर्णहीनं स्यात् फलमेषां प्रचक्ष्महे ॥ १२ ॥

वलिते चलति स्थानं चलिते विग्रहो भवेत् ।
भ्रान्तं योषिद्विनाशाय विसूत्रं भूरिशत्रुकृत् ॥ १३ ॥

मूषकोत्करवल्मीकप्रान्ता वक्रा भुजङ्गवत् ।
छिन्ना भिन्ना विकर्णा च न वास्तुनि शुभा क्षितिः[4] ॥ १४ ॥

मूषकोत्करवत्यर्थं हन्ति वल्मीकिनी [5]सुतम् ।

विकर्णा कुरुते कर्णे रोगं[6] छिन्ना विनाशिनी ।
भिन्ना भेदं करोत्युर्वी कुटिला मतिवक्रताम् ॥ १५ ॥

सपादं सत्रिभागं वा सार्धं द्विगुणमेव च ।
यत् स्यान्मुखायतं वेश्म तदनिष्टफलप्रदम् ॥ १६ ॥

---

१. 'सी', २. 'त्वक्प्रभ' ख. ग. पाठः ३. 'अश्विन्ये क', ४. 'शुभम्' क. पाठः । ५. 'तूं' क. ग. पाठः । ६. 'गान्' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

यद् द्विशालं त्रिशालं वा चतुःशालमथापि वा ।
मूषया रहितं वेश्म तदनिष्टफलप्रदम् ॥ १७ ॥
पुरतः पृष्ठतः पार्श्वे यदि वालिन्दवर्जिता ।
गृहे न शस्यते शाला देवागारे तु शस्यते ॥ १८ ॥
अन्यपृष्ठस्थितद्वारं वेश्म खादकमुच्यते ।
परस्परविरोधाय तद् वेश्म गृहिणोस्तयोः ॥ १९ ॥
सशल्यं पादहीनं च समसन्धि शिरोगुरु[१] ।
वेश्मनामिदमुद्दिष्टं मर्मदोषचतुष्टयम् ॥ २० ॥
वास्तुक्षेत्रस्य यत्राङ्गे यस्य वर्त्म प्रवर्तते ।
तदङ्गं वास्तुनस्तस्यच्छिन्नं तेनेति निर्दिशेत् ॥ २१ ॥
छिन्नाङ्गं विकलं तत् स्याद् भीतिदं सर्वदोषकृत् ।
तद्भर्तुर्भज्यतेऽङ्गं तद् वेधस्तस्याफलोऽन्यथा ॥ २२ ॥
स्वगृहद्वयमध्येन निर्वाहो यदि वर्त्मनः ।
द्वारवेधोदितान् दोषांस्तदा प्राप्नोति निश्चितम् ॥ २३ ॥
मार्गश्चैको यदा गच्छेदुभयोर्गृहपार्श्वयोः ।
मार्गवेधस्तदा स स्याच्छोकसन्तापकारकः ॥ २४ ॥
उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च हीनबाहुस्तथापरः ।
प्रत्यक्षाय इति प्रोक्तं प्रवेशानां चतुष्टयम् ॥ २५ ॥
गृहस्य सम्मुखं यत्र द्वारं भवति वास्तुनः ।
उत्सङ्ग इति स[३] प्रोक्तः पूर्णबाहुः प्रदक्षिणः§ ॥ २६ ॥
वामतो हीनबाहुः स्यात् प्रत्य(क्षो वाऽक्षाय)स्तु पृष्ठतः ।
चतुर्थोऽयं समुद्दिष्टः प्रवेशो वास्तुनो बुधैः ॥ २७ ॥
उत्सङ्गाख्ये प्रवेशे स्यात् प्रजाहानिः कुटुम्बिनः ।
धनधान्यक्षयो वास्य मरणं वा ध्रुवं भवेत् ॥ २८ ॥
पूर्णबाहौ पुत्रपौत्रा धनधान्यसुखानि च ।
भवन्ति वसतो नित्यं गृहिणस्तत्र वास्तुनि ॥ २९ ॥

१. 'रुः' ख. ग. पाठः । २. 'य' क. पाठः । ३. 'सं', ४. 'सु', ५. 'स्युक्तो वा' ख. पाठः ।

§ 'पूर्णबाहुस्तु' दक्षिणे इति तु पाठो युक्तः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अल्पमित्रो गृही हीनवाङ्वित्यल्पबान्धवः ।
स्याद् वाल्पवित्तो जीयेत स्त्रीभिः पीड्येत वामयैः ॥ ३० ॥

प्रत्यक्षायप्रवेशस्तु विहितो यत्र वेश्मनि ।
तस्मिन् निवसतां पुंसां निश्चितः स्याद् धनक्षयः ॥ ३१ ॥

मूषास्वस्थानयुक्तासु शालाभेद इति स्मृतः ।
प्राप्नोति तत्र निवसन् मृत्युं दुःखं सरोगताम् ॥ ३२ ॥

उदग्दक्षिणशालासु पूर्वापरगतासु च ।
अन्यथा वा स्थितं द्वारं वधबन्धनकारकम् ॥ ३३ ॥

मूषागतान् भ्रमान् कुर्यान्न शालां प्रतिभेदयेत् ।
भ्रमभग्नासु शालासु विपद्यन्ते कुटुम्बिनः ॥ ३४ ॥

शालाभेदो भवेद् यत्र पृष्ठतः पार्श्वतोऽपि वा ।
धनधान्यक्षयस्तत्र गृहिणो जायते ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

यत्र प्रत्यङ्मुखे शाले गृहे तत् स्याद् विकोकिलम् ।
आयुश्चतुष्पदं धान्यं वसतां तत्र नश्यति ॥ ३६ ॥

सीमाशालाप्रभिन्नस्य प्रासादस्य गृहस्य च ।
अस्थिरा जायते ऋद्धिः स्थितिश्च न भवेच्चिरम् ॥ ३७ ॥

सर्वदोषकरी ज्ञेया गर्भे चन्द्रावलोकिता ।
मूषां विना विनाशाय कामोच्छित्त्यै गवाक्षकः ॥ ३८ ॥

यदा गण्डोऽथवा कुक्षिः पृष्ठं कक्षाथ भिद्यते ।
दारिद्र्यं जायते भर्तुस्तदानीमतिदुस्सहम् ॥ ३९ ॥

गर्भादुभयतो गण्डौ कक्षे स्तः कर्णभित्तिगे ।
दक्षिणोत्तरयोः कुक्षी पृष्ठतः पृष्ठमादिशेत् ॥ ४० ॥

स्थापितद्वारसंरोधे गृहिणो जायतेऽश्मरी ।
द्वारे तु विहिते तस्मिन्ननर्थस्तस्य जायते ॥ ४१ ॥

पूर्वद्वारनिरोधं तु नवमार्गे कदाचन (?) ।
श्रोत्ररोधेऽश्मरीदोषः कृतश्रोत्रेऽह्नि मन्थता (?) ॥ ४२ ॥

---

१. 'थ' ग. पाठः । २. 'कना' ख. ग. पाठः । ३. 'क्षौ' क. पाठः ।
४. 'न्य' ग. पाठः । ५. 'मंथता' ख. पाठः ।

कृत्यानि यत्र चीयन्ते गवाक्षालोकनानि च ।
तत्र प्रसूतिर्न भवेन्निष्पन्नापि विनश्यति ॥ ४३ ॥

चीयमाना यदा भित्तिर्दक्षिणा स्याद् बहिर्मुखी[3] ।
तदा व्याधिभयं विद्यान्नृपदण्डभयं तथा ॥ ४४ ॥

यदा तु पश्चिमं कुड्यं प्रयाति बहिरग्रतः ।
धनहानिं विजानीयाच्चौरेभ्यश्च भयं तदा ॥ ४५ ॥

उत्तरं तु यदा कुड्यं चीयमानं बहिर्व्रजेत् ।
गृहभर्तुश्च कर्तुश्च व्यसनं स्यात् तदा महत् ॥ ४६ ॥

यदाग्रं चीयमानायाः पूर्वभित्तेर्बहिर्व्रजेत् ।
तदा गृहपतेस्तीव्रं राजदण्डभयं भवेत् ॥ ४७ ॥

प्राग्दक्षिणो यदा कर्णश्चीयमानो बहिर्व्रजेत् ।
तत्राग्निभीतिरतुला संशयश्च प्रभोर्भवेत् ॥ ४८ ॥

बहिर्मुखो यदा गच्छेत् कर्णो दक्षिणपश्चिमः ।
कलहोपद्रवस्तत्र स्याद् भार्यायाश्च संशयः ॥ ४९ ॥

यत्रोत्तरापरः कर्णश्चीयमानो व्रजेद् बहिः ।
पुत्रवाहनभृत्यानां भवेत् तस्मिन्नुपद्रवः ॥ ५० ॥

यदा प्रागुत्तरः कर्णो बहिर्गच्छति वेश्मनः ।
तदा गवां वृषाणां च गुरूणां च क्षयो भवेत् ॥ ५१ ॥

चतस्रो भित्तयो यस्य बहिर्निर्यान्ति वेश्मनः ।
चीयमानास्तदत्रोक्तं मन्दिरं मल्लिकाकृति ॥ ५२ ॥

तादृग् गृहे न तत्रायो व्ययो भवति यादृशः[4] ।
कर्शितोऽस्यैव दोषेण तस्य भर्ता पलायते ॥ ५३ ॥

संक्षिप्यते तु यद् वेश्म चीयमानं समन्ततः ।
संक्षिप्तमिति तज्ज्ञेयं तत्र राजभयं भवेत् ॥ ५४ ॥

यत् स्यादन्तेषु संक्षिप्तं विस्तृतं चापि मध्यतः ।
मृदङ्गाकृतिसंस्थानं तत्र व्याधिभयं भवेत् ॥ ५५ ॥

---

१. 'ता' ख. पाठः । २. 'थी' क, 'वी' ख. पाठः । ३. 'खा' क. पाठः ।
४. 'सा' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

आद्यन्तविस्तृतं यत् स्यात् संक्षिप्तं चापि मध्यतः ।
मृदुमध्यं तदुद्दिष्टं क्षुद्भयं तत्र जायते ॥ ५६ ॥
विषमैरुन्नतैः कर्णैर्धनक्षयकरं गृहम् ।
भित्तिवच्चापि कर्णेषु प्रागुक्तं फलमादिशेत् ॥ ५७ ॥
मध्ये द्वारं न कर्तव्यं मनुजानां कथञ्चन ।
मध्ये द्वारे कृते तत्र कुलनाशः प्रजायते ॥ ५८ ॥
द्वारं द्वारेण वा विद्धमशुभायोपपद्यते ।
अनिष्टद्रव्यसंयुक्तं धनधान्यविनाशनम् ॥ ५९ ॥
नवं पुराणसंयुक्तमन्यं स्वामिनमिच्छति ।
अधोग्रं राजदण्डाय विद्धं[1] द्वारं विगर्हितम् ॥ ६० ॥
नवं पुराणसंयुक्तं द्रव्यं तु कलिकारकम् ।
न मिश्रजातिद्रव्योत्थं द्वारं वा वेश्म वा शुभम् ॥ ६१ ॥
गृहस्थानेषु यद् द्रव्यमधिवास्य प्रतिष्ठितम् ।
तच्चालनेन चलनं गृहभर्तुः प्रजायते ॥ ६२ ॥
अन्यवास्तुच्युतं द्रव्यमन्यवास्तौ[2] न योजयेत् ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही ॥ ६३ ॥
द्रव्येण देवदग्धेन भवनं यद् विधीयते ।
न तत्र वसति स्वामी वसन्नपि विनश्यति ॥ ६४ ॥
सूर्योद्भवा द्रुमच्छाया ध्वजच्छाया च गर्हिता ।
द्वारातिक्रमणादेताः क्षुद्व्याधिकलिकारकाः ॥ ६५ ॥
प्रासादशिखरच्छाया ध्वजच्छायेति कीर्तिता ।
त्रिपञ्चसप्तमी भर्तुर्गृहतारा न शोभना ॥ ६६ ॥
निम्नोन्नतं करालं च सम्मुखं पृष्ठदेशगम् ।
वामावर्तं च न शुभं द्वारमग्रतरं गृहे ॥ ६७ ॥
निम्ने स्यात् स्त्रीजितो भर्ता दुर्जनस्थितिरुन्नते ।
सम्मुखे सुतपीडा स्यात् पृष्ठगे चपलाः स्त्रियः ॥ ६८ ॥
वामे वित्तक्षयो द्वा(रि?रे) भवत्यग्रतरे प्रभोः ।
द्वारं तस्मान्न कर्तव्यमीदृग्रूपं विचक्षणैः ॥ ६९ ॥

१. 'द्ध' क, 'बं' ख. ग. पाठः । २. 'स्तुनि यो' क, ख, पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

नागदन्ततुलास्तम्भभित्तिमूषागवाक्षकाः ।
द्वारमध्ये न दातव्या न चैते विषमस्थिताः ॥ ७० ॥
इतिहासपुराणोक्तं वृत्तान्तप्रतिरूपकम् ।
निन्दितं च गृहे नेष्टं शस्तं देवकुलेषु तत् ॥ ७१ ॥
यानीन्द्रजालतुल्यानि यानि मिथ्याकृतानि च ।
भीषणानि च यानि स्युर्न कुर्यात् तानि वेश्मसु ॥ ७२ ॥
स्वयमुद्घाटितं द्वारमुच्चाटनकरं भवेत् ।
धनहृद् बन्धुवैरं स्यादथवा कलिकारकम् ॥ ७३ ॥
स्वयं यत् पिहितं द्वारं तद् भवेद् बहुदुःखदम् ।
सशब्दं भयकृत् पादशीतलं गर्भपातनम् ॥ ७४ ॥
द्रव्यं नाधोमुखं कार्यं प्रत्यग्याम्याननं नच ।
पश्चिमाग्रे परिक्लेशो दक्षिणाग्रे तु शून्यता ॥ ७५ ॥
स्तम्भद्वारं च भित्तिं च विपरीतं[1] न कारयेत् ।
अमीषां वैपरीत्येन दोषाः स्युर्बहवो नृणाम् ॥ ७६ ॥
मूलसूत्रानुसारेण कर्तव्या भूमिकोपरि ।
उपर्युपरि यद् वेश्मसमं[2] संतापकारकम् ७७ ॥
अधोभूमौ क्षणा ये स्युस्तत्समांश्चो[3]र्ध्वभूमिषु ।
परित्यजन्नपहितां[4] (?) न कुर्वीत यथोत्तरम् ॥ ७८ ॥
शाला निम्ना भवेद् यस्मिन्नलिन्दस्त्वधिको भवेत् ।
निधनं जायते तत्र सदा शोकभयानि च ॥ ७९ ॥
मूलद्वारानुसारेण द्वाराण्युपरिभूमिषु ।
कुर्याद् भयप्रदानि[5] स्युर्विहितान्यन्यथा पुनः ॥ ८० ॥
क्षुद्भयप्रदमाध्मा(नं?तं) कुब्जं कुलविनाशनम् ।
अत्यर्थं पीडितं पीडां करोत्यन्तर्नतं[6] क्षयम् ॥ ८१ ॥
प्रवासो बाह्यविनते दिग्भ्रान्ते दस्युतो भयम् ।
मूलद्वारं क्षयं कुर्याद् विद्धं द्वारान्तरेण यत् ॥ ८२ ॥

१. 'तां' क. पाठः । २. 'समस्तं ता' ख. ग. पाठः । ३. 'तू' ग. पाठः । ४. 'ताः' ख. ग. पाठः । ५. 'न' क. पाठः । ६. 'न्तं' क. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रवासो भृत्यजो द्वेषो विद्धे चत्वररथ्यया ।
नाशं द्रव्यं ध्वजाविद्धं वृक्षेण शिशुदूषकम् ॥ ८३ ॥
पङ्कविद्धे भवेच्छोकः सलिलस्राविणि व्ययः ।
कूपेन विद्धेऽपस्मारो विनाशो दैवतेन च ॥ ८४ ॥
स्तम्भेन दूषणं स्त्रीणां ब्रह्मणा तु कुलक्षयः ।
मानादभ्यधिके द्वारे राजतो जायते भयम् ॥ ८५ ॥
व्यसनं मानतो हीने चौरेभ्यश्च भयं भवेत् ।
व्याधयः श्वभ्रविद्धेन धनस्य च परिक्षयः ॥ ८६ ॥
देवध्वजेन बन्धः स्यात् सभयैश्वर्यसंक्षयः ।
सन्निपातभयं वाप्या तुल्या दृष्टत्वमाकृते(?) ॥ ८७ ॥
हृद्रुक् कुलालचक्रेण दारिद्र्यं वारिणा भवेत् ।
व्याधिरुर्क् † कचकूटेन आपाकेन (?) सुतक्षयः ॥ ८८ ॥
नि(श्रे?स्स्व)तोदूखलेन स्याच्छिलया चाश्मरी भवेत् ।
तोयभाण्डेन दुर्मन्त्री भस्मना चार्शसो गृही ॥ ८९ ॥
दारिद्र्यं छायया विद्धे भवेद् द्वारे कुटुम्बिनः ।
स्थलस्यन्दनवल्मीकैर्विदेशगमनं भवेत् ॥ ९० ॥
कृशं विकृतमत्युच्चं करालं शिथिलं पृथु ।
वक्रं विशालमुत्तानं (शू?स्थू)लाग्रं ह्रस्वकुक्षिकम् ॥ ९१ ॥
स्वपादचलितं ह्रस्वं हीनकर्णं मुखानतम् ।
पार्श्वगं सूत्रमार्गाच्च भ्रष्टं द्वारं न शोभनम् ॥ ९२ ॥
तत् करोति क्षयं घोरं विनाशं स्वामिसम्पदः ।
वसतां कलहं नित्यमतस्तत् परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥
अन्तर्द्वाराद् बहिर्द्वारं नोच्चं कुर्यान्न सङ्कटम् ।
उच्चं विसङ्कटं वापि तच्छिवाय न जायते ॥ ९४ ॥
पट्टसन्धिर्यदा मध्ये द्वारस्य स्यात् कथञ्चन ।
कर्तुस्तदा विनाशः स्यात् कुलस्य च परिक्षयः ॥ ९५ ॥

---

१. 'जा दोषा वि', २. 'श' ख. ग. पाठः । ३. 'द्र' ख, 'द्रष्टृत्व' ग. पाठः । ४. 'करच', ५. 'क्षि' क. पाठः । ६. 'लम्बकु' ख. पाठः ।

---

† कन्दकूटकमिति उपरि वक्ष्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

तुला उपतुला वास्युर्द्वारि तिर्यग् यदा कृताः ।
दारिद्र्यव्याधिसन्तापा भवन्ति स्वामिनस्तदा ॥ ९६ ॥

अनुवंशमनुप्राप्ता जयन्त्यो यदि मन्दिरे ।
वित्तायुषोस्तदाल्पत्वमनारोग्यं च जायते ॥ ९७ ॥

उदुम्बरे (वि)निहिता(नि?) ललाटी[1] नाम सा तुला ।
दूषणं मरणं वापि कन्यानां विदधाति सा ॥ ९८ ॥

उत्तराङ्गोदरे न्यस्ता ललाटेन समा यदि ।
तुला ललाटिका सापि कुलक्षयकरी भवेत् ॥ ९९ ॥

तुलापिण्डेन विन्यस्ता ज्ञेया यज्ञोपवीतिनी ।
वसतो व्यसनं कुर्यात् कुटुम्बस्यासुखं च सा ॥ १०० ॥

यदि भारतुलैकापि मध्ये विद्धा कथञ्चन ।
तदा वराङ्गं भज्येत धनं च परिहीयते ॥ १०१ ॥

भित्तिभेदो न कर्तव्यस्तुलाग्रैरखिलैरपि ।
कुर्याद् ब्रह्मपदन्यस्तो भारपट्टः कुलक्षयम् ॥ १०२ ॥

अयुक्तयोर्युक्तयोर्वा सन्धिश्चेद् भारपट्टगे[2] ।
सन्धौ स्यात् तत् सुतो ज्येष्ठः कर्तुश्चापि विनश्यति ॥ १०३ ॥

अनुवंशं न भुञ्जीत न शयीत कदाचन ।
भुञ्जानस्यार्थनाशः स्याच्छयानस्य महारुजः ॥ १०४ ॥

नाशोऽनुवंशं रोगाः स्युस्तिर्यक्स्थे रक्षसो भयम् ।
शयनागारविन्यस्ते मरणं नागदन्तके ॥ १०५ ॥

कर्णावात्[3](?) पक्षिराड्घण्टाध्वजच्छत्रकुमारकान् ।
सिंहकर्णकपोतालिं गृहेषु परिवर्जयेत् ॥ १०६ ॥

इन्द्रकीलं शुकं तुम्बीर्मध्र्यवंशं च वेश्मनि ।
न कुर्यात् तत्र विहिताः सर्वदोषावहा यतः ॥ १०७ ॥

अतिक्षिप्रचिरोत्पन्नं कृशद्रव्यमपोहितम् ।
अप्रतिष्ठितसंस्थानं गृहं नमति पञ्चधा ॥ १०८ ॥

---

१. 'भल्ला' ख. पाठः । २. 'गाः' क. पाठः । ३. 'र्णा' ख. पाठः ।
४. 'मूर्ध', ५. 'पाह' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

अतिस्थूलेन ह्रस्वेन शरीरेण यथा नरः ।
विरूपो दुर्बलश्चैव तथा द्रव्येण मन्दिरम् ॥ १०९ ॥
जीर्णं घुण(क्षि?क्ष)तं मिश्रं हीनं वक्रं विधिच्युतम् ।
चण्डं तुण्डं वक्रकोणं सन्धिविद्धाल्पमूलके ॥ ११० ॥
वज्रमध्यं स्थूलमूलं कुक्षिभिन्नं च दारु यत् ।
भिन्नमूलं कूर्मपृष्ठं पक्षहीनं च वर्जयेत् ॥ १११ ॥
पातितान् वर्जयेद् वृक्षान् द्विपाश्वाग्निजलानिलैः ।
प्रभूतपक्षिनिलयान् काककौशिकसेवितान् ॥ ११२ ॥
मधुग्रहपिशाचाहिदुष्टांश्चैत्यश्मशानजान् ।
चतुष्पथत्रिकमहानदीसङ्गममार्गजान् ॥ ११३ ॥
देवतायतनेजातानूर्ध्वशुष्कान्[1] क्षतच्छदान्[2] ।
वल्लीपिनद्धान् सुषिरकोटरग्रन्थिसङ्कुलान् ॥ ११४ ॥
याम्यापराशापतितांस्त्यजेत् कण्टकिनोऽपि च ।
कपित्थोदुम्बराश्वत्थशिरीषवटचम्पकान् ॥ ११५ ॥
कोविदारधवारिष्टश्लेष्मातकविभीतकान् ।
किञ्च सप्तच्छदक्षीरिफलदांश्च द्रुमांस्त्यजेत् ॥ ११६ ॥
मर्माणि यत्र पीड्यन्ते द्वारैर्भित्तिभिरेव वा ।
दारिद्र्यं कुलहानिं वा गृहिणस्तत्र निर्दिशेत् ॥ ११७ ॥
स्तम्भैर्विनश्यति स्वामी तुलाभिः स्त्रीवधो ध्रुवम् ।
सङ्ग्रहैर्बन्धुनाशः स्याज्जयन्तीभिः स्नुषावधः ॥ ११८ ॥
मर्मस्थानस्थितैः कायैर्भर्तुः कायो निपीड्यते ।
मर्मस्थैः सन्धिपालैस्तु सुहृद्भिश्लेषमादिशेत् ॥ ११९ ॥
गृहपीडा नागदन्तैर्नागपाशैर्धनक्षयः ।
कापिच्छकैस्तु प्रेष्याणां क्षयं मर्मस्थितैर्वदेत् ॥ १२० ॥
षड्दारुकान्यनुसरागवाक्षालोकनानि च ।
मर्मस्थानानिविष्टानि जनयन्ति महाभयम् ॥ १२१ ॥
स्तम्भैर्वा द्वारमध्यैर्वा तुलाभिर्नागपाशकैः ।
वातायनैर्नागदन्तैर्द्वारमध्ये निपीडिते ॥ १२२ ॥

१. 'गु' क. पाठः । २. 'च्छदावृतान्' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

व्याधयः संप्रवर्धन्ते धननाशः कुलक्षयः ।
राजदण्डभयं च स्यादपत्यानां च पीडनम् ॥ १२३ ॥

षड्दारुकाणां मध्येषु द्वारमध्येषु वा पुनः ।
कर्णद्रव्यादिभिर्विद्धेष्वेतदेवादिशेत् फलम् ॥ १२४ ॥

संविद्धा नागदन्तैर्या स्तम्भैर्वातायनैस्तथा ।
शय्या शस्त्राद् भयं भर्तुः कुर्यात् तस्करतोऽपि वा ॥ १२५ ॥

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यकोशविनाशनम् ।
आवहेत् कलहं भर्तुर्भार्यां वास्य प्रदूषयेत् ॥ १२६ ॥

द्रव्येणैकोत्तरेणापि महामर्मणि पीडिते ।
सर्वस्वनाशो गृहिणो मरणं वा ध्रुवं भवेत् ॥ १२७ ॥

द्वारस्तम्भतुलालिन्दै(श्चै?च)यदोषैः समीरितैः ।
विमुक्ते नागदन्तेऽपि तच्छून्यं जायते गृहम् ॥ १२८ ॥

विभागपदहीनेषु रूपस्थानेषु वास्तुषु ।
यक्षमातृक्रियाद्येषु रोगान्मृत्युर्न संशयः ॥ १२९ ॥

कटुकण्टकिदुर्गन्धिगुह्यकाद्याश्रयान् द्रुमान् ।
न धारयेत् समीपस्थान् पुरप्रासादवेश्मनाम् ॥ १३० ॥

बदरी कदली चैव दाडिमी बीजपूरिका ।
प्ररोहन्ति गृहे यत्र तद्गृहं न प्ररोहति ॥ १३१ ॥

द्रव्यं द्रव्याधिकं हन्ति कुलमायामतोऽधिकम् ।
उच्छ्रयाभ्यधिकं पूजां सन्ततिं विस्तराधिकम् ॥ १३२ ॥

स्तम्भाङ्गैर्भित्तिभिः पट्टैः शीर्षकैर्भवनैस्तथा ।
आलोकनातोरणाद्यैश्छाद्यकैः कन्दकूटकैः ॥ १३३ ॥

द्वारशाखोत्तमाङ्गैश्च तुलाभिः सन्धिपालकैः ।
अर्गलाद्यैर्वेदिकाभिर्व्यालैर्जालैश्च नूतनैः ॥ १३४ ॥

घातितैः पातितैर्न(ष्टैः?ष्टि)र्जायते गृहिणो ध्रुवम् ।
व्याधिदारिद्र्यदुःखार्तिर्निर्धनत्वं च जायते ॥ १३५ ॥

---

१. 'तु', २. 'वृ' क. ख. पाठः । ३. 'न्दै' क. पाठः । ४. 'स्व' ख. ग. पाठः । ५. 'कि' क. ख. ग. पाठः । ६. 'नः', ७. 'म' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

उच्चच्छाद्यं छिद्रगर्भं भ्रमितं वमितं[1] मुखे ।
हीनमध्यं नष्टसूत्रं[2] शल्यविद्धं[3] शिरोगुरु ॥ १३६ ॥

भ्रष्टालिन्दकशोभं च विषमस्थं तुलातलम्[4] ।
अन्योन्यद्रव्यविद्धं च कुंपदप्रविभाजितम् ॥ १३७ ॥

हीनभित्त्युत्तमाङ्गं च विनष्टं स्तम्भभित्तिकम् ।
भिन्नशालं त्यक्तकण्ठं निष्कन्दं मानवर्जितम् ॥ १३८ ॥

विकृतं च गृहं भर्तुरनिष्टफलदायकम् ।
तस्माद् दोषानिमांस्त्यक्त्वा गृहं कुर्याच्छुभावहम् ॥ १३९ ॥

एवंविधं दोषकरं गृहं स्याद् भर्तुश्च कर्तुश्च यतस्तदेते ।
ज्ञेयाः सदा शिल्पिभिरप्रमत्तैस्त्याज्याश्च दोषाः शुभकीर्त्तिकामैः ॥ १४० $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

गृहदोषनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ रुचकादिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

त्रिदशानां नृपाणां च वर्णिनां च विशेषतः ।
उत्पत्तिप्रभृति ब्रूमः प्रासादा यस्य ये मताः ॥ १ ॥

पुरा ब्रह्मासृजत् पञ्च विमानान्यसुरद्विषाम् ।
वियद्वर्त्मविचारीणि श्रीमन्ति च महान्ति च ॥ २ ॥

तानि वैराजकैलासे पुष्पकं मणिकाभिधम् ।
हैमानि मणिचित्राणि पञ्चमं च त्रिविष्टपम् ॥ ३ ॥

---

१. 'नि' ख. ग. पाठः। २. 'ष्टं स्वस', ३. 'चि', ४. 'तु' क. पाठः।
५. 'बाह्यस्वरप्रतिमाः' क. ग. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

आत्मनः शूलहस्तस्य धनाध्यक्षस्य पाशिनः।
सुरेशिने च विश्वेशो विमानानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

बहून्यन्यानि चैवं स सूर्यादीनामकल्पयत्।
विशेषाय यथोक्तैस्तान्याकारैः प्रतिदैवतम् ॥ ५ ॥

प्रासादांश्च तदाकाराञ् शिलापक्वेष्टकादिभिः।
नगराणामलङ्कारहेतवे समकल्पयत् ॥ ६ ॥

वैराजं चतुरश्रं स्याद् वृत्तं कैलाससंज्ञितम्।
चतुरश्रायताकारं विमानं पुष्पकं भवेत् ॥ ७ ॥

वृत्तायतं च मणिकमष्टाश्रि स्यात् त्रिविष्टपम्।
तद्भेदाञ् श्रीमतोऽन्यांश्च विविधानसृजत् प्रभुः ॥ ८ ॥

ये यत्र विहिता भेदाः पूर्वं कमलयोनिना।
सर्वांस्तानभिधास्यामो नामसंस्थानमानतः ॥ ९ ॥

रुचकश्चित्रकूटश्च तृतीयः सिंहपञ्जरः।
भद्रः श्रीकूट उष्णीषः शालाक्षो§ गजयूथपः ॥ १० ॥

नन्द्यावर्तोऽवतंसाह्वः स्वस्तिकः क्षितिभूषणः।
भूजयो विजयो † नन्दी श्रीतरुः प्रमदाप्रियः ॥ ११ ॥

व्यामिश्रो हस्तिजातीयः कुवेरो वसुधाधरः।
सर्वभद्रो विमानाख्यो मुक्तकोणश्च नामतः ॥ १२ ॥

चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा चतुरश्राः समासतः।
वृत्तांस्तथाभिधास्यामः प्रासादानपरानपि ॥ १३ ॥

वलयो दुन्दुभिः प्रान्तः पद्मः कान्तश्चतुर्मुखः।
माण्डूकाख्योऽथ कूर्मश्च तालीगृह उलूपिकः ॥ १४ ॥

इति वृत्ताः समासेन प्रासादा दश कीर्तिताः।
चतुरश्रायता ये स्युः कथ्यन्ते तेऽपि नामतः ॥ १५ ॥

---

१. 'षाकेयेय' क, 'षायद्यथो' ख. ग. पाठः। २. 'ष्ट दारुभिः' ख. ग. पाठः। ३. 'श्चोऽथ ग' क. पाठः। ४. 'या' क. ख. ग. पाठः। ५. 'मत्तः प्र' ग. पाठः। ६. 'नाङ्को' क. ख. ग. पाठः। ७. 'मान्द्रूका' क, 'मदूका' ख. ग. पाठः।

---

§ शालाख्य इति लक्षणे पाटः। † लक्षणे तु नन्द इति पठ्यते।

"Aho Shrut Gyanam"

भवो विशालः साम्मुख्यः प्रभवः शिविरागृहः ।
मुखशालो द्विशालश्च गृहराजोऽमलो विभुः ॥ १६ ॥

एवमेते समुद्दिष्टाश्चतुरश्रायता दश ।
अथ वृत्तायतान् ब्रूमः प्रासादानभिधानतः ॥ १७ ॥

आमोदो रै[1]तिकस्तुङ्गश्चारुर्भूतिर्निषेवकः ।
सदा(?)निषेधः सिंहाख्यः सुप्रभो लोचनोत्सवः ॥ १८ ॥

एते वृत्तायताः प्रोक्ताः प्रासादा नामतो दश ।
अष्टाश्रीणां च[2] नामानि कथयामि समासतः ॥ १९ ॥

वज्रको नन्दनः शङ्कुर्मेखलो वामनो लयः ।
महापद्मश्च हंसश्च व्योमचन्द्रोदयाविति ॥ २० ॥

अष्टाश्रय इमे प्रोक्ताः प्रासादा दश संख्यया ।
भवन्त्येवं चतुष्षष्टिर्लक्ष्मैषामधुनोच्यते ॥ २१ ॥

संस्थानमानविन्यासैर्भद्रस्तम्भादिसङ्ख्यया ।
एषां विशेषा वक्ष्यन्ते पृथक् पृथगनुक्रमात् ॥ २२ ॥

ज्येष्ठो भागश्चतुर्हस्तः सार्धहस्तत्रयोऽपरः ।
कल्पनीयः कनीयांस्तु हस्तत्रितयसम्मितः ॥ २३ ॥

ज्येष्ठमध्यकनीयोभिरेवं भागैर्विभाजिताः ।
भवन्ति सर्वप्रासादा ज्येष्ठमध्याधमक्रमात् ॥ २४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
कुर्यात् स्वारोहकाश्वासं पीठमंशसमुच्छ्रितम् ॥ २५ ॥

तथा तस्योपरि स्थाप्या हंसपृष्ठी[3] समन्ततः ।
हस्तमात्रोच्छ्रिता वृत्ता जलनिर्गमभूषिता ॥ २६ ॥

ततः पीठस्य तस्यान्तर्द्विभागा(य?या)मविस्तृ[4]तिः ।
प्रासादो रुचकः कार्यो भागत्रि[5]तयमुच्छ्रितः ॥ २७ ॥

सार्धभागेन सं[6]छा स्यात् सार्धभागस्तु योऽपै[7]रः(?) ।
छा(य?द्य)त्रयं सकण्ठं स्यात् तेन सामलसारकम् ॥ २८ ॥

---

१. 'री' ख. ग. पाठः । २. 'तु', ३. 'ष्ठा' क. पाठः । ४. 'स्त' ख. ग. पाठः ।
५. 'वृत्तसमु', ६. 'स्तम्भा स्यात्' ख. पाठः । ७. 'षु' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वारं भागोच्छ्रितं तस्य कार्यं भागार्धविस्तृतम् ।
सप्राग्रीवः स कर्तव्यश्चतुर्दशधरावृतः ॥ २९ ॥

ससौधालिन्दकश्चारुरूर्ध्वे[1]च्छाद्यो[2]पकर्ष[3]वान् ।
क्रियतेऽत्र[4] यदा स्त(र्म्भो?म्भैः)द्वाविंशत्या समावृतः ॥ ३० ॥

सप्राग्रीवपरिष्कारो भागिकालिन्दशोभितः ।
मध्यप्रदेशे रुचकः प्रासादः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥

रुचकः ।

कर्णप्राग्रीवकै[5]श्चित्रैः सप्राग्रीवश्च यो वृतः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां गवाक्षाभ्यां चतुर्दिशमलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

कपोतालीपरिक्षिप्तः शोभितो द्वारसम्पदा ।
तदानीं चित्रकूटाख्यः प्रासादः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

चित्रकूटः ।

अयमेव पुनः षड्भिः स्तम्भैरपि[6] चितो यदा ।
प्राग्रीवकविहीनश्च स भवेज्जालरूपकः ॥ ३४ ॥

सिंहपञ्जर इत्युक्तः प्रासादः स तदा शुभः ।

सिंहपञ्जरः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौद्वावस्यैव भवतो यदा ॥ ३५ ॥
अलिन्दकगतिस्थित्या तदा भद्रः प्रकीर्तितः ।

भद्रः ।

स्याच्चित्रकूटः प्राग्रीवैश्चतुर्भिर्दिक्चतुष्टये ॥ ३६ ॥
बहिरन्तश्चतुर्द्वारः श्रीकूट इति नामतः ।

श्रीकूटः ।

षड्दारुकसमायुक्तं[7]भागद्वारस्त्वयमेव[8] चेत् ॥ ३७ ॥
प्रासादस्तम्भगर्भः[9]स्यात् तदोष्णीषोऽभिधीयते ।

उष्णीषः ।

चतुरंशकविस्तीर्णं षडंशविहितायति ॥ ३८ ॥

---

१. 'र्ध्वै', २. 'द्या', ३. 'न' ख. ग. पाठः । ४. 'म्भं', ५. 'कै' क. पाठः । ६. 'प' ख. घ. पाठः । ७. 'क्तं' क. ख. ग. पाठः । ८. 'व च ।' क. पाठः । ९. 'र्भस्य' ख. ग. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पीठं शालागृहस्योक्तं सशालानिर्गमं शुभम् ।
मध्यादपरतस्तस्य द्विभागायतविस्तृतम् ॥ ३९ ॥

विधेयं गर्भभवनमलिन्दकपरिष्कृतम् ।
कार्या तस्याग्रतः सीमा भागद्वितयमायता ॥ ४० ॥

भागमेकं च विस्तीर्णा चतुःस्तम्भोपशोभिता ।
तदग्रतोऽपरा सीमा कार्या भागान् षडायता ॥ ४१ ॥

तिर्यक् स्था भागविस्तीर्णा प्रवेशद्वयशोभिता ।
एषं शालागृहः(?) स्तम्भैर्द्वाविंशत्या समावृतः ॥ ४२ ॥

प्राग्रीववेदिकाजालपक्षसोपानकैः शुभैः ।

शालाढ्यः ।

पञ्चभागोन्मितव्यासे क्षेत्रे भागाष्टकायते ॥ ४३ ॥

पीठं कुर्यादुभयतः ससोपानं शिलाचितम् ।
मध्यादपरभागेऽस्य देवागारं निवेशयेत् ॥ ४४ ॥

(वि?द्वि)भागायामविस्तारं चतुरश्रं सुसंहितम् ।
पादोनभागविस्तारमध्यर्धं भागमुच्छ्रितम् ॥ ४५ ॥

तस्यं कार्यं मुखं मध्ये पार्श्वतश्चयशोभितम् ।
सचया निर्गता सीमा द्वौ भागौ त्रींस्तथाय(था?ता) ॥ ४६ ॥

चतुरश्रा चतुःस्तम्भा तदग्रे भागविस्तृता ।
पञ्चभागायता तिर्यक् कार्या सीमा तथापरा ॥ ४७ ॥

द्वात्रिंशदत्र कर्तव्याः स्तम्भाः सर्वैक्यसङ्ख्यया ।
बहिःपरिसरो गर्भात् ससीम्नो भागविस्तृतः ॥ ४८ ॥

एवं स्याद् वेदिकाजालरूपादिभिरलंङ्कृतः ।
बहि(र्व?श्च)योच्छ्रितश्चैष प्रासादो गजयूथपः ॥ ४९ ॥

गजयूथपः ।

षड्भागभाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
गर्भो द्विभागिकः कार्यो द्वारं भागसमुच्छ्रितम् ॥ ५० ॥

---

१. 'यस्त' क. ख. ग. पाठः । २. 'ताः' ख. ग. पाठः । ३. 'षा' क. ख ग. पाठः । ४. 'ता', ५. 'ह' ख. ग. पाठः । ६. 'स्य मध्ये मुखं कार्यं पा' ख. पाठः । ७. 'सर्वे व्यसं' ख. ग. पाठः । ८. 'ञ्शि' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

भागार्धं द्वारविस्तारः प्रासादस्योच्छ्रितिं पुनः ।
कुर्वीत चतुरो भागाञ् छादयेच्चित्रकूटवत् ॥ ५१ ॥

कार्या द्विभागिकाः शालाः सालिन्दास्तस्य बाह्यतः ।
बहिर्भित्तिपरिक्षिप्ताश्चतुर्भागायताः शुभाः ॥ ५२ ॥

द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्तम्भाः प्रतिशालं भवन्ति षट् ।
चतुःस्तम्भधृतैर्युक्ताः कार्या वा धार्मिकालयैः ॥ ५३ ॥

नन्द्यावर्तोऽयमेवं स्यात् सप्राग्रीवचतुष्टयः ।
प्रागु(?)द्वारक्षणोपेतः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ५४ ॥

नन्द्यावर्तः ।

क्षे(त्र?त्रे)षड्भागविस्तारे दशभागकृतायतौ ।
मध्यादपरभागे[2]ऽस्य देवकोष्ठं निवेशयेत् ॥ ५५ ॥

चतुरंशप्रतिन्यासं[3] चतुरश्रं समन्ततः ।
द्वारं तस्य विधातव्यं भागमध्यर्धमुच्छ्रितम् ॥ ५६ ॥

पादोनं भागविस्तारं सिंहवक्त्रविभूषितम् ।
सीमा तस्याग्रतः कार्या देवकोष्ठेन सम्मिता ॥ ५७ ॥

स्तम्भैः षोडशभिर्युक्ता भागद्वितयमुच्छ्रितैः ।
ससीम्नो देवकोष्ठस्य समन्ताद् भित्तिवेष्टितः ॥ ५८ ॥

अलिन्दो भागिकः कार्यो गवाक्षैरुपशोभितः ।
(तत्)सीम्नोर्ध्वाग्रतः[4] पार्श्वे षड्दारुकयुता बहिः ॥ ५९ ॥

कार्या द्विरंशाः प्राग्रीवा भागिकालिन्दवेष्टिताः ।
द्विद्विस्तम्भधृताः सर्वे पार्श्वतश्चयशोभिताः ॥ ६० ॥

अलिन्दास्तु चतुःस्तम्भाः कार्याः प्राग्रीवकाग्रतः ।
अवतंसक इत्येष सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ६१ ॥

प्रासादः कथितः सम्यक्

अवतंसः ।

स्वस्तिकः प्रोच्यतेऽधुना ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे षड्भागप्रविभाजिते ॥ ६२ ॥

---

१. 'क्ता का' ख. ग. पाठः । २. 'गस्थादे' क, 'गस्थदे' ख. ग. पाठः ।
३. 'न्या', ४. 'श्रायतः' ख. ग. पाठः । ५. 'ह्न' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रासादं कल्पयेन्मध्ये द्विभागायामविस्तृतम् ।
द्वारपाशोऽस्य भागार्[1]धेविस्तृतो भागिकोदयः ॥ ६३ ॥
ग[2]र्भवेश्म चतुःस्तम्भमलिन्दो भागिको बहिः ।
तस्य स्युर्द्वादश स्तम्भा भागिकोऽलिन्दकोऽपरः ॥ ६४ ॥
विंशतिस्तम्भसंयुक्तो विधातव्यः समन्ततः ।
चयावृतश्च पुरतो भागो वाष्टधरान्वितः ॥ ६५ ॥
भागमेकैकमुत्सृज्य कर्णाभ्यां भागविस्तृतौ ।
भागिकोच्छ्रायनिष्कासौ कार्यौ प्राग्रीवकौ पुनः ॥ ६६ ॥
बाह्यतो भित्तिसंश्लिष्टौ त्रिदि[3]शं सगवाक्षकौ ।
स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः प्रासादश्चित्रलक्षणः ॥ ६७ ॥

स्वस्तिकः ।

अथाभिधीयतेऽधुना प्रासादः §शुभलक्षणः ।
षड्भागभाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ॥ ६८ ॥
द्विभागायामविस्तारं मध्ये गर्भगृहं भवेत् ।
भागद्वयोच्छ्रितैः स्तम्भैर्युतं व्यक्तैः सलक्षणैः ॥ ६९ ॥
निष्क्रान्तेषु बहिर्भागे गर्भपादेषु योजयेत् ।
तोरणानि मनोज्ञानि ककुप्सु चतसृष्वपि ॥ ७० ॥
गर्भस्तम्भप्रमाणेन तानि स्तम्भद्वयेन वा ।
समुत्क्षिप्तानि युक्तानि कलशै र[5]विमण्डलैः ॥ ७१ ॥
पल्लवैः पत्रजात्यादिविन्यासैश्चाप्यनेकशः ।
भूषितास्ये पुनर्मूर्ध्नि मकराणां मुखैरपि ॥ ७२ ॥
स्तम्भयोरन्तरे दद्यादुभौ मकरपूरिमौ ।
अन्योन्याभिमुखे[4] श्लिष्टे कुर्यान्मकरयोर्मुखे ॥ ७३ ॥
चतुर्णामपि निर्दिष्टस्तोरणानां मया विधिः ।
अलिन्दो भागिकश्चान्यो बहिर्भागे प्रकीर्तितः ॥ ७४ ॥

---

१. 'र्धे', २. 'त्त' क. पाठः । ३. 'दं' क, 'द' ख. ग. पाठः । ४. 'श्रि' ख. ग. पाठः । ५. 'रवौ' ख. पाठः ।

---

§ 'क्षितिभूषण' इति पाठः । स्यात् ।

"Aho Shrut Gyanam"

स्युर्भागिकान्यलिन्दान्ते धार्मिकायतनानि च ।
वेष्टितानि बहिर्भित्त्या सम्मुखानि परस्परम् ॥७५ ॥

धार्मिकालयभित्तीनां भूमिर्या बाह्यतो भवेत् ।
तस्याः षड्दारुकाणि स्युर्भागमात्रोच्छ्रितानि च ॥ ७६ ॥

प्राग्रीवकैः ससोपानैर्दिक्चक्रैस्तानि भूषयेत् ।
अपरस्याः पुनर्भित्तेर्भागद्वयविनिस्सृतम् ॥ ७७ ॥

मध्ये द्विभागविस्तीर्णं देवकोष्ठं निवेशयेत् ।
द्वारपाशं च कुर्वीत तस्यो(र्ध्वे) भागमुच्छ्रितम् ॥ ७८ ॥

तथा भागार्धविस्तारमित्येष क्षितिभूषणः ।
प्रासादः कीर्तितः सम्यक् सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ७९ ॥

क्षितिभूषणः ।

क्षेत्रस्य चतुरश्रस्य भागान् द्वादश कल्पयेत् ।
मध्ये गर्भं चतुःस्तम्भं तस्य कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ८० ॥

तद्बहिर्भागिकोऽलिन्दो द्वादशस्तम्भवान् भवेत् ।
मध्येऽपरस्यां यौ स्तम्भौ ताभ्यां कुर्वीत तोरणम् ॥ ८१ ॥

अलिन्दो भागिकः कार्यो भित्त्या भागिकया वृतः ।
प्राच्यां षड्दारुकं[1] मध्ये गर्भव्यासोन्मितायति ॥ ८२ ॥

तृतीयो भागिकोऽलिन्दः स्याद् भित्त्या परिवेष्टितः ।
चतुर्भागायतं भूयस्तत्र षड्दारुकं भवेत् ॥ ८३ ॥

प्राग्रीवं भागविष्कम्भं कुर्याद् भागद्वयायतम् ।
अग्रतः स्तोभितं स्तम्भैर्भागान्वस्थचयावृतम् ॥ ८४ ॥

यथा प्राच्यां तथोदीच्यां याम्यायामपि कीर्तितम् ।
दिशि प्रतीच्यां तु पुनर्द्वितीयालिन्दकाद् बहिः ॥ ८५ ॥

द्विभागायामविष्कम्भं देवकोष्ठं निवेशयेत् ।
सपक्षद्वारकं श्रीमद् द्वारपाशोपशोभितम् ॥ ८६ ॥

भागिकोऽलिन्दकस्तस्माद् बहिर्भित्त्याभिवेष्टितः ।
बहिश्चयावृतो वा स्याद् गवाक्षैर्वा विभूषितः ॥ ८७ ॥

१. 'कां' ग. पाठः । २. 'र्भे' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

पृथ्वी विजयते यस्मात् तेनासौ पृथिवीजयः ।

भूजयः ।

यदा पृथ्वीजयस्यैव कर्णप्राग्रीवकावुभौ ॥ ८८ ॥

कोणेषु भागिकौ स्यातां विज्ञेयो विजयस्तदा ।

विजयः ।

अयं समन्तादुत्क्षिप्तो बाह्यालिन्दं विना यदा ॥ ८९ ॥

मध्यमालिन्दसौध(स्थं?स्थ)कर्णप्रासादकैश्रितः ।
प्रथमालिन्दगर्भौ च समुत्क्षिप्ततरौ ततः ॥ ९० ॥

स्यातां छाद्यद्वयच्छन्नौ तदा नन्दोऽभिधीयते ।

नन्दः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥ ९१ ॥

चतुरश्रो भवेन्मध्ये देवकोष्ठो द्विभागिकः ।
द्वारबन्धोऽस्य भागोच्चः कार्यो भागार्धविस्तृतः ॥ ९२ ॥

स्याद् बहिर्द्वादशधरोऽलिन्दको[1] देवकोष्ठतः ।
भागिकः स च विज्ञेयो भित्तियुक्तस्ततोऽपरः ॥ ९३ ॥

अयं द्विभागिकैर्युक्तः प्राग्रीवैर्भागनिर्गमैः ।
तथा तृतीयोऽलिन्दः स्यात् समन्ताद् भित्तिवेष्टितः ॥ ९४ ॥

प्राग्रीवकैश्चतुःस्तम्भैः समवेशैर्विभूषितः ।
भागिकी स्याद् बहिर्भित्तिरितरा तु धरैः समा ॥ ९५ ॥

इत्येष श्रीतरुर्नाम प्रासादः परिकीर्तितः ।

श्रीतरुः ।

अस्यैव स्तम्भगर्भस्य द्वितीयालिन्दभित्तिषु ॥ ९६ ॥

षड्दारूणि विधेयानि पूर्वरूपव्यवस्थिते[2]ः ।
द्वौ द्वौ प्राग्रीवकौ कार्यौ तृतीयालिन्दकाद् बहिः ॥ ९७ ॥

तौ च द्वि(भागा)न्तरितौ सर्वतो भागनिर्गतौ ।
एवं पञ्चांशता(?) स्तम्भैर्द्वाभ्यां च परिवेष्टितः ॥ ९८ ॥

---

१. 'तो' क. ग. पाठः । २. 'ते' क, 'तैः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

चतुःस्तम्भैः सप्रवेशैः समन्तादुपनिर्गमैः ।
प्रासादोऽयं समाख्यातो नामतः प्रमदाप्रियः ॥ ९९ ॥

प्रमदाप्रियः ।

भागविस्तारविष्कम्भमस्य प्राग्रीवकं यदा ।
भिन्नालिन्दाग्रतस्तिर्यग् द्वे शाले तन्मुखं शुभम्(?) ॥ १०० ॥
द्वितीयालिन्दकस्थाने कर्णप्रासादकैर्युतः ।
एवं व्यामिश्रसंज्ञोऽयं प्रासादः परिकीर्तितः ॥ १०१ ॥

व्यामिश्रः ।

विजयस्यास्य च यदा कर्णलाङ्गलकैर्युता ।
भवेद्[1] भित्तिस्तदा हस्तिजातीय इति कथ्यते ॥ १०२ ॥

हस्तिजातीयः ।

सीमाप्राग्रीवभूमीषु यदा स्युः पृथिवीजये ।
द्विभागाश्चाभितोऽलिन्दास्तिर्यक्[2]शालामुखेषु च ॥ १०३ ॥
[3]अलिन्दे[4] पश्चिमा शाला स(र्वै?र्वा)शालोकना शुभा ।
षड्दारुकं तथैवात्र चतुर्भागायतं भवेत् ॥ १०४ ॥
पूर्ववत् सर्वमन्यच्च कुबेरः स तदा भवेत् ।

कुबेरः ।

प्रासादः कथ्यतेऽन्यश्च सम्प्रतीह धराधरः ॥ १०५ ॥
कुबेरोपत्तरोक्षिप्तः (?) कर्णप्रासादभूषितः ।
मध्यद्वारान्वितः श्रीमान् धराधर इति स्मृतः ॥ १०६ ॥

वसुधाधरः ।

यत्रा[5]ग्रतश्चित्रकूटस्तस्माद् यः सर्वतोदिशम् ।
धराधरतदभ्भासः(?) सर्वतोभद्र उच्यते ॥ १०७ ॥

सर्वतोभद्रः ।

कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ शालाप्राग्रीवका(अ?व)पि ।
स्यातां यदास्य प्रोक्तोऽसौ विमानाख्यस्तदा शुभः ॥ १०८ ॥

विमानाख्यः ।

विमान[6]पीठे निर्मुक्तैः[7] शालाभिः सर्वतो वृतः ।
अन्योन्यशालासम्बन्धे त्रिमानो न्यस्यते यदा ॥ १०९ ॥

---

१. वेद्वास्तितदा ' ख. पाठः । २. 'क्तालङ्घ ' क. पाठः । ३. 'आ ' क. ख. ग. पाठः ।
४. 'न्दो ' ख. ग. पाठः । ५. 'थाग्रभश्चि ', ६. 'नं ', ७. 'क्ता ' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कर्णप्रासादकोपेतः कोणैः शालोज्झितैर्युतः ।
तदा विमुक्तकोणः स्यात् प्रासादोऽत्यर्थशोभितः ॥ ११० ॥

मुक्तकोणः ।

प्रासादाश्चतुरश्राः स्वैर्विशेषैर्वर्णिताः पृथक् ।
इदानीमभिधीयन्ते वृत्ताः स्वैः स्वैर्विशेषणैः ॥ १११ ॥
तत्रादौ वलयाकारो वलयः स च कथ्यते ।
समन्ताद् वर्तिते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ॥ ११२ ॥
कुर्यात् सारोहणं पीठं सार्धभागोच्छ्रितं शुभम् ।
परिक्षिप्तं गजमुखैर्मक(र?रा)स्याम्बुनिर्गतम् ॥ ११३ ॥
बहिर्भागसमोपेतस्तस्मिन् कार्यः सुरालयः ।
पादोनविस्तृतिर्द्विघ्न[2]द्वारोच्छ्रायविभूषितः ॥ ११४ ॥
तस्याष्टस्तम्भकोऽलिन्दो बहिर्वलय इत्यसौ ।
वृत्तच्छाद्यः सिंहकर्ण[3]स्तथा जालकरूपवान् ॥ ११५ ॥

† भूवलयः ।

प्राग्रीवका(वृतः) स स्याद् यद्वा § स्तम्भोच्छ्रयानतः ।
तदेष * दुन्दुभिः प्रोक्तस्त्रिभिस्तैः प्रान्त उच्यते ॥ ११६ ॥
अयमेव चतुर्भिः स्यात् पद्मः प्राग्रीवकैः शुभैः ।
स्तम्भैश्चतुर्भिस्तस्यैव यदा पश्चान्निवेश्यते ॥ ११७ ॥
मध्यवृत्तो गर्भकोष्ठो भित्तिश्चोभयतः स्थिता ।
स कान्त इति विख्यातः प्रासादो वर्तुलाकृतिः ॥ ११८ ॥
चत्वारि वलयस्यैव यत्र द्वाराण्यलिन्दकः ।
स्याच्चतुर्विंशतिस्तम्भैर्द्वितीयो भागसम्मितः ॥ ११९ ॥
प्राग्रीवकाश्च स्तम्भाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां समन्विताः ।
चत्वारो यत्र स प्रोक्तः प्रासादोऽत्र चतुर्मुखः ॥ १२० ॥
अस्यैवैकं यदा द्वारं प्राग्रीवोऽलिन्दवेष्टितः ।
एक एव तथाचान्यः प्राग्रीवस्तस्य चाग्रतः ॥ १२१ ॥

१. 'ग्रीवको' ख. पाठः । २. 'तिद्विघ्न', ३. 'र्णतदीयजा' क. पाठः । ४. 'च्छ्रयद्व-यान्वितः', ५. 'तदेव तु' ख. पाठः । ६. 'शयेत्' क. ख. पाठः । ७. 'वा' क. पाठः ।

† लक्ष्ये लक्षणे च वलय इत्ययं पठितः । § स्तम्भद्वयान्वितः इति पाठः स्यात् । * इत आरभ्य तत्तत्प्रासादनामानि पृथक्तया मातृकायां न लिखितानि ।

"Aho Shrut Gyanam"

ख्यातो माण्डूक[1] इत्येष वृत्तप्रासादसत्तमः (वृत्तः?)।
दिक्कोणेषु यदास्यैव भवेत् प्राग्रीवकल्पना ॥ १२२ ॥

प्रासादोऽयं तदा कूर्मसंज्ञः[2] स्यादपराजितः ।
कूर्मस्यैव यदा दिक्षु स्तम्भैरष्टाभिरष्टभिः ॥ १२३ ॥

प्राग्रीवकाः प्रकल्प्यन्ते चत्वारोऽलिन्दवेष्टिताः ।
प्राग्रीवकास्तिर्यगग्रे भवन्त्यन्ये तद[ग्र]तः ॥ १२४ ॥

षोडशस्तम्भयुक्तस्य मध्यभागे यदा भवेत् ।
† जानीयाद्दोषविज्ञेयाः प्राग्रीवहरितोत्तमः (?) ॥ १२५ ॥

इति वृत्ताः समाख्याताः प्रासादा नामलक्षणैः[3] ।
चतुरश्रायतान् ब्रूमः प्रासादानिह साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

अष्टभागायते क्षेत्रे चतुरंशकविस्तृते ।
द्विभागसार्धभागैकभागोऽयं पीठे इष्यते ॥ १२७ ॥

पश्चिमं भागमुत्सृज्य देवकोष्ठं द्विभागिकम् ।
तस्मिन् निवेशयेत् सीमा स्यादस्याग्रेऽष्टभिर्धरैः ॥ १२८ ॥

ससीम्नो देवकोष्ठस्य भागिकालिन्दको बहिः ।
युक्तो धराणां विंशत्या वेदिकाजालवेष्टितः ॥ १२९ ॥

प्राग्रीवकस्य तस्याग्रे स्तम्भद्वितयभूषितः ।
द्विच्छाद्यच्छादितः श्रीमान् सिंहकर्णैरलङ्कृतः ॥ १३० ॥

प्रासादोऽयं भवो नाम विशालः कथ्यतेऽधुना ।
यदास्यैव सनिष्क्रान्ते सीमायामे च व(र्धे?र्धि)ते ॥ १३१ ॥

वलभ्यौ पार्श्वयो[6]ः स्यातां विशालाख्यस्तदा भवेत् ।
विशालस्य यदा गर्भे भित्तिर्भवति दिक्त्रये ॥ १३२ ॥

---

१. 'न्द्र' क. ख. पाठः । २. 'कर्त्तैः', ३. 'णैः । वृत्तप्रासादः । च' क. पाठः ।
४. 'टमिध्य' ख. पाठः । ५. 'योगे च' क. ख. पाठः । ६. 'त' क. पाठः ।

---

† इह किर्यांश्चिद् ग्रन्थो गलित इव भाति, यतो वृत्तप्रासादभेदेषु लक्ष्ये परिगणितयोरुपान्त्ययोः तालीगृहोलूपीनामकयोर्लक्षणं न दर्शितम्, अत्र दृश्यमानस्य च श्लोकार्धस्य नार्थसामञ्जस्यम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्वौ द्वौ गवाक्षकौ चापि साम्मुख्यं[1] स भवेत् तदा ।
प्राग्रीवास्त्रिदिशं तस्य गर्भकोष्ठायता यदा ॥ १३३ ॥
हित्वा वलभ्यौ प्राग्रीवौ विधीयेते तथापरौ ।
कर्णेषु भागमेकैकं त्यक्त्वा स्यात् प्रभवस्तदा ॥ १३४ ॥
एतस्यैव मुखे स्यातां यदा प्राग्रीवकावुभौ ।
पार्श्वयोरपरौ द्वौ द्वौ प्राग्रीवौ भवतो यदा ॥ १३५ ॥
कर्णेषु भित्तयश्च स्युस्तदा स्याच्छिविरागृहः ।
यदास्यैव मुखे शाला भागद्वितयविस्तृता ॥ १३६ ॥
आयामेन च षड्भागा प्राग्रीवौ द्वौ तदग्रतः ।
द्वौ द्वौ गवाक्षकौ स्यातां तद्भित्त्योरुभयोरपि ॥ १३७ ॥
सीमायां द्वादश स्तम्भा मुखशालस्तदा भवेत् ।
अलिन्दो भागिकः कार्यो विशालस्यैव[2] बाह्यतः ॥ १३८ ॥
प्राग्रीवभूमिषु वृतो[3] भित्त्या च सगवाक्षकः ।
अग्रतः सहितः स्तम्भैः षड्भिश्च क्रियते यदा ॥ १३९ ॥
द्विशाल[4] इति विख्यातः प्रासादो जायते तदा ।
यदास्यैव विधीयन्ते स्तम्भाः सर्वे समन्ततः ॥ १४० ॥
प्राग्रीवकौ चोभयतो गृहराजस्तदा भवेत् ।
सर्वस्यैव(?) यदालिन्दः स्यादन्यो भागविस्तृतः ॥ १४१ ॥
सीमान्तविस्तृते स्यातां वलभ्यौ भागनिस्सृते[5] ।
भित्तिर्विधीयते शेषा गवाक्षैरुपशोभिता ॥ १४२ ॥
मुखे षड्दारुकं च स्यात् तदा स्यादमलाभिधः ।
एकादशायते क्षेत्रे तथा षड्भागविस्तृते ॥ १४३ ॥
मुक्त्वा भागद्वयं पश्चाद् देवकोष्ठं निवेशयेत् ।
भागं मुक्त्वाग्रतः कुर्यात् सीमां भागचतुष्टयम् ॥ १४४ ॥
अष्टस्तम्भास्ततोऽलिन्दविंशतिस्तम्भभागिकाः ।
भागिकः परितोऽलिन्दोऽष्टाविंशतिधरोऽपरः ॥ १४५ ॥

---

१. 'ख्यात् स' २. 'लाख्ये च बा', ३. 'चौ', ४. 'वि', ५. 'विस्तृते' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्विद्विस्तम्भयुताः कार्याः प्राग्रीवाः कोष्ठजास्त्रयः।
सीमासमे वलभ्यौ च प्राग्रीवौ मध्यतस्तयोः॥ १४६॥

द्विद्विस्तम्भौ पुरश्चान्यौ वेदिकाजालशोभितौ।
वेदिकाजालरूपाढ्यः सिंहकर्णोपशोभितः॥ १४७॥

प्रासादोऽयं विभुर्नाम कथितो भर्तृनन्दनः।
एवमेते समाख्याताश्चतुरश्रायता दश॥ १४८॥

चतुरश्रायतांस्तिर्यगायस्त्योथापरानपि।
प्रासादानभिधास्यामो नैवसंस्थानलक्षणैः॥ १४९॥

द्वौ भागौ विस्तृतिर्गर्भे द्विगुणा तिर्यगायतिः।
मध्ये भागोच्छ्रितं द्वारं तदर्धेन तु विस्तृतम्॥ १५०॥

स्तम्भैश्चतुर्भिः संयुक्ता सीमा द्वारस्य चाग्रतः।
द्विभागायामविस्तारा तावन्मात्रसमुच्छ्रितिः॥ १५१॥

तां सीमां गर्भसहितां भागेनान्येन वेष्टयेत्।
भित्तिस्तत्र विधातव्या सगवाक्षा चतुर्दिशम्॥ १५२॥

षड्दारुकयुतो[4] ह्येष प्रासादो भव उच्यते।
अस्यैव भागनिष्कासा शाला मुखचतुष्टये॥ १५३॥

यदा षड्दारुकोपेता विशालः स तदोच्यते।
स्तम्भैर्मुखेमुखे षड्भिर्बहिः साम्मुख्य इत्यसौ॥ १५४॥

अस्यैव सीमा कर्णस्था द्विद्विस्तम्भयुता यदा।
प्राग्रीवैर्भागनिष्क्रान्ता बहिस्था प्रभवस्तदा॥ १५५॥

सीम्नोऽग्रतो यदास्यैव स्तम्भद्वययुतो भवेत्।
प्राग्रीवो भागनिष्क्रान्तस्तदा स्याच्छिबिरागृहः॥ १५६॥

विशालसन्निवेशस्य मुखे शाला भवेद् यदा।
पार्श्वयोश्चोभयोः शाले प्राग्रीवाश्च त्रयो यदा॥ १५७॥

निष्क्रान्तभाग एकैकः स्तम्भद्वितयसंयुतः।
प्रासादः स तदा ज्ञेयो मुखशालोऽभिधानतः॥ १५८॥

---

१. 'त', २. 'व्ययप' क. पाठः। ३. 'भाग', ४. 'ते', ५. 'ह्या', ६. 'वभाग' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

मुखशालाप्रशालाया यदा स्तम्भाश्चतुर्दश ।
प्राग्रीवो द्विविधश्चाग्रे द्विशालः स तदा भवेत् ॥ १५९ ॥

§ भित्तिस्तदानीं(?)प्रासादो गृहराजः प्रजायते ।
गर्भायामसमावग्रपृष्ठयोर्भागविस्तृतौ ॥ १६० ॥

चतुश्चतुर्धरौ यत्र प्राग्रीवौ द्वौ च पार्श्वयोः ।
तौ तु द्विद्विधरौ गर्भविस्तारेण तु सम्मितौ ॥ १६१ ॥

अमलो नाम स प्रोक्तः प्रासादः शुभलक्षणः ।
अस्यैव चाग्रे पृष्ठे च द्विद्विस्तम्भयुतौ यदा ॥ ६२ ॥

प्राग्रीवौ स तदा प्रोक्तः प्रासादो दशमो विभुः ।
प्रासादान् कथयामोऽन्यान् दश वृत्तायतान् पुनः ॥ १६३ ॥

अष्टभागमुखायत्या विस्तृत्या चतुरश्रकम् ।
वृत्तायतं प्रकुर्वीत सबाह्याभ्यन्तरं ततः ॥ १६४ ॥

गर्भं पश्चिमभागेऽस्य चतुर्भागं समन्ततः ।
कुर्यात् तस्याग्रतः सीमां भागद्वितयविस्तृताम् ॥ १६५ ॥

भागत्रयमितां भागेनैकेनान्तरितां च ताम् ।
संयुक्तामष्टभिः स्तम्भैः सुदृढैश्चारुदर्शनैः ॥ १६६ ॥

अलिन्देन परिक्षिप्तां ससीमां देवकोष्ठकम् ।
षोडशस्तम्भयुक्तेन कुर्यात् प्राग्रीवमग्रतः ॥ १६७ ॥

छन्नाश्छाद्यद्वयेनायमामोद इति कीर्तितः ।
वृत्तायतेषु प्रथमः प्रासादः स्वामिनो हितः ॥ १६८ ॥

समाहितौ यदास्यैव प्राग्रीवौ भागमिश्रितौ ।
चतुःस्तम्भै रैतिकस्तु वृत्ताभ्यां तुङ्ग उच्यते ॥ १६९ ॥

यदा सीमावधिर्भित्तिर्गवाक्षैरुपशोभिता ।
वृत्तप्राग्रीव एकोऽन्ये(?) तदा चारुरुदाहृतः ॥ १७० ॥

सीमामध्ये विधातव्यौ प्राग्रीवौ भागविस्तृतौ ।
विस्तारसदृशायामौ दक्षिणेति(?) त्रिषु त्रयः ॥ १७१ ॥

§ इहापि कियांश्चिद् ग्रन्थो गलित इव । इतः श्लोकद्वयात् प्रागेव क. पुस्तके पत्राणि आचतुष्पञ्चाशाध्यायैकदेशं लुप्तानि । ग. ग्रन्थस्तु पुरैवावसितः ।

"Aho Shrut Gyanam"

कार्याः प्राग्रीवकास्ते च गर्भकोष्ठेन सम्मिताः ।
भूतिरित्येष (सं)प्रोक्तः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ १७२ ॥

मुखायता स्याच्चतुरो भागान्यत्तिर्यगायतान् (?) ।
क्षेत्रवृत्तं ततः कुर्यात् तन्मध्ये गर्भवेश्म च ॥ १७३ ॥

चतुर्भागायतं तत् स्याद् भागद्वितयविस्तृतम् ।
अलिन्दो बाह्यतस्तस्य द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥ १७४ ॥

भागद्वितयविस्तारः प्राग्रीवश्चांशनिर्गतः ।
निषे(ध इति वि?वक इति) ख्यातः प्रासादोऽयं पुरातनैः ॥ १७५ ॥

यदा(?) निषेधः स्यादस्य पुरः प्राग्रीवको यदि ।
चतुर्द्वारपरिक्षिप्तोऽलिन्देनाष्टधरेण वा ॥ १७६ ॥

अयमेवांशकेन स्याद् यदालिन्देन वेष्टितः ।
मुखभागत्रयं मुक्त्वा भित्त्या च परिवेष्टितः ॥ १७७ ॥

यदा च कर्णप्राग्रीवौ प्राग्रीवश्चाग्रतो भवेत् ।
विशेषरचना या च द्वाविंशतिधरान्विता(?) ॥ १७८ ॥

गवाक्षैः शोभनैर्युक्तस्तदा सिंहः प्रकीर्तितः ।
द्वादशांशायते क्षेत्रे तथा षड्भागविस्तृते ॥ १७९ ॥

पश्चादंशद्वयं त्यक्त्वा द्विभागायामविस्तृतः ।
देवकोष्ठो विधातव्यस्तद्द्वारं भागमुच्छ्रितम् ॥ १८० ॥

सीमाग्रे सान्तरा त्र्यंशविस्तृता चतुरायता ।
अष्टस्तम्भोऽस्य गर्भो वै षोडशस्तम्भको बहिः ॥ १८१ ॥

अलिन्दस्तस्य पुरतो वृत्तप्राग्रीवकोऽपि च
सीमाप्राग्रीवकालिन्दकोष्ठान् वृत्तान् प्रकल्पयेत् ॥ १८२ ॥

प्राग्रीवौ पार्श्वयोः सीमासमौ भागविनिर्गतौ ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां युतौ ज्ञेयौ स्तम्भाभ्यां वर्तुलाकृती ॥ १८३ ॥

एतत्सर्वं विधातव्यमलिन्देनाभिवेष्टितम् ।
चतुर्विंशधरोऽयं च भागिकोस्य प्रशस्यते ॥ १८४ ॥

द्विस्तम्भयुक्तान् प्राग्रीवान् कुर्याद् गर्भस्य दिक्त्रये ।
एवमेष समाख्यातः प्रासादः सुप्रभः शुभः ॥ १८५ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

भागद्वितयविस्ताराः प्राग्रीवा येऽस्य कीर्तिताः ।
चतुरश्रास्त एव स्युर्द्विद्विस्तम्भयुता यदि ॥ १८६ ॥

शेषा भवति भित्तिश्च गवाक्षैरुपशोभिता ।
प्रासादोऽयं तदा ज्ञेयो दशमो लोचनोत्सवः ॥ १८७ ॥

अष्टाश्रानथ वक्ष्यामः प्रासादाँल्लक्षणैः सह ।
चतुर्भागान्विते क्षेत्रे तथाष्टाश्रीकृते पुनः ॥ १८८ ॥

द्वौ भागौ गर्भकोष्ठः स्यादलिन्दो भागिकस्तदा ।
स्तम्भाष्टकमलिन्दे स्यात् प्राग्रीवस्तस्य चाग्रतः ॥ १८९ ॥

द्विच्छाद्य(च्छा?च्छा)दितः श्रीमान् प्रासादो वज्रको भवेत् ।
अस्यैवाग्रे यदा सीमा चतुरश्रा चतुर्धरा ॥ १९० ॥

स्याच्चतुर्विंशतिस्तम्भश्चालिन्दो भागिकोऽपरः ।
नन्दनोऽयं समाख्यातः शङ्कुः प्राग्रीवकैस्त्रिभिः ॥ १९१ ॥

तस्य भित्तिर्विधातव्या क्षेत्रेऽष्टाश्रियुते बुधैः ।
वामन(श्र?स्य) पुनर्द्वौद्वौ गवाक्षौ दिक्त्रये मतौ ॥ १९२ ॥

अस्यैवाग्रे यदा सीमाभागाद् भागत्रयायता ।
द्विभागं विस्तृता त्र्यंशसमुच्छेदाष्टभिर्धरैः(?) ॥ १९३ ॥

अलिन्दावेष्टिता युक्ता प्राग्रीवैर्मेखला § तदा ।
भित्तिक्षेत्रे यदास्यैव प्राग्रीवाः परिवेष्टिताः ॥ १९४ ॥

अलिन्देन धरैः षड्भिः षड्भिर्युक्तास्तदा लयः ।
अष्टभागमिते क्षेत्रे कृतेऽष्टाश्रिणि सर्वतः ॥ १९५ ॥

भागद्वयमितं कुर्याद् देवकोष्ठं मनोरमम् ।
चतुर्भिः शोभितं द्वारैर्भागिका(लिन्दवेष्टितम्) ॥ १९६ ॥

अलिन्दस्य विधातव्याः स्तम्भाश्चाष्टौ ततोऽपरः ।
स्याच्चतुर्विंशतिस्तम्भो भागिकोऽलिन्दकः पुनः ॥ १९७ ॥

तथाविधस्तृतीयोऽपि प्राग्रीवाश्च चतुर्दिशम् ।
प्रासादोऽयं महापद्मो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ १९८ ॥

---

§ इहानुक्रमो व्यत्यस्तः । § लक्ष्ये तु मेखल इति पठितः ।

"Aho Shrut Gyanam"

द्विती(यो?ये)ऽलिन्द(क?के)ऽस्यैव प्राग्रीवाः स्युश्चतुर्दिशम् ।
अलिन्देन परिक्षिप्तो हंस एष प्रकीर्तितः ॥ १९९ ॥

प्राग्रीवोऽस्य महापद्मस्यालिन्देनावृतो यदा ।
कर्णप्राग्रीवकौ द्वौ द्वौ व्योमसंज्ञस्तदा भवेत् ॥ २०० ॥

हंसस्यैव वलभ्यः स्युः प्राग्रीवाणां पदे यदा ।
चतुःस्तम्भाः परिक्षिप्ता अलिन्देन चतुर्दिशम् ॥ २०१ ॥

तदा चन्द्रोदयो नाम प्रासादो जायते शुभः ।
एवमेषां चतुष्षष्टिः प्रासादानामुदाहृता ॥ २०२ ॥

इति सुरभवनानां सप्ततिर्द्वारवाणा-
मिह सदनचतुष्केणान्वितेयं प्रदिष्टा ।
जनमयमवकोशानन्दशुभ्रांशुलेखा (?)
भवति सुविदितैषा शिल्पिनां कामधेनुः ॥ २०३ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
रुचकादिचतुष्षष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

अथ प्रासादशुभाशुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ।

प्रासादानामथ ब्रूमो लक्षणानि भवन्ति ये ।
प्रशस्ताश्चाप्रशस्ताश्च तस्मिन्नवनिमण्डले ॥ १ ॥

ये समाः समकर्णाश्च समस्तम्भाः समक्षणाः ।
नैवोच्चा नातिह्रस्वाश्च कर्णायामादविह्वलाः ॥ २ ॥

असंमूढा विभागेन प्रमाणेन सुसंस्थिताः ।
ऊर्ध्वाधः कर्णपादीभिरुपेताः सलिलान्तरैः ॥ ३ ॥

असङ्कीर्णोदयैश्छाद्यैः स्वमानपरिकल्पितैः ।
सुविभक्ताः सुसंस्थाश्च रम्यैरविकलैः कृताः ॥ ४ ॥

समभागविभक्तैश्च युक्ताश्चालिन्दकैः समैः ।
स्वजातिपरिवेषाढ्या नान्यजातिप्रदूषिताः ॥ ५ ॥

असङ्कीर्णाः शरीरेण संस्थानेन सुसंस्थिताः ।
केवला जातिशुद्धाश्च प्रासादाः शुभदा नृणाम् ॥ ६ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

सुदृढैर्मूलपादैश्च दृढाश्चामूलमस्तकम् ।
नाधरोत्तरयुक्ताश्च सुश्लिष्टद्रव्यसन्धिभिः ॥ ७ ॥
दे(वे?श)जातिप्रसिद्धैश्च भूषणैः सुविभूषिताः ।
प्रासादाः शुभदा नित्यं पूजासंस्कारवर्धनाः ॥ ८ ॥
कर्ता कारयिता चैषां परां वृद्धिमवाप्नुयात् ।
अधमानपि वक्ष्यामः प्रासादानवलक्षणैः ॥ ९ ॥
विषमाः कर्णहीनाश्च क्लेशबन्धभयावहाः ।
स्तम्भैः क्षणैश्च विषमैः स्वामिनो मृत्युहेतवः ॥ १० ॥
अत्युच्चैः स्याद् भयं राज्ञो ह्रस्वैः सेना च मध्यते ।
कर्णायामेन विकलाः प्रासादाः स्युर्भयङ्कराः ॥ ११ ॥
विभागेन विहीनास्तु दारिद्र्यभयदाः स्मृताः ।
नष्टाभिः कर्णपादीभिरुद्वेगजनना नृणाम् ॥ १२ ॥
छाद्यैः सङ्कीर्णकैर्हीनैः कुलक्षयकराः स्मृताः ।
दुर्विभक्ताः कुसंस्थाश्च द्रव्यैर्विकलसंयुतैः ॥ १३ ॥
रोगं क्लेशं च मृत्युं च क्रमशो वितरन्ति ते ।
विषमैर्भागहीनैश्चाप्यलिन्दैर्व्याधितो भयम् ॥ १४ ॥
पराजयं परिवृतैरन्यजातिप्रदूषितैः ।
ये परावृतयो येऽन्यसङ्कीर्णा येऽन्यविग्रहाः ॥ १५ ॥
कर्तुः कारयितुर्नैते नन्दका वापि चात्मनः ।
दुर्बला मूलपादेन विश्लिष्टैः पीठसन्धिभिः ॥ १६ ॥
अल्पायुषस्ते प्रासादा भवन्ति च भयावहाः ।
अधरोत्तरगैः श्लिष्टैर्विज्ञेया व्याधिकारिणः ॥ १७ ॥
अदेशैर्भूषणैर्युक्ताः प्रासादा न सुखावहाः ।
ये कीर्त्तिमिच्छन्ति जयन्ति भूतान् कुर्युः शुभैर्लक्ष्मभिरन्वितांस्ते ।
प्रासादमुख्यानितरे तु वर्ज्यास्तेजोयशःश्रीविजयादिकामैः ॥ १८½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

प्रासादशुभाशुभलक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अथायतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।

एवं नृपस्य प्रासादे कृते क्लृप्तेऽथवा भुवि ।
तस्यानुजीविनः कुर्युः प्रासादान् परिधौ यदि ॥ १ ॥
तदा दिग्भागविन्यासस्थानमानान्यनुक्रमात् ।
तेषामिहाभिधीयन्ते सर्वेषां वृद्धिहेतवे ॥ २ ॥
दशाष्टौ षट् च धनुषां शतानि क्ष्माभृतां क्रमात् ।
मानमायतनस्योक्तं त्रेधा श्रेष्ठादिभेदतः ॥ ३ ॥
क्षेत्रमायतनस्यैवं चतुरश्रं समन्ततः ।
तत्र भक्ताः प्रकुर्वीरंस्त्रिधा स्वे स्वामिवत्सलाः ॥ ४ ॥
ये चास्य सम्मताः केचित् कुले जाता हितैषिणः ।
द्वादशांशेन हीनानि क्रमात् तान्यनुजन्मनाम् ॥ ५ ॥
तस्यैव वामतः कुर्यादुत्सेधाद् द्विगुणान्तरे ।
कुर्याद् दशांशहीनानि नैर्ऋत्यां दिशि भूपतेः ॥ ६ ॥
प्रासादान्नृपपत्नीनां सर्वासामपि शास्त्रवित् ।
अष्टभागेन हीनानि प्रतीच्यां दिशि कारयेत् ॥ ७ ॥
देवधिष्ण्यानि तन्त्रैः स्यात् स्वसुराणां विधानतः(?) ।
सौम्याया मारुतीं यावन्नवांशापचिताः क्रमात् ॥ ८ ॥
प्रासादा मन्त्रिसेनानीप्रतीहारपुरोधसाम् ।
एतेषां पूर्वभागस्थं राजमातुर्निवेशनम् ॥ ९ ॥
हीनमेकादशांशेन तत् कार्यं राजकारिता(?) ।
ऐशीमाश्रित्य देवानां तुल्यमैन्द्रपदावधि ॥ १० ॥
स्वसॄणां मातुलानां च कुमाराणां तथा क्रमात् ।
आग्नेय्यां द्विजमुख्यानां विधातव्यं निवेशनम् ॥ ११ ॥
कार्यः पुरोधःप्रासादः तुल्यतत्पुनरेव वा(?) ।
याम्यायां कुर्युरष्टांशहीनान्युर्वीशमन्दिरात् ॥ १२ ॥
सामन्तकुञ्जरारोहभटपौरजनाः क्रमात् ।
एतान्यायतनान्येषां यथाभागं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

मर्मवेधप्रदेशस्थान् द्वारवेधगवानपि ।
स्वस्थानान्तरितांश्चैतान् न कुर्याद्धितकाम्यया ॥ १४ ॥

अलिन्दैर्गर्भकोष्ठैश्च सीमास्तम्भगवाक्षकैः ।
द्वारद्रव्यतलोच्छ्रायैः प्राग्रीवैः सिंहकर्णकैः ॥ १५ ॥

न कुर्याद् भूषणैस्तुल्यं समं वास्थंदरूपतः (?) ।
समरूपं भवद्धर्म्यं निर्युक्तं च न नन्दति ॥ १६ ॥

राजपीडा भवेत् तस्मिन्नाधिक्ये च कुलक्षयः ।
प्रासादाद् भूमिपालस्य निवेशं परिधौ स्थितम् ॥ १७ ॥

द्रव्येण कतरेणापि नोत्कृष्टं कारयेद् बुधः ।
संस्थानान्मानतश्चापि विस्तारेणोच्छ्रयेण वा ॥ १८ ॥

पूर्वोक्तेभ्यो विभागेभ्यः किञ्चिद्धीनतमः शुभः ।
अन्योन्यं द्विगुणच्छाद्यैरेकैकस्यान्तरं शुभम् ॥ १९ ॥

सुभोग्यं तं च कुर्वीत बहुभिर्भवनान्तरैः ।
कोष्ठिकाभोजनागारैर्भाण्डोपस्करधामभिः ॥ २० ॥

शिलालूषात(?)शालाभिः शेषं तु परिपूरयेत् ।
प्रशस्तान् कारयेत् सर्वाञ् शुभरूपान् मनोरमान् ॥ २१ ॥

प्रायशः स्वालयांश्चान्यान् सर्वस्यान्यगृहाणि च ।
नरेन्द्रायतनस्यैव निवेशात् परिकल्पयेत् ॥ २२ ॥

अन्यथात्वे महादोषा वैपरीत्ये कुलक्षयः ।
इति कथितदिगादिभेदयोगैः
सुरभवनानि भवन्ति यस्य राज्ञः ।
अविरतमुदितोदितप्रतापः
स्वभुजजितां स चिरं प्रशास्ति पृथ्वीम् ॥ २३$\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
आयतननिवेशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अथ प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ।

अवतारो निवेशानां विधानं वास्तुनो यतः ।
कार्त्स्न्येन तमतो ब्रूमः सभ्यस्य प्रसवोत्तमः (?) ॥ १ ॥

कुलजातिक्रमाणां च क्रमं दीर्घाल्पजीविनाम् ।
संस्थानमभिधास्यामो लक्ष्यलक्षणमेव च ॥ २ ॥

शुभाशुभानां वैराजमादिं तेषां प्रचक्षते ।
पूर्वोक्तस्य विमानस्य तस्यातो लक्ष्म कथ्यते ॥ ३ ॥

वैराजस्य यथाकारव्यवस्थानमशेषतः ।
चतुरश्रं समं क्षेत्रमशीत्यंशैर्विभाजयेत् ॥ ४ ॥

संयुक्तमष्टभिर्भागैः कुर्याद् गर्भगृहं शुभम् ।
द्विपञ्चाशद्भिरैः सीमा गर्भकोष्ठसमन्विताः ॥ ५ ॥

द्वात्रिंशता देवकोष्ठैः सर्वैरेकान्तरैश्च तैः ।
बाह्यस्थाने ततः स्थानाद् द्वादशक्षोभणैर्धरैः ॥ ६ ॥

हेमरत्नमयैः स्तम्भैः शुक्रपट्टैश्च भूषितैः ।
शुक्रालङ्कारखचितैर्वितानैश्च विभूषणैः ॥ ७ ॥

स्फाटिकैर्विविधैर्जालैः सहरिन्मणिवेदिकैः ।
हंसकर्णकपोतालीतिर्यक्स्थाल्यर्धकर्णिकैः ॥ ८ ॥

पर्यन्तदेशधृतया गर्भस्योपरि घण्टया ।
लोकनाथेन तत् सृष्टमाद्यं वैराजसंज्ञितम् ॥ ९ ॥

तस्मात् स्वस्तिकसंज्ञः प्राग् गृहच्छन्दो विजायते ।
चतुश्शालस्त्रिशालश्च हिरण्यीकस्त्वतोऽपिच ॥ १० ॥

सिद्धार्थको द्विशालः स्यादेकशालस्तु कुम्भकः ।
सृष्टमन्यद् विमानं च वरं वीरं चतुर्मुखम् ॥ ११ ॥

गणानां देवतानां च स्कन्दस्य च यथाक्रमम् ।
प्रासादा द्वादशैतेऽन्ये जज्ञिरे शुभलक्षणाः ॥ १२ ॥

स्वस्तिकः श्रीतरुश्चैव तृतीयः क्षितिभूषणः ।
भूजयो विजयो भद्रः श्रीकूटोष्णीषसंज्ञितौ ॥ १३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

नन्द्यावर्तो विमानश्च सर्वतोभद्र एव च ।
विमुक्तकोणप्रासाद इति वैराजसंभवाः ॥ १४ ॥

एकैकस्मात् क्रमेणैवमेकैकः समजायत ।
स्वस्तिकाद् रुचको ज्ञेयः श्रीतरोः सिंहपञ्जरः ॥ १५ ॥

क्ष्माभूषणात् तु शाला स्याद् भूजयाद् गजयूथपः ।
विजयादवतंसश्च भद्रान्नन्दी विनिर्गतः ॥ १६ ॥

श्रीकूटाच्चित्रकूटाख्य उष्णीषात् प्रमदाप्रियः ।
व्यामिश्रो नन्दिकावर्ताद् विमानाद्धस्तिजा(व?ति)कः ॥ १७ ॥

कुबेरः सर्वतोभद्रान्मुक्तकोणाद् धराधरः ।
एतेभ्योऽपि च संभूताः कनीयांसोऽभिधानतः ॥ १८ ॥

तद्भेदास्ते तदाकारैर्लक्ष्याः स्वैः स्वैः पृथग्विधैः ।
भागैस्तेषूत्तमैः पूर्वान् मध्यमान् मध्यमैस्तथा ॥ १९ ॥

कनीयसः कनीयोभिः प्रासादानुपकल्पयेत् ।
शिखरैरपरैः श्लिष्टाः प्रासादा जज्ञिरे ततः ॥ २० ॥

प्रथमो रुचकस्तेषु द्वितीयो वर्धमानकः ।
अवतंसस्तृतीयस्तु चतुर्थो भद्र उच्यते ॥ २१ ॥

पञ्चमः सर्वतोभद्रः षष्ठः स्यान्मुक्तकोणकः ।
मेरुर्मन्दर इत्यष्टौ विज्ञेयाः शिखरोत्तमाः ॥ २२ ॥

चतुरश्राः समाख्याता देवानामालयाः शुभाः ।
एते ते वंशजाः सर्वे निवेश्या ब्रह्मजातयः ॥ २३ ॥

वैराजकुलसंभूताः प्रासादाः परमोत्तमाः ।
एतेभ्योऽन्येऽपि संभूताः पुत्रपौत्रप्रपौत्र(य?जा)ः ॥ २४ ॥

स्ववंशाः सुपरीवाराः परवंशविवर्जिताः ।
कर्तव्या भूतिकामेन तेजसा शुभलक्षणाः ॥ २५ ॥

नन्दका वर्धनाश्चैव सर्वकामफलप्रदाः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णाः पूजासंस्कारवर्धनाः ॥ २६ ॥

यदि हीना भवन्त्येते परवंशेन दूषिताः ।
तदुद्वेगं नृणां नित्यमर्थनाशं कुलक्षयम् ॥ २७ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

पीडां च स्वामिनः कुर्युर्यदन्यदपि गर्हितम् ।
तस्मादेते विधातव्या दूषिता नान्यजातिभिः ॥ २८ ॥

इति वैराजजातानामुत्पत्तिः परिकीर्तिता ।
वैराजजन्मगुरसन्नपरम्परेय-
मुक्तैवमत्र शुभलक्ष्मवती समासात् ।
आनन्दकीर्त्तिधनधान्यकरी कृता स्या-
दन्यादृशी पुनरनर्थफलैव कर्तुः ॥ २९ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

प्रासादजातिर्नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ।

ब्रूमो जघन्यवास्तूनां द्वारमानमतः परम् ।
विस्तारं सतलोच्छ्रायं द्रव्यव्यासविधिं तथा ॥ १ ॥

कथिता ये निराधाराः प्रासादास्तिर्यगायताः ।
तेषां भागचतुष्केण गर्भवासं विभाजयेत् ॥ २ ॥

द्वारं सार्धेन भागेन कुर्वीत स्वार्धविस्तृतम् ।
द्वारविस्तारपादेन पेद्याया विस्तृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

विस्तारार्धेन पिण्डः स्यात् तत्समः स्यादुदुम्बरः ।
सार्धमूलादुम्बरकः(?)शाखा व्यासवशाद् भवेत् ॥ ४ ॥

चतुर्विधश्च कर्तव्यः पेद्यापिण्डः प्रमाणतः ।
शाखा तु पेद्यापिण्ड(श्च?स्य) विस्तारेण विधीयते ॥ ५ ॥

शाखाविस्तारतो रूपशाखा स्यात् सार्धविस्तृतिः ।
अर्धेन पेद्यापिण्डस्य खल्वशाखा विधीयते ॥ ६ ॥

रूपशाखासमाः कार्या विस्तारात् तुङ्गशाखिकाः ।
तुङ्गाया बाह्यतः शाखाः क्रियन्ते यास्तु काश्चन ॥ ७ ॥

अष्टांशाभ्यधिकाः सर्वाः कर्तव्या विस्तरेण ताः ।
द्वारस्यायामविस्तारयोगात् सङ्ख्या भवेत् तु या ॥ ८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

तलोदयस्य तन्मानं गर्भमण्डपयोः समम् ।
यदि भिन्नतलं कर्तुं मण्डपः कश्चि हीयते(?) ॥ ९ ॥

द्वारोच्छ्रिते तद्गुणानां मण्डपे स्यात् तलोच्छ्रितिः ।
प्रासादेषु कनीयस्सु तलमानमुदाहृतम् ॥ १० ॥

षड्भागाभ्यधिकं ज्येष्ठे मध्येऽष्टांशाधिकं ततः ।
बलविधिः(?) समपदः प्रासादस्य विधीयते ॥ ११ ॥

नाधस्तात् स प्रयोक्तव्यो नोर्ध्वतश्चाप्युदुम्बरात् ।
कुम्भिकाभरणपट्टजयन्तीशीर्षकायफलकेषु तुला(नाम्) ।
उक्त(मान)मिह यत् प्रथमं तन्नाधिकं प्रविदधीत न हीनम् ॥१२$\frac{1}{2}$॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
जघन्यवास्तुद्वारं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ प्रासादद्वारमानादि नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ।

इदानीमभिधास्यामः प्रासादानां यथाक्रमम् ।
द्रव्येषूदयविस्तारं बाहल्यं परिधिं तथा ॥ १ ॥

प्रासादभागिकोत्सेधं प्रासादद्वारमिष्यते ।
स(त्र्यं?त्रियं)शोच्छ्रितं वापि सार्धांशोच्छ्रयमेव वा ॥ २ ॥

स्वीयस्वीयोदयादर्धविस्तारं च तदिष्यते ।
विस्तृतिर्भागतुर्यांशात् पेद्यायाः स्थौल्यमर्धतः ॥ ३ ॥

पेद्याबाहल्यविस्तीर्णा शाखा भवति मानतः ।
उत्तराङ्गानि कुर्वीत पेद्याशाखासमानि तु ॥ ४ ॥

सपादपेद्याविस्तारा रूपशाखा विधीयते ।
रूपशाखान्वितः कार्यः पीठबन्धस्तथोपरि ॥ ५ ॥

वृत्तं कार्यमधोवृत्ते पत्रकैश्च निरन्तरम् ।
स्तम्भाश्च द्विगुणव्यासं भरणं भूषणान्वितम् ॥ ६ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

रूपशाखासमं तच्च कर्तव्यमतिसुन्दरम् ।
ऊर्ध्वे समन्ताच्चाष्टांशमात्रे तच्चतुरश्रकम् ॥ ७ ॥

तदूर्ध्वं भरणोच्छ्रायः स्यात् पादोनसमुच्छ्रितिः ।
कपोतश्चाप्यधश्शीर्षगर्भः स च विधीयते ॥ ८ ॥

सरथालयपत्रो वा स्वोदयार्धविनिर्गमः ।
तस्योपरिष्टात् कर्तव्यं स्यादुच्छालयपत्रकम् (?) ॥ ९ ॥

रथिका[1] (तु) विधातव्या द्वयोरप्युच्छ्रितिस्तयोः ।
सार्धप्रमाणभरणाद् भूषा स्यात् पुष्पकादिभिः ॥ १० ॥

रूपकैर्वा यथाशोभं स्तम्भिकाभिश्च सर्वतः ।
कण्टकोयत्रिभागोन(?) कूटाकारं भवेदतः ॥ ११ ॥

विभूषितं सिंहचक्रैर्हस्तितुण्डैरथापि वा ।
कपोतादि विधातव्यमन्तरे रूपशाखयोः ॥ १२ ॥

कार्यं विषमसंख्यं च सर्वमेतद् विचक्षणैः ।
तस्माद् बहिर्विधातव्या सर्वतः परिमण्डली ॥ १३ ॥

अन्त्यशाखासमा सा च प्रमाणेन विधीयते ।
तस्यां सद्वारशाखायां (प्रा)ग्रशः पद्मपत्रिकाः ॥ १४ ॥

कार्या(त्रा वाच?वा द्वार)शाखायास्तद्विस्तारसमुच्छ्रिताः ।
भवेदधस्तादर्धेन ग्रीवाया रसना तथा ॥ १५ ॥

ग्रीवया सार्धया तुल्यमन्तरं पत्रकाण्यधः ।
भागद्वयं प्रकुर्वीत जङ्घा त्र्यंशा ततोऽप्यधः ॥ १६ ॥

पेद्यापिण्डप्रमाणेन खल्वशाखा विधीयते ।
पेद्यापिण्डसमो बाह्यशाखान्यासः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥

क्रमेणानेन कर्तव्याः शाखाः स्वल्पा यदृच्छया ।
न नवभ्यः परं कार्या द्वारशाखाः कथञ्चन ॥ १८ ॥

निर्गमो वा प्रवेशो वा[3] विस्तारेण समन्वितः ।
पेद्याया यदि वार्धेन शाखानां स विधीयते ॥ १९ ॥

---

१. 'थि', २. खास्तत्रय', ३. 'वा सवि', ४. 'संमितः' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

सार्धपेद्यापिण्डसमः पिण्डस्योदुम्बरो भवेत् ।
तलन्यासस्तदर्धेन भूमिर(ङ्गा च?ङ्गाश्च) तत्समाः ॥ २० ॥
उदुम्बरकपिण्डस्य मानात् सिंहमुखानि च ।
उदुम्बरात् पादहीनस्तुल्यो वाभ्यधिकोऽथवा ॥ २१ ॥
पट्टस्य पिण्डस्त्रिविधो विस्तारात् स्तम्भतोऽधिकः ।
भागपादसमस्तम्भो द्वादशांशं मपीडितः ॥ २२ ॥
भागद्वये च कर्तव्यो रूपलक्षणसंयुतः ।
चतुष्षष्टिप्रकारोऽयं नानारूपप्रपञ्चतः ॥ २३ ॥
स्तम्भविस्तारविस्तीर्णं पिण्डे तत्पादवर्जितम् ।
विस्तारात् त्रिगुणं दैर्घ्याद्धीरग्रहणमिष्यते ॥ २४ ॥
प्रविष्टौ स्तम्भमाने स्तः कुम्भिकोत्कालकौ सदा ।
तलपट्टसमं पट्टमुत्तरं परिकल्पयेत् ॥ २५ ॥
(ती?ही)रं तस्य त्रिभागेन समुत्सेधाद् विधीयते ।
किञ्चिद् विनिर्गतं पट्टाद् यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥
अत ऊर्ध्वं यथाशोभं कण्ठकैर्नासनेन च ।
रथकैश्चित्ररूपैश्च कूटागारैः सतोरणैः ॥ २७ ॥
अलिन्दे मण्डपे वापि चतुष्के वलभीषु वा ।
वितानानि विचित्राणि समुत्क्षिप्ततलानि च ॥ २८ ॥
लक्षणेन च युक्तानि विदधीत यथोचितम् ।
लुमाः फलकवर्तीभिः कृताः समभिदध्महे ॥ २९ ॥
उत्क्षिप्तानां च ये भेदा जायन्ते सर्ववास्तुषु ।
तुम्बिनी लम्बिनी हेला शान्ता कोला मनोरमा ॥ ३० ॥
आध्माता चेति सप्तैता नामतः कथिता लुमाः ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कान्ते भूमितले शुभे ॥ ३१ ॥
सूत्रं क्षेत्रसमं कृत्वा कर्णात् कर्णं विभाजयेत् ।
विन्यस्येद् गर्भसूत्राणि तयोर्मध्यगतानि च ॥ ३२ ॥

१. 'र्धा' ख. पाठः। २. 'मा', ३. 'ह' क. पाठः। ४. 'स्त', ५. 'दः' ख. पाठः। ६. 'नी', ७. 'को' क. पाठः। ८. 'न' ख. पाठः। ९. 'माफ', १०. 'ता स' क. ख. पाठः। ११. 'रुचिनी', १२. 'माः', १३. 'पूर्वे का' ख. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

भूयश्चान्यानि मध्येषु सूत्राणि विनिवेशयेत् ।
मध्ये वृत्तं समालिख्य तुम्बिका[1] कमलोपमा ॥ ३३ ॥

कार्या भागीकृतं तत्र वृत्तं क्षेत्रे[2] प्रवर्तयेत् ।
सूत्रे सूत्रे तु[3] पिण्डस्थां लुमां[4] सूत्रेण वालिखेत् ॥ ३४ ॥

लुमान्तरेषु सर्वेषु वैकट्येन[5] घुषीकृतम् ।
तयोरन्तरयोर्मध्ये लुमामूले त्रिकर्करम् ॥ ३५ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं वा स्यात् ततश्च वलिनीं लिखेत् ।
व्यासार्धेनोदयश्चेह कर्तव्यस्तत्र मण्डले ॥ ३६ ॥

सम्पातात् तलसूत्राणां तुम्बिका[6] चोर्ध्वसूत्रिता ।
उदयस्तलसूत्रस्य[7] तुम्बिकायास्तथान्तरम् ॥ ३७ ॥

पूर्वसूत्रे[8] लुमाग्रेषु कण्टकान् कल्पयेद् ऋजून् ।
बहिस्थानेषु चान्तेषु लक्षं कुर्यात् सुनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

लक्षं[9] गृहीत्वाधःसूत्र ऊर्ध्वसूत्राणि लक्षयेत् ।
उदये कण्टकस्यान्ते तद्वदेवानुसन्ततम् ॥ ३९ ॥

दापयेदुत्तरं सूत्रं लुमानां खल्वकानि[10] च ।
पिण्डव्यासं वलीनां चाप्येषु क्षोभणविस्तृती ॥ ४० ॥

लुमा कर्णगता या स्यादाध्माता सा प्रकीर्तिता ।
छेदे प्रवर्तितान्या[11] स्यात् किञ्चिदूना मनोरमा ॥ ४१ ॥

कोला तृतीया शान्तेति चतुर्थी परिकीर्तिता ।
हेलाख्या पञ्चमी षष्ठी लम्बिनी नामतो[12] लुमा ॥ ४२ ॥

सप्तमी तुम्बिनीत्येता मार्गसूत्रविनिर्गताः ।
एताभिः कारयेत् कोलं[13] वितानं नयनोत्सवम् ॥ ४३ ॥

कोलाबिलं हस्तितालु चाष्टपत्रं शरावकम् ।
नागवीथीवितानं च पुष्पकं भ्रमरावली ॥ ४४ ॥

१. 'रुचिका' ख. पाठः । २. 'त्रं', ३. 'ण', ४. 'मासू' क. ख. पाठः । ५. 'काद्येन', ६. 'रुचिका', ७. 'मू' ख. पाठः । क. पाठः । ८. 'त्रेषुमाग्र' क. पाठः । ९. 'वलं ग्र', १०. 'ल्वि', ११. 'र्तिन्य+स्याः', १२. 'तस्तुला', १३. 'का' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

हंसपक्षं करालं च विकटं शङ्खकुट्टिमम् ।
शङ्खनाभिः सपुष्पं च शु[1]क्ति(वृ?ट्ट)त्तकमेव च ॥ ४५ ॥
मन्दारं कुमुदं पद्मं विकासं गरुडप्रभम् ।
पुरोहतं पुरारोहं विद्युन्मन्दारकं तथा ॥ ४६ ॥
एतान्येवं वितानानि सङ्ख्यया पञ्चविंशतिः ।
एतेषां रूपनिर्माणमधुना संप्रचक्ष्महे ॥ ४७ ॥
समन्ताच्चतुरश्रे च चतुरश्रायतेऽथवा ।
क्षेत्रे वृत्तीकृते नाभ्यै[2]कया तत् कोलमुच्यते ॥ ४८ ॥
चतुरश्रे यदा क्षेत्रे कर्णस्थानेषु कृत्स्नशः ।
चतुरश्रनिबन्धेन चतुरश्रनिबन्धने ॥ ४९ ॥
[3]वलिनी विकटाकारा पूर्वं[4] वृत्तान्यधस्तथा ।
भ्रमवृत्तं च यन्मध्ये परं तत्रापरा लुमाः ॥ ५० ॥
क्रियन्ते तुम्बिकाः पञ्च यत्र सुस्थाः सुसंवृ[6]ताः ।
मार्ग्र(?)स्तलेऽधःसूत्रस्य तद् भवेन्नयनोत्सवम् ॥ ५१ ॥
कोलाविलं समे क्षेत्रे भागाष्टकविभाजिते ।
मध्ये द्विभागे विलिखेद् वृत्तं तुम्बिकयान्विते ॥ ५२ ॥
तत्र भ्रमान्ते च सूत्रे भ्रमान् षोडश कारयेत् ।
ऋजूनि यानि सूत्राणि लुमास्ताः परिकल्पयेत् ॥ ५३ ॥
यानि शेषाणि सूत्राणि वलिनीस्ताः प्रकल्पयेत् ।
तुम्बिन्यां कारयेद् वृत्तं गजतालुकमुच्यते ॥ ५४ ॥
अष्टपत्रे चतुष्षष्टिभागं क्षेत्रं प्रकल्पयेत् ।
लुमास्थानेषु पत्राणि खण्डितान्यन्तरैस्तथा ॥ ५५ ॥
सम्पातेषु समस्तेषु तुम्बिकाः सन्निवेशयेत् ।
वृत्ताकारं शरावं स्याद् विन्यासं च धरैश्च तत् ॥ ५६ ॥
चतुरश्रेऽथवा वृत्ते भागत्रयविभाजिते ।
निवेशये[7]न्नागबन्धं † सम्पाते वलिसूत्रयोः ॥ ५७ ॥

१. 'मु', २. 'भै', ३. 'ब', ४. 'र्वां' क. पाठः । ५. 'स्व', ६. 'स्थिता ।', ७. 'स्व' ख. पाठः ।

† नागवीथीति लक्ष्ये पाठितम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

वितानमेतत् कथितं यश्चिकीर्षति मानवः ।
ऊर्ध्वतिर्यग्गतैर्नालैः क्रियते यन्निरन्तरम् ॥ ५८ ॥
पुष्पमालाकुलं श्रीमत् पुष्पकं तदुदाहृतम् ।
अशोकपल्लवाकीर्णलुमाभ्रमनिबन्धनम् ॥ ५९ ॥
चतुरश्रक्रियायुक्तं सा प्रोक्ता भ्रमरावली ।
आध्माता कर्णमायाता तुम्बिकास्थानसंश्रया ॥ ६० ॥
तुम्बिनी यत्र मध्ये तु हंसपक्षं तदुच्यते ।
अस्यैव पक्षे तु यदा सम्बध्येत मनोरमा ॥ ६१ ॥
तुम्बिनी च विपक्षेषु करालं तदुदाहृतम् ।
कोला लुमा स्याद् विकटे शङ्के शान्ता प्रकीर्तिता ॥ ६२ ॥
शङ्कनाभिसमं सूत्रं तुम्बिकायाः प्रवर्तते ।
सर्वेष्वपि लुमास्थानेष्वेकरेखान्वितं भवेत् ॥ ६३ ॥
शङ्कनाभिरिति प्रोक्तं वितानमिदमुत्तमम् ।
एतस्यैव लुमास्थाने तुम्बिका पद्मकावृता ॥ ६४ ॥
वलयैर्भूषिता यत् स्यात् सपुष्पमिति तद् विदुः ।
क्षेत्रे वृत्तायताकारे कारयेच्छुक्तिसंज्ञकम् ॥ ६५ ॥
वृत्ताकारे भवेत् क्षेत्रे वृत्तं वलयकर्मणा ।
चतुरश्रे समे क्षेत्रे यल्लुमार्धलुमर्ध(ते?तः) ॥ ६६ ॥
वृत्तक्षोभणभङ्गानि तन्मन्दारकमुच्यते ।
कुमुदं कुमुदस्येव लुमाक्षेपादिहार्धतः ॥ ६७ ॥
पद्मके स्यादधःक्षिप्ता विकासे मध्यमा लुमा ।
गरुडे गरुडो मध्ये नागाभरणशोभितः ॥ ६८ ॥
§पुरोगतं तद् यदधो गत्वा स्यादूर्ध्वगं पुनः ।
अधो गत्वा पुरारोहमूर्ध्वमूर्ध्वं ततोऽप्यधः ॥ ६९ ॥
विचित्रक्षोभणाकीर्णमन्ते वृत्तं मुहुर्मुहुः ।
अष्टभिश्चाश्रिभिर्मध्ये विद्युन्मन्दारकं भवेत् ॥ ७० ॥

---

१. 'नामतः' ख. पाठः । २. 'स' क. पाठः । ३. 'त्रा', ४. 'दर्धगतं पु' ख. पाठः ।

---

§ पुरोहतमिति तु लक्ष्ये पठितम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

मानोन्मानमथ ब्रूमः प्रासादच्छाद्यसंश्रयम् ।
अर्धेनच्छाद्यविस्तारस्योर्ध्वे वंशं प्रकल्पयेत् ॥ ७१ ॥

अयमर्धोदयः प्रोक्त आवन्त्यो नामतः परः ।
त्र्यंशेनच्छाद्यविस्तारस्योदयो वामनो भवेत् ॥ ७२ ॥

वामनावन्त्ययोर्मध्ये नवधा प्रविभाजयेत् ।
भागोत्तरोदयात् तेऽष्टौ वामनादुदयाः स्मृताः ॥ ७३ ॥

(वा?आ)तपत्रोऽथ कौबेरः (स?श)मनाख्यस्तथावली ।
हंसपृष्ठो महाभोगी नारदः शम्बुकस्तथा ॥ ७४ ॥

वामनः प्रथमस्तेषामाव(न्त्योते?न्त्येन) दशेत्यमी ।
छाद्यानामथ वृत्तानामुदयः प्रोच्यतेऽधुना ॥ ७५ ॥

तलसूत्रसमं कृत्वा कुर्याद् द्वादशधोदयम् ।
षष्ठादारभ्य भागात् स्युः सप्त भागोत्तरोदयाः ॥ ७६ ॥

कुबेरशेखरी चन्द्री नागश्चा(तु?थ) गणाधिपः ।
मुख्यश्चोछः सुभद्रश्च वृत्ते सप्तोदयाः स्मृताः ॥ ७७ ॥

कृत्वा त्रिकर्करपदं लुमापृष्ठं लिखेत् ततः ।
भागार्धमधिकं क्षेत्रे भवेच्छाद्यकवर्तना ॥ ७८ ॥

भागार्धवर्धिते क्षेत्रे तलसूत्रक्रमान्विते ।
लुमामाद्यां लिखेद् भूयः षट् क्रमेणानुसन्ततम् ॥ ७९ ॥

रिक्षा यथाद्विहस्ताय(?) लुमायाः स्यादनन्तरम् ।
लुमा त्रिभागहीनेन परिवृद्धाङ्गुलेन सा ॥ ८० ॥

तस्याश्चानन्तरा लक्ष्म्या सार्धं वृद्धाङ्गुलत्रयम् (?) ।
त्र्यंशोनैः षड्भिरपरा त्र्यंशोनैर्दशभिः परा ॥ ८१ ॥

चतुर्दशभिरन्या स्यात् सार्धैर्वृद्धा ततोऽङ्गुलैः ।
विंशत्यङ्गुलवृद्धा तु सप्तमी कोणसंश्रिता ॥ ८२ ॥

क्रमेणानेन मानानि लुमानां वृद्धिह्रासयोः ।
अनुपातेन कार्याणिच्छाद्यक्षेत्रानुसारतः ॥ ८३ ॥

---

१. 'स्योदयस्यव्यसनो' (?) क. पाठः । २. 'भा' ख. पाठः । ३. 'न्त्यौते' क. पाठः । ४. 'गाः' ख. पाठः । ५. 'श्छाद्यः', ६. 'त्राद् भ', ७. 'श्चामंभरायक्ष्म्या सा' क. पाठः । ८. 'लंद्वयम्', ९. 'द्धां' ख. पाठः । १०. 'ताः', ११. 'न नामानि' क. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

† कुबेरवल्लरीचन्द्रीपन्नगा गणनायकः ।
* मुग्धा सुभद्रेत्येताः स्युर्लुमाकर्माधमादितः ॥ ८४ ॥

एतासां गण्डिकाछेदाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
ऊर्ध्वस्तिर्य(र्ग?ग्ग)तिस्त्र्यंशस्तथार्धत्र्यंश एव च ॥ ८५ ॥

छाद्यकोदयविस्तारं तन्निर्गमसमायति ।
कृत्वा षोढा भजेत् क्षेत्रं विस्तारायामतः समम् ॥ ८६ ॥

तत्रोर्ध्वद्रव्यमानेनच्छिन्द्यात् प्रागेव गण्डिकाम् ।
तस्यां छेदानुसारेण दापयेदेव लम्बकम् ॥ ८७ ॥

अधस्ताद् गण्डिकायाश्च कण्टकानि प्रकल्पयेत् ।
अवपातोच्छ्रयौ ज्ञात्वा त्रीणि स्थानानि चिह्नयेत् ॥ ८८ ॥

गर्भे तथोर्ध्वे प्रान्ते च तृतीयं मध्यतस्तयोः ।
यत्र स्थाने स्थितं सूत्रं स्पृशति स्थानकत्रये ॥ ८९ ॥

तस्मात् प्रसार्य तत्सूत्रं भ्रमयेत् कर्कटं ततः ।
लुमार्धस्यैवमुपरिसंस्थानमुपजायते ॥ ९० ॥

उपरि स्थितेन सूत्रेण तत्तुल्येनैव कर्कटम् ।
प्रान्तावलम्बकस्थाने भ्रमयेत् खल्वसिद्धये ॥ ९१ ॥

प्रागक्षे भागयुगलावच्छिन्नं फलके पुनः ।
कल्पयेत् सममेवैषा लुमापार्ष्णिर्निगद्यते ॥ ९२ ॥

शेषां लुमां तु दीर्घांशैश्चतुर्भिः प्रविभाजयेत् ।
चतुर्थांतः परं तस्याः कर्तव्यं वृत्तवर्तनम् ॥ ९३ ॥

अर्धोदये लुमोच्छ्रायो विस्तारांशद्वयोन्मितः ।
मूलेऽग्रतश्च भागार्धमुदयोऽस्या विधीयते ॥ ९४ ॥

अधःक्षेत्रे स विस्तारात् सूत्रमालम्ब्य तद्यथा ।
विस्तारात् सदृशे क्षेत्रे सार्धतद्भागमाश्रितः ॥ ९५ ॥

---

१. 'न्द्रा' ख. पाठः । २. 'स' क. पाठः । ३. 'गा', ४. 'प्राक्क्षेत्रे भा', ५. 'मायता ।' ख. पाठः ।

---

† 'कुबेरशेखरी'ति पूर्वं पठितम् । * 'मुख्य' इति पूर्वं पठ्यते । तदनन्तरं च 'अच्छ' इति नामान्तरमपि तत्र दृश्यते ।

"Aho Shrut Gyanam"

लुमाग्रभागत्र्यंशं च तयोर्मध्यं च यत् स्थितम् ।
सूत्रं स्पृशेत् तत्र धृत्वा कर्कटं भ्रमयेद् बुधः ॥ ९६ ॥

भागभागोत्तरक्षेत्रापेक्षया चतसृष्वपि ।
गण्डिकासु विधातव्यं विधिवद् वृत्तवर्तनम् ॥ ९७ ॥

मूलाल्लुमायाः क्षेत्रस्य पञ्चमांशत्रयेऽथवा ।
पृथुत्वार्धे लुमापृष्ठलेखावृत्तद्वयं यथा ॥ ९८ ॥

संपतत्येवमालिख्य शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
लुमाया मूलतः क्षेत्रसप्तमांशचतुष्टये ॥ ९९ ॥

पृथुत्वार्धे लुमापृष्ठलेखावृत्तद्वयं यथा ।
संपतत्येवमालिख्य षड्भागैः शेषमाचरेत् १०० ॥

नवांशपञ्चके यद्वा क्षेत्रस्यैव लुमादितः ।
पृथुत्वार्धे लुमापृष्ठद्वयलेखां निवेशयेत् ॥ १०१ ॥

शेषैः षड्भिस्ततो भागैरन्यत् तु प्राग्वदाचरेत् ।
भागार्धं निर्गमः कार्यः प्रासादानां कनीयसाम् ॥ १०२ ॥

छाद्यकस्यैव भागैस्तु ज्यायसां निर्गमो यतः ।
तदन्तरे ये प्रासादास्तेषां क्षेत्रानुसारतः १०३ ॥

छाद्यस्य निर्गमः कार्यो विद्वद्भिरनुपाततः ।
निर्गमस्य त्रिभागेन कनीयान् छाद्यकोदयः ॥ १०४ ॥

अर्धभागेन परमो भाज्यं षड्भिस्तदन्तरम् ।
अन्ये भागोत्तराः पञ्च सप्तैवमुदया मताः ॥ १०५ ॥

इदानीमभिधास्यामः सिंहकर्णस्य लक्षणम् ।
छाद्योदयोदयः स स्याद् दशभिस्तं विभाजयेत् ॥ १०६ ॥

तैः स्यात् षोडशभिर्भागैस्तस्यैव तलविस्तृतिः ।
ऊर्ध्वतश्चतुरो भागांस्त्यक्त्वा शङ्कुं निवेशयेत् ॥ १०७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कर्णेनारभ्य शङ्कुतः ।
ततो वृत्तं लिखेत् पश्चाच्छङ्कुं समधिरोपयेत् ॥ १०८ ॥

१. 'र्धं', २. 'ध्यं यतः स्थितम्', ३. 'लानुमा' ख. पाठः । ४. 'गाः स्तु निर्गमोज्यायसां मतम् (?)' क. पाठः । ५. 'श्रीम्बिकक्षे' ख. पाठः ।

"Aho Shrut Gyanam"

ऊर्ध्वदेशांत् तु भागेन स स्याद् भागचतुष्टये ।
लिखेद् वृत्तं त्रिभागोनत्र्यंशकर्कटकोद्भवम् ॥ १०९ ॥

तस्योपरिष्टात् तदनु ग्रीवा कार्यैकभागिनी ।
गर्भे शृङ्गाग्रयोर्मध्ये तिर्यग् भागद्वयं भवेत् ॥ ११० ॥
मध्ये कर्णाग्रयोस्तिर्यक् कार्यं भागत्रयं बुधैः ।
ग्रीवाया उपरिष्टाच्च भागमेकं शिखा भवेत् ॥ १११ ॥
शिखाग्रमुपरिष्टाच्च कर्तव्यं गर्भसङ्गतम् ।
शिखाग्रमूर्ध्वतस्तद्वदर्धभागावलम्बितम् ॥ ११२ ॥
भागावलम्बि कर्णाग्रं स्कन्धाग्रं तावदेव तु ।
स्यात् कर्णखण्डयोर्मूलं स्कन्धदेशस्य सङ्गतम् ॥ ११३ ॥
स्वस्तिको त्र्यंशविस्तारायामः प्राग्वृत्तमध्यतः ।
एवं शङ्कुमधःसूत्रादूर्ध्वं भा(गो?ग) निवेशयेत् ॥ ११४ ॥
भागे निवेशितं कुर्यात् पूर्ववृत्तांद्यशेषतः ।
स्वस्तिकान्तं च पूर्वोक्तं पूर्ववत् सर्वमाचरेत् ॥ ११५ ॥
तलसूत्रादुपर्यंशैश्चतुर्भिर्गर्भतः स(मः?मम्) ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यामुभयतो भागाभ्यां तिर्यगेव च ॥ ११६ ॥
भागेन तद्वदेवाधःसूत्रादुपरि गर्भतः ।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च भागैरुभयतः समम् ॥ ११७ ॥
वृत्तार्धानि लिखेदेककर्णयुक्तानि पूर्ववत् ।
एकशृङ्गाणि च ग्रीवास्वस्तिकार्धयुतानि च ॥ ११८ ॥
तलसूत्रबहिर्देशाद् बाह्यवृत्तसमुद्भवः ।
पदत्रयप्रविष्टैः स्यात् पार्ष्णिरत्र परिस्फुटः ॥ ११९ ॥
त्रिवलीललितो नाम सिंहकर्णोऽयमीरितः ।
दशभागीकृते प्राग्वदुदये तत्प्रमाणतः ॥ १२० ॥

१. 'शौ त्रिभागोनैः स', २. 'य', ३. 'कैः', ४. 'ध्यं', ५. 'र्ध' ६. 'ग', ७. 'कस्कन्धवि', ८. 'मः', ९. 'गर्भ नि' ख. पाठः। १०. 'त्स्या' क. पाठः। ११. 'तु', १२. 'मुपाच्च' ख. पाठः। १३. 'द्वे', १४. 'ष्ठा' १५. 'पुरः स्फु' क. पाठः।

"Aho Shrut Gyanam"

चतुर्दशांशविस्तीर्णे कर्णे सार्धे वलिर्भवेत् ।
दशभागोच्छ्रिते प्राग्वत् स्यात् त्रयोदशविस्तृतः ॥ १२१ ॥
क्षेत्र एकवलिर्नाम सिंहकर्णस्तथापरः ।
एते शोभान्विताः कार्यास्त्र्यश्रसंवरणास्त्रयः ॥ १२२ ॥

प्रासादानामिति निगदितं द्वारमानं निवेशः
स्तम्भानां च स्फुटमिह वितानानि तेषां लुमाश्च ।
वृत्तच्छाद्योच्छ्रितिरभिहिता छाद्यसंस्था लुमाश्च
प्रोक्ताः सप्त प्रथितमपरं सिंहकर्णप्रमाणम् ॥ १२३ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे
प्रासादद्वारस्तम्भनिवेशवितानलुमालक्षणवृत्तच्छाद्यलुमासिंहकर्णप्रमाणं नाम
चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥

शुभं भूयात् ॥

"Aho Shrut Gyanam"

શ્રી જિનશાસન જય હો !!!

॥ શ્રી ગૌતમસ્વામીને નમઃ ॥ ॥ શ્રી સુધર્માસ્વામીને નમઃ ॥

જિનશાસનના અણગાર, કલિકાલના શણગાર પૂજ્ય ભગવંતો અને જ્ઞાની પંડિતોએ શ્રુતભક્તિથી પ્રેરાઈને વિવિધ હસ્તલિખિત ગ્રંથો પરથી સંશોધન-સંપાદન કરીને અપૂર્વ જહેમતથી ઘણા ગ્રંથોનું વર્ષો પૂર્વે સર્જન કરેલ છે અને પોતાની શક્તિ, સમય અને દ્રવ્યનો સદ્વ્યય કરીને પુણ્યાનુબંધી પુણ્ય ઉપાર્જન કરેલ છે. કાળના પ્રભાવે જીર્ણ અને લુપ્ત થઈ રહેલા અને અલભ્ય બની જતા મુદ્રિત ગ્રંથો પૈકી પૂજ્ય ગુરુદેવોની પ્રેરણા અને આશીર્વાદથી સં.૨૦૬૫માં ૫૪ ગ્રંથોનો સેટ નં-૧ તથા સં.૨૦૬૬માં ૩૬ ગ્રંથોનો સેટ નં-૨ સ્કેન કરાવીને મર્યાદિત નકલ પ્રીન્ટ કરાવી હતી. જેથી આપણો શ્રુતવારસો બીજા અનેક વર્ષો સુધી ટકી રહે અને અભ્યાસુ મહાત્માઓને ઉપયોગી ગ્રંથો સરળતાથી ઉપલબ્ધ થાય.

પૂજ્ય સાધુ-સાધ્વીજી ભગવંતોની પ્રેરણાથી જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી તૈયાર કરવામાં આવેલ પુસ્તકોનો સેટ ભિન્ન-ભિન્ન શહેરોમાં આવેલ વિશિષ્ટ ઉત્તમ જ્ઞાનભંડારોને ભેટ મોકલવામાં આવ્યા હતા. આ બધાજ પુસ્તકો પૂજ્ય ગુરુભગવંતોને વિશિષ્ટ અભ્યાસ-સંશોધન માટે ખુબજ જરુરી છે અને પ્રાયઃ અપ્રાપ્ય છે. અભ્યાસ-સંશોધનાર્થે જરૂરી પુસ્તકો સહેલાઈથી ઉપલબ્ધ બને તેમજ પ્રાચીન મુદ્રિત પુસ્તકોનો શ્રુત વારસો જળવાઈ રહે તે શુભ આશયથી આ ગ્રંથોનો જીર્ણોદ્ધાર કરેલ છે. જુદા જુદા વિષયોના વિશિષ્ટ કક્ષાના પુસ્તકોનો જીર્ણોદ્ધાર પૂજ્ય ગુરૂભગવંતોની પ્રેરણા અને આશીર્વાદથી અમો કરી રહ્યા છીએ. તો અભ્યાસ તથા સંશોધન માટે વધુમાં વધુ ઉપયોગ કરીને શ્રુતભક્તિના કાર્યને પ્રોત્સાહન આપશો.

લી.શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળાની વંદના

મંદિરો જીર્ણ થતાં આજકાલના સોમપુરા દ્વારા પણ ઊભા કરી શકાશે.....!

પણ એકાદ ગ્રંથ નષ્ટ થતા બીજા કલિકાલસર્વજ્ઞ કે

મહોપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી ક્યાંથી લાવીશું...???